यज्ञ चिकित्सा

(यज्ञ से रोगों का निवारण)

- ब्रह्मवर्चस

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीतएव।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय।।

–अथर्ववेद काण्ड–३ सूक्त–११ मंत्र–२

अर्थात यदि रोगग्रस्त मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होने वाला हो या उसकी आयु क्षीण हो गई हो, तो भी मैं विनाश के समीप से उसे वापस लाता हूँ और सौ वर्ष की पूर्ण आयु तक के लिए सुरक्षित करता हूँ।

यज्ञ से रोगों का निवारण

यज्ञ चिकित्सा

(यज्ञ से रोगों का निवारण)

लेखक
ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक
श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट
शान्तिकुञ्ज हरिद्वार
उत्तराखंड

प्रथम आवृत्ति-
वसंत पर्व सन- २०१०

मूल्य-९५-०० रुपया

यज्ञ चिकित्सा

लेखक

ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक

श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट
शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार
उत्तराखण्ड

प्रथम संस्करण
वसंत पर्व-सन् २०१०

मूल्य-९५-०० रुपया

श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट
गायत्रीतीर्थ-शांतिकुंज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)
Internet:www.awgp.org Email:shantikunj@awgp.org

यज्ञ चिकित्सा

भूमिका

प्राचीन भारतीय संस्कृति में वैदिक दिनचर्या का शुभारंभ हवन, यज्ञ, अग्निहोत्र आदि से होता था। तपस्वी ऋषि-मनीषियों से लेकर सद्गृहस्थों, बटुक-ब्रह्मचारियों तक नित्य प्रति प्रातः सायं यज्ञ करके जहाँ संसार के विविध विधि रोगों का निवारण किया करते थे। दूसरों को लाभान्वित करने के विचार से उत्तम पदार्थ, घृत, मिष्ठान्न, रोगनिवारक व बलवर्धक वनौषधि याँ इत्यादि हवन में डालकर अपने भीतर परोपकार की सद्प्रवृत्ति को जागृत कर संसार में सुख, शांति फैलाते थे, वहीं वैज्ञानिक नियमों के आधार पर स्वयं भी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करते थे। दीर्घायुष्यप्राप्ति, रोगनिवारण, स्वास्थ्य संवर्धन, सुसंतति की प्राप्ति, साम्राज्य की प्राप्ति, प्रजा व पशु संवर्धन, शत्रुदमन व युद्ध में विजय, व्यक्तित्व विकास, आध्यात्मिक विकास एवं आत्मोत्कर्ष, प्राणपर्जन्य की अभिवृद्धि व वर्षा, वृष्टि नियंत्रण, जलवायु का शुद्धिकरण, पर्यावरण संशोधन, ऋतुचक्रनियमन, प्रकृति अनुकूलन, पोषक तत्त्वों से परिपूर्ण वृक्ष-वनस्पतियों की अभिवृद्धि आदि सभी कार्य यज्ञों द्वारा सम्पन्न होते थे। जिस प्रकार भारतीय तत्वज्ञान का अजस्त्र स्त्रोत गायत्री महामंत्र रहा है, उसी प्रकार विज्ञान का उद्गमस्त्रोत यज्ञ रहा है। तब गायत्री महाशक्ति और यज्ञ महाविज्ञान द्वारा मनुष्य की कठिन से कठिन आपत्तियों, आपदाओं, समस्याओं का हल सहज ही कर लिया जाता था तथा अनेक प्रकार की ऋद्धि-सिद्धियाँ, सुख-सुविधायें हस्तगत करना संभव था। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में इन दोनों की शक्ति और सामर्थ्य और भी महान है।

प्रस्तुत यज्ञ अनुसंधान वैज्ञानिक अध्यात्मवाद की ही एक शोध शाखा है। यज्ञ चिकित्सा उसी की एक कड़ी है, जो कि अतिप्राचीन काल से ही एक समग्र चिकित्सा पद्धति रही है। वैदिक काल से ही ऋषि, मनीषियों ने इसके सर्वतोमुखी लाभों से जनसामान्य को लाभान्वित कराने की

दृष्टि से अपना समग्र जीवन ही नित नये अनुसंधानों में लगा दिया और जो निष्कर्ष निकले, उन्हे सूत्रबद्ध किया। उन्होंने बताया कि आयुर्वेद में जिस रोग के शमन के लिए जिन औषधियों का वर्णन किया गया है, उन्हीं रोगों के शमनार्थ उन औषधियों का हवन करना चाहिए-

आयुर्वेदेषु यत्प्रोक्तं यस्य रोगस्य भेषजम्।
तस्य रोगस्य शान्त्यर्थं तेन तेनैव होमयेत॥

-श्रीमत्प्रपंचसारसारसंग्रहः उत्तरभागः त्रिंशपटलः

सूक्ष्मीकरण के सिद्धांत पर आधारित यज्ञ चिकित्सा की यह विशेषता है कि इसमें रोगानुसार निर्धारित औषधियों को खाने के साथ ही हविर्द्रव्य के रूप में विविध समिधाओं के साथ नित्य हवन किया जाता रहे, तो कम समय में अधिक लाभ मिलता है। नियत समय में मंत्रोच्चार के साथ किये गये हवन से एक विशिष्ट प्रकार की धूम्रीकृत प्रचंड ऊर्जा का निर्माण होता है, जो नासिकाछिद्रों एवं रोमकूपों द्वारा प्रयोक्ता के शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म संरचना में प्रवेश कर जाती है और शरीर व मन में जड़ जमाकर बैठी हुई आधि-व्याधियों को समूल नष्ट करने में सफल होती है। जीवाणुओं, विषाणुओं का शमन करने और जीवनी शक्ति संवर्धन करने में यज्ञ ऊर्जा से बढ़कर अन्य कोई सरल व सफल साधन नहीं है।

शारीरिक रोगों के साथ ही मानसिक रोगों-मनोविकृतियों से उत्पन्न विपन्नता से छुटकारा पाने के लिए यज्ञ चिकित्सा से बढ़कर अन्य कोई उपयुक्त उपाय-उपचार नहीं है, विविध अध्ययन, अनुसंधानों एवं प्रयोग-परीक्षणों द्वारा ऋषि प्रणीत यह तथ्य अब सुनिश्चित होता जा रहा है। विश्वस्तर पर जिस गंभीरता एवं मनोयोग से मूर्धन्य वैज्ञानिकों, मनीषियों, चिकित्सा विशेषज्ञों द्वारा इस दिशा में शोध प्रयत्न चल रहे हैं और उसके जो सत्परिणाम सामने आये हैं, उसे देखते हुए पूर्णतः विश्वास किया जा सकता है कि अगले दिनों निश्चय ही यज्ञोपचार के रूप में एक ऐसी सर्वांगपूर्ण चिकित्सा पद्धति का विकसित स्वरूप सामने आयेगा, जो सभी प्रकार की बीमारियों से मनुष्य की रक्षा कर सकेगी। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कायिक एवं मानसिक रोगों में जिन तत्वों की कमी पड़ जाती है, उन्हें यज्ञीय ऊर्जा से

आसानी से श्वास द्वारा खींच लिया जाता है। साथ ही प्रश्वास द्वारा भीतर घुसी हुई अवांछनीयता को, विकृतियों, विषाक्तताओं को बाहर धकेलकर सफाई का आवश्यक प्रयोजन पूरा कर लिया जाता है। बहुमुखी संतुलन बिठाने का यह उपयुक्त एवं सशक्त माध्यम है।

छान्दोग्योपनिषद ४/१६/१ का मंत्र है-

''एष ह वै यज्ञो योऽयं पवत एष ह यन्निद ँ सर्वं पुनाति। यदेष यन्निद ँ सर्वं पुनाति तस्मादेष एव यज्ञः ....॥''

अर्थात् पर्यावरण की विषाक्तता के निराकरण का सर्वोत्तम उपाय व साधन यज्ञ है। यह समस्त विषाक्तताओं, अशुद्धियों, विकृतियों अर्थात प्रदूषण को दूर करके वायुमंडल एवं वातावरण को शुद्ध व पवित्र बनाता है। यज्ञ में पर्यावरण परिशोधन एवं प्राणपर्जन्य के परिपोषण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुण है। इसके द्वारा वातावरण शुद्ध, सुगंधमय, जीवाणु-विषाणु रहित, प्रसन्नतादायक व प्रीतिदायक बनता है। इससे मनुष्य का मन व भावनायें, बुद्धि, स्मृति निर्मल बनती है, बल-पौरुष की अभिवृद्धि होती है। रोगों का नाश होता है तथा इम्यूनसिस्टम अर्थात प्रतिरक्षा प्रणाली मजबूत बनती है। गोघृत में योगवाही एवं विस्तृत या विशद गुण होने के कारण हविर्द्रव्य भी इसके संयोग से हवन द्वारा वायुभूत होकर या प्राणरूप होकर वायुमंडल में वृहत् आयतन धारण कर लेते हैं और यजनकर्ता के साथ ही वृक्ष-वनस्पतियों से लेकर समूचे प्राणिजगत के लिए लाभदायक सिद्ध होते हैं। पृथ्वी की उर्वराशक्ति बढ़ाने से लेकर प्रकृतिचक्र को संतुलित बनाने में यज्ञ की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

यज्ञ चिकित्सा विज्ञान का उद्देश्य विश्वमानवता को समग्र स्वास्थ्य उपलब्ध कराना है। यज्ञ की सर्वोपरि महिमा-महत्ता को समझाने एवं उससे मिलने वाले प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष लाभों के प्रति जनसामान्य में अभिरुचि उत्पन्न करने तथा उससे लाभान्वित करने की दृष्टि से छः दशक से अधिक लम्बी अवधि तक सतत किये गये गहन वैज्ञानिक अध्ययन, अनुसंधान एवं प्रयोग -परीक्षणों के उपरान्त मिले बहुआयामी सत्परिणामों के बाद यह पुस्तक प्रस्तुत की गयी है। इसमें यज्ञ चिकित्सा का सामान्य विधि-विधान, रोगानुसार

दृष्टि से अपना समग्र जीवन ही नित नये अनुसंधानों में लगा दिया और जो निष्कर्ष निकले, उन्हे सूत्रबद्ध किया। उन्होंने बताया कि आयुर्वेद में जिस रोग के शमन के लिए जिन औषधियों का वर्णन किया गया है, उन्हीं रोगों के शमनार्थ उन औषधियों का हवन करना चाहिए-

आयुर्वेदेषु यत्प्रोक्तं यस्य रोगस्य भेषजम्।
तस्य रोगस्य शान्त्यर्थं तेन तेनैव होमयेत॥

-श्रीमत्प्रपंचसारसारसंग्रहः उत्तरभागः त्रिंशपटलः

सूक्ष्मीकरण के सिद्धांत पर आधारित यज्ञ चिकित्सा की यह विशेषता है कि इसमें रोगानुसार निर्धारित औषधियों को खाने के साथ ही हविर्द्रव्य के रूप में विविध समिधाओं के साथ नित्य हवन किया जाता रहे, तो कम समय में अधिक लाभ मिलता है। नियत समय में मंत्रोच्चार के साथ किये गये हवन से एक विशिष्ट प्रकार की धूम्रीकृत प्रचंड ऊर्जा का निर्माण होता है, जो नासिकाछिद्रों एवं रोमकूपों द्वारा प्रयोक्ता के शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म संरचना में प्रवेश कर जाती है और शरीर व मन में जड़ जमाकर बैठी हुई आधि-व्याधियों को समूल नष्ट करने में सफल होती है। जीवाणुओं, विषाणुओं का शमन करने और जीवनी शक्ति संवर्धन करने में यज्ञ ऊर्जा से बढ़कर अन्य कोई सरल व सफल साधन नहीं है।

शारीरिक रोगों के साथ ही मानसिक रोगों-मनोविकृतियों से उत्पन्न विपन्नता से छुटकारा पाने के लिए यज्ञ चिकित्सा से बढ़कर अन्य कोई उपयुक्त उपाय-उपचार नहीं है, विविध अध्ययन, अनुसंधानों एवं प्रयोग-परीक्षणों द्वारा ऋषि प्रणीत यह तथ्य अब सुनिश्चित होता जा रहा है। विश्वस्तर पर जिस गंभीरता एवं मनोयोग से मूर्धन्य वैज्ञानिकों, मनीषियों, चिकित्सा विशेषज्ञों द्वारा इस दिशा में शोध प्रयत्न चल रहे हैं और उसके जो सत्परिणाम सामने आये हैं, उसे देखते हुए पूर्णतः विश्वास किया जा सकता है कि अगले दिनों निश्चय ही यज्ञोपचार के रूप में एक ऐसी सर्वांगपूर्ण चिकित्सा पद्धति का विकसित स्वरूप सामने आयेगा, जो सभी प्रकार की बीमारियों से मनुष्य की रक्षा कर सकेगी। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कायिक एवं मानसिक रोगों में जिन तत्वों की कमी पड़ जाती है, उन्हें यज्ञीय ऊर्जा से

आसानी से श्वास द्वारा खींच लिया जाता है। साथ ही प्रश्वास द्वारा भीतर घुसी हुई अवांछनीयता को, विकृतियों, विषाक्तताओं को बाहर धकेलकर सफाई का आवश्यक प्रयोजन पूरा कर लिया जाता है। बहुमुखी संतुलन बिठाने का यह उपयुक्त एवं सशक्त माध्यम है।

छान्दोग्योपनिषद ४/१६/१ का मंत्र है-

"एष ह वै यज्ञो योऽयं पवत एष ह यन्निद ॐ सर्वं पुनाति।
यदेष यन्निद ॐ सर्वं पुनाति तस्मादेष एव यज्ञः ....॥"

अर्थात् पर्यावरण की विषाक्तता के निराकरण का सर्वोत्तम उपाय व साधन यज्ञ है। यह समस्त विषाक्तताओं, अशुद्धियों, विकृतियों अर्थात प्रदूषण को दूर करके वायुमंडल एवं वातावरण को शुद्ध व पवित्र बनाता है। यज्ञ में पर्यावरण परिशोधन एवं प्राणपर्जन्य के परिपोषण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुण है। इसके द्वारा वातावरण शुद्ध, सुगंधमय, जीवाणु-विषाणु रहित, प्रसन्नतादायक व प्रीतिदायक बनता है। इससे मनुष्य का मन व भावनायें, बुद्धि, स्मृति निर्मल बनती है, बल-पौरुष की अभिवृद्धि होती है। रोगों का नाश होता है तथा इम्यूनसिस्टम अर्थात प्रतिरक्षा प्रणाली मजबूत बनती है। गोघृत में योगवाही एवं विस्तृत या विशद गुण होने के कारण हविर्द्रव्य भी इसके संयोग से हवन द्वारा वायुभूत होकर या प्राणरूप होकर वायुमंडल में वृहत् आयतन धारण कर लेते हैं और यजनकर्ता के साथ ही वृक्ष-वनस्पतियों से लेकर समूचे प्राणिजगत के लिए लाभदायक सिद्ध होते हैं। पृथ्वी की उर्वराशक्ति बढ़ाने से लेकर प्रकृतिचक्र को संतुलित बनाने में यज्ञ की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

यज्ञ चिकित्सा विज्ञान का उद्देश्य विश्वमानवता को समग्र स्वास्थ्य उपलब्ध कराना है। यज्ञ की सर्वोपरि महिमा-महत्ता को समझाने एवं उससे मिलने वाले प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष लाभों के प्रति जनसामान्य में अभिरुचि उत्पन्न करने तथा उससे लाभान्वित करने की दृष्टि से छः दशक से अधिक लम्बी अवधि तक सतत किये गये गहन वैज्ञानिक अध्ययन, अनुसंधान एवं प्रयोग -परीक्षणों के उपरान्त मिले बहुआयामी सत्परिणामों के बाद यह पुस्तक प्रस्तुत की गयी है। इसमें यज्ञ चिकित्सा का सामान्य विधि-विधान, रोगानुसार

हवनोपचार आदि विषयों को उचित विस्तार, आवश्यक जानकारी एवं प्रमाणों के साथ प्रस्तुत किया गया है। यज्ञ विज्ञान के विविध अंगों पर शोध-अनुसंधान निरंतर जारी है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यज्ञ चिकित्सा विज्ञान का परीक्षित और प्रामाणिक स्वरूप सबके सामने आ जाने से न केवल भारतीय धर्म और संस्कृति के जनक 'यज्ञ' की प्रतिष्ठा, उपयोगिता एवं गरिमा सर्व स्वीकार्य होगी, वरन् इसके आधार पर अनुसंधानकर्ताओं, चिकित्सा विज्ञानियों को शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक उपचार के नये आयाम विकसित करने में सहायता मिलेगी और विभिन्न प्रकार की आधि-व्याधियों से छुटकारा पाने वाला जनसमाज भी ऋषिप्रणीत इस उपलब्धि को अपने युग का सर्वोपरि वरदान मानेगा।

वसंत पर्व-२०१०

(डॉ. प्रणव पण्ड्या एम. डी.)
कुलाधिपति
देव संस्कृति विश्वविद्यालय
हरिद्वार-उत्तराखण्ड

विषय सूची

यज्ञीय ऊर्जा से कोरोनावायरस का उपचार - पृ.80, [illegible]
एवं कोरोनावायरस नाशक-क्वाथ

चित्रावली

अध्याय-१

यज्ञ चिकित्सा

★★★★★★★

सामान्य प्रकरण

यज्ञचिकित्सा-यज्ञोपैथीः एक समग्र एवं दिव्य चिकित्सा पद्धति

यज्ञ को भारतीय संस्कृति का मूल माना गया है। प्राचीनकाल से ही आत्मसाक्षात्कार से लेकर स्वर्ग-सुख, बंधन-मुक्ति, मनःशुद्धि, पाप प्रायश्चित, आत्मबल, ऋद्धि-सिद्धियों आदि के केंद्र यज्ञ ही थे। यज्ञों द्वारा मनुष्य को अनेक आध्यात्मिक एवं भौतिक लाभ प्राप्त होते हैं। गायत्री महामंत्र के साथ-साथ शास्त्रोक्त हविर्द्रव्यों के द्वारा भावप्रवणता के साथ जो विधिवत हवन किया जाता है, उससे एक दिव्य वातावरण विनिर्मित होता है। उस दिव्य यज्ञीय वातावरण में बैठने मात्र से रोगी मनुष्य नीरोग हो सकते हैं। चरक ऋषि ने अपने अनुपम ग्रंथ चरक संहिता में लिखा है- "आरोग्य प्राप्त करने की इच्छा करने वालों को विधिवत् हवन करना चाहिए।" बुद्धि को शुद्ध करने की यज्ञ में अपूर्व क्षमता है। जिन व्यक्तियों के मस्तिष्क दुर्बल हैं, बुद्धि मलीन है अथवा मानसिक विकृतियों से घिरे हुए हैं, यदि वे यज्ञ करें तो उससे उनकी मानसिक दुर्बलताएँ शीघ्र दूर हो सकती हैं। यज्ञ से प्रसन्न हुए देवता मनुष्य को धन-वैभव, सौभाग्य तथा सुख-साधन प्रदान करते हैं। यज्ञ करने वाला कभी दरिद्री नहीं रह सकता। यज्ञ करने वाले स्त्री-पुरुषों की संतान बलवान, बुद्धिमान, सुंदर और दीर्घजीवी होती हैं। राजा दशरथ को यज्ञ द्वारा ही चार पुत्र-रत्न प्राप्त हुए थे। गीता आदि शास्त्रों में इसीलिए यज्ञ को

आवश्यक धर्मकृत्य बताया गया है और कहा गया है कि यज्ञ न करने वालों को लोक और परलोक कुछ भी प्राप्त नहीं होता। अयुर्वेद में भी कहा गया है कि जो यज्ञ को त्यागता है, उसे परमात्मा त्याग देता है। यज्ञ के द्वारा ही मनुष्य को देवयोनि प्राप्त होती है और वह स्वर्ग-मुक्ति का अधिकारी बनता है।

प्रचीनकाल में ऋषि-मनीषियों ने यज्ञ के सर्वतोमुखी इन लाभों को भलीप्रकार समझा था, इसलिए वे उसे लोककल्याण का अति आवश्यक कार्य समझकर अपने जीवन का एक तिहाई समय यज्ञों के आयोजन में ही लगाते थे। स्वयं यज्ञ करना और दूसरों से यज्ञ कराना उनका प्रधान कार्य था। जब तक भारत में यज्ञ की प्रतिष्ठा थी, तब तक यह भूमि स्वर्ण-संपदाओं की स्वामिनी थी। लोग स्वस्थ, सुदृढ़, प्रतिभावान एवं दीर्घजीवी होते थे। यज्ञीय गरिमा को भुला देने से संसार की आज जो दुर्गति हो रही है, वह सर्वविदित है। यज्ञ की उसी प्राचीन गरिमा को पुनर्स्थापित करने में ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, शांतिकुंज-हरिद्वार के मूर्द्धन्य वैज्ञानिकों ने ऋषिसत्ता के निर्देशन में जो शोधनिष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं, वे बहुमूल्य हैं। मानव जाति के कल्याण के अनेकों सूत्र उसमें सन्निहित हैं।

यज्ञ चिकित्सा का दूसरा नाम 'यज्ञोपैथी' है। यह एक दिव्य एवं समग्र चिकित्सा की विशुद्ध वैज्ञानिकपद्धति है, जो एलोपैथी, होम्योपैथी आदि उपचारपद्धतियों से अत्यंत श्रेष्ठ व सफल सिद्ध हुई है। भिन्न-भिन्न रोगों के लिए विशेष प्रकार की हवन सामग्री प्रयुक्त करने पर उनके जो परिणाम सामने आए हैं, वे बहुत ही उत्साहजनक हैं। यज्ञोपैथी में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि आयुर्वेद शास्त्रों में जिस रोग की जो औषधि बताई गई है, उसे खाने के साथ ही उन वनौषधियों को पलाश, उदुम्बर, आम, पीपल आदि की समिधाओं के साथ नियमित रूप से हवन भी किया जाता रहे, तो कम समय में अधिक लाभ मिलता है। यज्ञोपैथी का मूल सिद्धांत ही यह है कि जो वस्तु जितनी सूक्ष्म होती जाती है, वह उतनी ही अधिक शक्तिशाली एवं उपयोगी बनती जाती है। विशिष्ट मंत्रों के साथ जब औषधियुक्त हविर्द्रव्यों

का हवन किया जाता है, तो यज्ञीय ऊर्जा से पूरित धूम्र ऊर्जा रोगी के शरीर में रोम छिद्रों एवं नासिका द्वारा अंदर प्रविष्ट करती है और शारीरिक एवं मानसिक रोगों की जड़ें कटने लगती हैं। इससे रोगी शीघ्र ही रोगमुक्त होने लगता है। इतना ही नहीं मंत्र ऊर्जा के प्रभाव से मन पर चढ़ी हुई कषाय-कल्मषों की परतें भी घुलने-मिटने लगती हैं और व्यक्ति आत्मोत्कर्ष की ओर अग्रसर होने लगता है।

अथर्ववेद के तीसरे कांड के 'दीर्घायु प्राप्ति' नामक ११ वें सूक्त में ऐसे अनेक प्रयोगों का उल्लेख है, जिनमें यज्ञाग्नि में औषधीय सामग्री का हवन करके कठिन से कठिन रोगों का निवारण एवं जीवनी शक्ति का संवर्द्धन किया जा सकता है। इसी सूक्त में उल्लेख है-

यदि क्षितायुर्यदि व परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ॥

अर्थात् यदि व्यक्ति की आयु क्षीण हो गई हो, जीवनी शक्ति समाप्त हो गई हो और वह मरणासन्न हो, तो भी यज्ञ चिकित्सा के माध्यम से वह रोग के चंगुल से छूट जाता है और सौ वर्ष तक जीवित रहने की शक्ति प्राप्त करता है। आरोग्य वृद्धि एवं रोग-निवारण के लिए इस तरह के जो यज्ञ किए जाते हैं, उन्हें 'भैषज यज्ञ' कहते हैं। प्राचीन काल में आरोग्य शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान यज्ञ के ब्रह्मा होते थे, जो सूक्ष्म वैज्ञानिक परीक्षण द्वारा यह जान लेते थे कि इस समय वायुमंडल में क्या विकार या प्रदूषण बढ़ जाने से कौन-सा रोग फैला हुआ है और उसके निवारण के लिए किन वनौषधियों का हवन करना चाहिए। व्यक्तिगत रोगों के निवारणार्थ भी ऐसे हवनों का आयोजन किया जाता था। रोगी के शरीर में कौन-सी व्याधि बढ़ी हुई है और कौन से तत्त्व घट-बढ़ गए हैं? उनकी पूर्ति करके शरीरगत् धातुओं का संतुलन ठीक करने के लिए किन औषधियों की आवश्यकता है? वह ऐसा निर्णय करते थे और वनौषधियों की हवन सामग्री बनाकर उसी प्रकृति के वेदमंत्रों से आहुतियाँ दिलाकर हवन कराते थे। वैसा ही चरु, पुरोडास एवं यज्ञावशिष्ट

रोगी के लिए तैयार किया जाता था। रोगी यज्ञधूम्र के वातावरण में रहता था और उसी वायु से सुवासित जल, वायु एवं आहार ग्रहण करता था, तदनुसार वह आधि-व्याधियों से, रोगों से छुटकारा पा लेता था। इस तरह के भैषज यज्ञों का वर्णन अनेक ग्रंथों में मिलता है।

यज्ञ चिकित्सा विज्ञान के विविध आयाम

सभी जानते हैं कि हृष्ट-पुष्ट शरीर न केवल रोगों से सुरक्षित रहता है, वरन् जीवन के सारे आनंद नीरोग एवं पुष्ट शरीर वाला मनुष्य ही भोगता है। हवन में जो औषधीय एवं पुष्टिकारक पदार्थ डाले जाते हैं, उनके सूक्ष्म परमाणु शरीर में पहुँचकर उसे परिपुष्ट बनाते हैं। पुष्टिकारक एवं रोगनिवारक औषधियों-पदार्थों का खाना भी काया को बल प्रदान करता है, अत: इन्हें अवश्य खाया जाना चाहिए, परंतु उससे भी अधिक उपयोगी इनका हवन कर उससे उत्पन्न यज्ञीय ऊर्जा का लाभ उठाना है। हवन में दो गुण विशेष हैं-प्रथम यह कि खाने में संभव है कि एक साथ अधिक पौष्टिक पदार्थों का सेवन कर लेने पर लाभ के स्थान पर हानि उठानी पड़े, परंतु हवन के साथ यह समस्या नहीं रहती। उसके सूक्ष्म परमाणु सीधे रक्तप्रवाह में पहुँचते हैं और पाचन शक्ति पर कोई बोझ नहीं डालते। तभी तो पुत्रेष्टि यज्ञ में जब खाने के पदार्थों से वीर्य पुष्ट नहीं होता और अधिक खाने से पाचन शक्ति बिगड़ती है, उस समय हवन यज्ञ में डाले गए पौष्टिक पदार्थों के सूक्ष्म परमाणु सीधे रक्त में पहुँचकर आंतरिक शोधन करते हैं और मनोवांछित परिणाम प्रस्तुत करते हैं। दूसरे यज्ञीय ऊर्जा से परिमार्जित वस्तुओं की स्वच्छता एवं स्थिरता बढ़ जाती है।

शारीरिक-मानसिक रुग्णता को हटाने-मिटाने में यज्ञ चिकित्सा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वैज्ञानिक सर्वेक्षण बताते हैं कि समूचे विश्व में रोग निवारण की आधुनिकतम चिकित्सा पद्धतियों एवं संसाधनों के होते हुए भी रोगों की संख्या बढ़ी है। एक रोग मिटता है, तो उसके लिए प्रयुक्त की गई औषधि ही दूसरे रोग को जन्म दे देती है। इस तरह उपचार के नाम

पर हताशा ही हताशा है। आज आवश्यकता एक ऐसी सशक्त चिकित्सा पद्धति के विकास की है, जो मानव का संपूर्ण उपचार कर सके। समग्र उपचार अर्थात् आस्थाओं का परिशोधन, मानसिक विकारों का निराकरण एवं शरीरगत अव्यवस्थाओं का सुगढ़तापूर्ण संयोजन कर सके। इसी वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति के रूप में आर्षमानवों ने यज्ञ चिकित्सा की परिकल्पना की थी, जिसे आधुनिक परिप्रेक्ष्य में पुनर्जीवित करने की आवश्यकता को देखते हुए ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की स्थापना की गयी।

मनुष्य के उन्नत स्वास्थ्य हेतु आत्मिक, मानसिक एवं शारीरिक व्याधियों के निराकरण एवं स्वास्थ्य संबर्धन के सन्दर्भों से आर्ष ग्रन्थ भरे पड़े हैं। ऋषिगणों ने काय संरचना एवं मानवी गतिविधियों, चिन्तन एवं भावनाओं, तथा मान्यताओं एवं आस्थाओं के पारस्परिक सामंजस्य को प्रधानता दी। यही कारण था कि तत्कालीन समाज व्यवस्था सतयुगी कहलाती थी और मानव समुदाय चिरस्थायी स्वास्थ्य का आनन्द भोगता था। यज्ञ ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा दिव्य संस्कारित औषधियों एवं पुष्टई को सूक्ष्म संस्थानों तक पहुँचाया जा सकता है। सूक्ष्म विकारों की जड़ जिन स्थानों पर होती है, वहाँ तक अन्य औषधियाँ नहीं पहुँच पातीं, परन्तु धूम्रीकृत औषधि विभिन्न मार्गों द्वारा पहुँचकर तत्काल अपना प्रभाव दिखाती है एवं मानव को कष्टकारी आधि-व्याधियों से मुक्ति दिलाती है। यह विज्ञान अपने चिरपुरातन समय में शिखर पर था एवं उस काल के वैज्ञानिकों ने शोध करके इस पद्धति को सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया था। मध्यकालीन समय में अनेकानेक विकृतयाँ, विसंगतियाँ इस क्षेत्र में भी प्रवेश कर गयीं। फलतः आस्थायुक्त कर्मकाण्डों द्वारा वनौषधि यजन की यह प्रक्रिया मात्र जलने की प्रक्रिया तक ही सीमित रह गयी। आज की विभीषिका को दृष्टिगत रख दैवी प्रेरणा से आधुनिकतम वैज्ञानिक शोधों द्वारा इस चिरपुरातन चिकित्सा व्यवस्था को भी प्रयोग-परीक्षण की कसौटी पर रखा गया एवं समस्त मानवता को एक ऐसा उपहार दिया गया, जो आने वाले सहस्रों वर्षों तक समग्र स्वास्थ्य संबर्धन का एक संपूर्ण तंत्र बन सके।

यज्ञ विज्ञान की अनुसंधान प्रकिया का शुभारंभ जिन पक्षों से किया गया, वे हैं-यज्ञ से रोग निवारण, स्वास्थ्य संवर्धन, प्रकृति संतुलन एवं वनस्पति संवर्धन, दैवी अनुकूलन, समाज शिक्षण, शक्ति जागरण तथा यज्ञ की विकृतियाँ एवं विसंगतियाँ। यद्यपि शोध की परिधि असीम है, फिर भी प्रारंभिक प्रयास के रूप मे यज्ञ विज्ञान के इन्हीं प्रमुख आठ पक्षों को प्रयोग-परीक्षण की कसौटी पर रखा गया है। यों तो यज्ञ प्रक्रिया की शोध के अनेकानेक आयाम हैं-यथा हविष्य, धूम्र, यज्ञावशिष्ट, यज्ञऊर्जा, मंत्रोच्चार में सन्निहित शब्दशक्ति, याजक गणों का व्यक्तित्व एवं उपवास, मौन, प्रायश्चित आदि धर्मानुष्ठानों से जुड़ी तपश्चर्याएँ। इन प्रयोजनों का शास्त्रों में उल्लेख तो है, पर उनके विधानों, अनुपातों और सतर्कताओं का वैसा उल्लेख नहीं मिलता, जिसके आधार पर समग्र उपचार बन पड़ने की निश्चिंतता रह सके। यज्ञविद्या को सांगोपांग बनाने के लिए शास्त्रों के सांकेतिक विधानों को वैज्ञानिक एवं सर्वांगपूर्ण बनाना होगा। इस कार्य को चिरपुरातन की इस आधुनिक शोध द्वारा संभव बनाया गया है।

इस संबंध में जितना भी कुछ वर्णन अब तक वैज्ञानिकों को उपलब्ध हुआ है, उससे इन सभी प्रयोगों की प्रामाणिकता का पता चलता है। पौराणिक आख्यानों में इन प्रयोगों की वैज्ञानिकता का विस्तृत विवेचन तो नहीं हैं, परन्तु इस ओर संकेत अवश्य हैं। राम का जन्म, च्यवन ऋषि का आयुष्य, अपाला का रोग निवारण यज्ञ प्रक्रिया द्वारा ही संभव वर्णित किये गये हैं। चरक और सुश्रुत ने तो विधिवत नस्य विभाग स्थापित किये थे। धनवंतरि ने जटिलतम रोगों को वाष्पीकरण-धूम्रीकरण की इस प्रक्रिया द्वारा ठीक किया, ऐसे वर्णन पढ़ने को मिलते हैं। वनौषधियों को देवोपम महत्ता देकर उसके सदुपयोग का जैसा वर्णन अध्यात्मग्रंथों में किया गया है, उसे देखते हुए भारत के चिरपुरातन गौरव के प्रति नतमस्तक हो जाना पड़ता है। परन्तु जैसा कि कहा गया है कि आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इन समस्त प्रतिपादनों को बुद्धिगम्य बनाने एवं तर्कबुद्धि के गले उतारने के लिए एक ऐसे ही तंत्र की आवश्यकता थी, जैसे कि शांतिकुंज के ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान की प्रयोगशाला में स्थापित किया गया है।

यज्ञों में यजन हेतु विभिन्न हविष्य पदार्थ प्रयुक्त होते हैं। हविष्य का निर्धारण हर विशिष्ट रोगी के लिए अलग-अलग किया जाता है। बलवर्धक और रोग निवारक दोनों ही तत्वों को ध्यान में रखना होता है। यज्ञ चिकित्सा के मूलस्वरूप को समझने के लिए सूक्ष्मीकरण सिद्धांत की वैज्ञानिकता को समझना होगा। वस्तुत: हविष्य के होमीकृत होने के पीछे 'सूक्ष्मता' का दर्शन छिपा पड़ा है। होम्योपैथी दवाइयाँ इसी सिद्धान्त पर कार्य करती हैं। दवाओं की सूक्ष्मता बढ़ाकर उनकी पोटेंसी में वृद्धि की जाती है। डीशेन की दवाओं में साधारण जड़ी-बूटियों की अधिक पिसाई-कुटाई करके उसकी आंतरिक सूक्ष्म ऊर्जा को उभारा जाता है। फलत: वे अधिक लाभदायक सिद्ध होती हैं। सूक्ष्मता का अपना स्वतंत्र विज्ञान है, जिसमें वस्तुओं की अदृश्य स्थिति का ही प्रतिपादन नहीं है, वरन् यह सिद्धान्त भी सम्मिलित है कि स्थूल के अन्तराल में छिपा सूक्ष्म कितना अधिक सामर्थ्यवान है।

औषधियों का धूम्रीकरण दो प्रकार के प्रभाव छोड़ता है। प्रथम तो उसकी सामर्थ्य कई गुनी अधिक हो जाती है। दूसरा उसका प्रभाव निकटवर्ती व्यक्तियों, वातावरण, जीव-जंतुओं एवं वनस्पतियों पर पड़ता है। मुख द्वारा दी गई औषधि पर पाचनतंत्र के विभिन्न पाचक रसों-एंजाइमों की प्रतिक्रिया होती है। तदुपरान्त व्यक्ति विशेष की सामर्थ्य के अनुसार उसका कुछ अंश रक्त में जाकर शेष मल-मूत्र मार्ग से बाहर उत्सर्जित कर दिया जाता है। इस प्रकार औषधि का कुछ ही भाग इच्छित अवयवों तक पहुँच पाता है। रक्त में इंजेक्शन प्रक्रिया द्वारा पहुँचायी गयी औषधि का प्रभाव निश्चित ही मुखमार्ग द्वारा दी गयी औषधि से अधिक और तुरंत होता है। परंतु उनके भी सूक्ष्म जीवकोषों-ऊतकों तक पहुँचने की पूरी संभावना सुनिश्चित नहीं है। इंजेक्शन की अपेक्षा इन्हेलेशन थेरेपी अधिक कारगर सिद्ध होती है, क्योंकि इसका सीधा संबंध नासिका एवं श्वसनतंत्र की सूक्ष्म इकाइयों से होता है। इसी तरह फ्यूमीगेशन द्वारा धूमीकृत औषधि श्वास मार्ग से एवं रोमकूपों से सीधे शरीर में प्रविष्ट होती है। यज्ञ प्रक्रिया में नियन्त्रित ऊर्जा के माध्याम से औषधि प्रवेश हेतु इसी मार्ग को प्रयुक्त किया जाता है।

पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति में भी कई औषधियाँ श्वासमार्ग से दी जाती हैं। श्वास रोगी को शीघ्र आराम दिलाने हेतु औषधि, मस्तिष्क के ऊतक में प्राण-संचार हेतु आक्सीजन एवं आपरेशन हेतु मूर्च्छित किये जाने के लिए एनेस्थेसिया-संज्ञाशून्यक जैसी औषधियाँ इसी मार्ग से दी जाती हैं। ऐसा इसलिए कि प्रभाव तुरंत हो एवं सुनिश्चित हो। आयुर्वेद में भी धूम्रपान द्वारा चिकित्सा को महत्ता दी गयी है। नशीले पदार्थ यथा निकोटिन, हशीश, चरस, गांजा, भांग आदि के लिए जितना लोकप्रिय नस्य मार्ग है, उतना मुखमार्ग नहीं। नासिका मार्ग को इसीलिए प्रधानता दी गयी है कि औषधियाँ आंतरिक अवयवों एवं कोष्टकों तक पहुँचकर अपना प्रभाव समग्र रूप में शीघ्र दर्शा सकें।

शरीर विज्ञानियों के अनुसार प्रत्येक श्वास के साथ प्राणवायु-आक्सीजन फेफड़ों के अन्दर प्रविष्ट होती है एवं वह सहस्त्रों एलविओलाय-वायुकाष्टकों के माध्यम से रक्त में मिलती है। इसके साथ ही रक्त द्वारा लाये गये ऊतकों के निष्कासित द्रव्य कार्बनडाइ-आक्साइड गैस आदि के रूप में बाहर निश्वास द्वारा फेंक दिये जाते हैं। प्रति चार सेकण्ड में होने वाली इस प्रक्रिया द्वारा जो संपर्क आक्सीजन का रक्त से होता है, वह वायुकोष्टकों की संरचना की अद्भुतता के कारण सहस्त्रों गुना होता है। इस तरह जिस औषधि का सीमित मात्रा में उपयोग अन्य भागों द्वारा उसे शरीर के कुछ ही भागों तक पहुँचता, वह उसे कई गुने अनुपात में पूरे शरीर के विभिन्न कोष्टकों तक पहुँचा कर अपना समर्थ प्रभाव दिखाने में सफल सिद्ध होता है।

यज्ञ चिकित्सा की प्रयोग-परीक्षण प्रक्रिया

यज्ञविज्ञान के मूलदर्शन को प्रयोग-परीक्षण की कसौटी पर कसने के लिए यहाँ पर उन सभी पक्षों को लिया गया है, जिनका प्रयोग विभिन्न रूपों में इस प्रक्रिया के अंतर्गत होता है। ये हैं-

१. वनौषधियों के पंचांग
२. समिधाएँ
३. घृत
४. पूर्णाहुति में होमे जाने वाले पदार्थ

५. यज्ञधूम्र	६. यज्ञऊर्जा
७. यज्ञावशिष्ट एंव भस्म	८. चरु
९. कलश जल	१०. मंत्रशक्ति एवं कर्मकांड
११. याजकगण	१२. धर्मानुष्ठानों से जुड़ी तपश्चर्याएँ।

१. यज्ञ चिकित्सा या वनौषधि यज्ञ को वेदों में भैषज्य यज्ञ कहा गया है। उनमें वैद्य शास्त्रज्ञ ब्रह्मा होता है। वे भैषज्य यज्ञ हैं। वेद, पुराण एवं आयुर्वेद शास्त्रों में इस तरह के यज्ञों में प्रयुक्त होने वाली विभिन्न वनौषधियों के उपयोग का वर्णन किया गया है। विभिन्न औषधियों के भिन्न-भिन्न रोग निवारक एवं स्वास्थ्य संवर्धक प्रभाव बताये गये हैं। ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की अनुसंधान प्रक्रिया में ऐसी ही कुछ चुनी हुई प्रामाणिक वनौषधियों को लिया गया है, जिनका उपयोग आयुर्वेद एवं एलोपैथी में विभिन्न रूपों में किया जाता है। क्वाथ एवं अवलेहादि के रूप में ये औषधियाँ वैद्यों द्वारा व्याधि निवारण के लिए प्रयुक्त होती हैं। एलोपैथी में भी इन्हीं जड़ी-बूटियों का उपयोग विभिन्न उपयोगी औषधियों के निर्माण में हुआ है। एकौषधिविज्ञान एवं डीशेन पद्धति में भी इन औषधियों के प्रभावों का ही प्रतिपादन है। यज्ञ चिकित्सा में इन औषधियों को होमीकृत कर उन्हें सूक्ष्मतम बनाना एवं उनके प्रभाव से व्यक्तियों, वातावरण एवं वनस्पतियों को विकारमुक्त करना ही प्रमुख उद्देश्य है। द्रव्यगुण विज्ञानी अब तक कुछ ही वनौषधियों का रासायनिक विश्लेषण कर पाये हैं। मात्र वर्णित माहात्म्य के आधार पर उनका उपयोग विवेकसम्मत नहीं है। इसलिए यहाँ इन समस्त औषधियों का विश्लेषण करने की व्यवस्था की गयी है, जिससे उसके विभिन्न भागों-पत्र, मूल, त्वक्, पुष्प, फल की रासायनिक संरचना एवं द्रव्यगुण परक प्रभाव को समझा एवं उपयोग में लाया जा सके।

हविष्य में रोग विशेष के लिए प्रयुक्त होने वाली औषधियों का आधार प्राय: वही रहता है, जो रासायनिक विश्लेषण के आधार पर चिकित्सा विज्ञानी चिरकाल से करते चले आये हैं। उनके परस्पर संयोग से विभिन्न प्रतिक्रियाएँ होती हैं एवं अलग-अलग प्रतिफल निकलते हैं। उपयोगी

वनस्पतियों का चुनाव विभिन्न रोगों के लिए उनकी रासायनिक विशेषताओं के आधार पर किया गया है। ऐसी व्यवस्था भी बनायी गयी है कि मुखमार्ग, रक्तमार्ग तथा श्वास मार्ग द्वारा ली जाने वाली औषधि का अलग-अलग क्या प्रभाव पड़ता है, यह विश्लेषण किया जा सके। पड़ने वाले प्रभावों के तुलनात्मक अध्ययन से कौन सा मार्ग उपचार की दृष्टि से सर्वोत्तम है, यह निर्धारित किया जाता है। आरंभिक चरण में प्राय: अधिकांश रोगों में प्रयुक्त होने वाली लगभग पाँच सौ वनौषधियों को लिया गया है। उदाहरण के लिए तुलसी, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, शतावर, सर्पगंधा, जटामांसी, कंटकारी, अश्वगंधा, हलदी, कालमेघ, चिरायता, गोक्षुरू, नागरमोथा, तेजपत्र आदि।

२. समिधाएँ भी प्रकारान्तर से हविष्य ही हैं। कुछ विशिष्ट लकड़ियों का जलना भी न्यूनाधिक रूप से वनौषधियों के समान ही प्रभाव उत्पन्न करता है। यही कारण है कि हविष्य में वनस्पतियों की पत्तियों, फूल-फल के साथ ही लकड़ियों का भी सम्मिश्रण किया जाता है। चंदन, देवदार, अगर, तगर आदि सुगंधित लकड़ियों का चूरा हवन सामग्री में मिलाया जाता है। समिधाओं में कुछ नियत वृक्षों के काष्ठ के प्रयोग का ही विधान है। चाहे जिस पेड़ की लकड़ी हवन में प्रयुक्त नहीं हो सकती। ऐसा करने से अनुपयोगी काष्ठ से प्रज्वलित अग्नि हानिकारक सिद्ध होती है। समिधाओं के चयन में इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता है कि रोगी की जैव रासायनिक संरचना की दृष्टि से हविष्य में किन-किन समिधाओं का प्रयोग किया जाय। प्रमुख समिधाओं में चंदन, देवदार, अगर, तगर आदि वृक्षों के अलावा आम, शमी, वट, उदुम्बर, पलाश, गूलर, पीपल, अशोक, बिल्व, चित्रक आदि का भी प्रयोग किया जाता है।

३. यज्ञ में आमतौर से गौघृत प्रयुक्त होता है, पर अन्य पशुओं के घृतों में भी अपनी विशेषता है। रोगी की स्थिति को देखते हुए घृतों में पाये जाने वाले रासायनिक पदार्थों की स्थिति का तालमेल बिठाते हुए यह निर्धारण करना होता है कि अमुक रोग में किस पशु का घृत लिया जाय। चिर पुरातन

मान्यता है कि घृत को जलाने से उसका जो प्रभाव होता है, वह खाने से नहीं होता। इस तथ्य की वैज्ञानिकता की परीक्षा प्रयोगशाला स्तर पर ही की जानी चाहिए। गोघृत को ही क्यों श्रेष्ठ माना गया है, यह जानने के लिए एक तुलनात्मक विवेचन भी आवश्यक हो जाता है। इसलिए विभिन्न घृतों के रासायनिक विश्लेषण एवं उनके द्वारा शरीर में जैव रासायनिक परिवर्तनों को मापा जाना आवश्यक है।

४. पूर्णाहुति में सामान्य हवन सामग्री का नहीं, वरन् किन्हीं विशिष्ट वस्तुओं का प्रयोग करना पड़ता है। पूर्णाहुति तीन भागों में विभक्त है- **(अ)** स्विष्टकृत होम-जिसमें मिष्ठान्न होमे जाते हैं। **(ब)** पूर्णाहुति-जिसमें फल होमना होता है। **(स)** वसोधारा-जिसमें घी की धारा छोड़ी जाती है। इन तीनों कृत्यों को मिलाकर पूर्णाहुति कही जाती है। इस विधान को प्रधानतया पोषक प्रयोग के रूप में लिया जाता है। निरोधक सामग्री तो हविष्य के रूप में इससे पूर्व ही यजन हो चुकी होती है।

स्विष्टकृत होम के लिए मिष्ठान्न का चयन भी यज्ञीय विधान का ही एक अंग है। सामान्यतया शक्कर, मिश्री, मिठाई का उपयोग होता है। असामान्य रूप से विशेष प्रकार के चरु बनाये जाते हैं। खीर, हलुआ, लड्डू आदि का हवन स्विष्टकृत होम की आहुति में होता है। इन्हें किन पदार्थों के सम्मिश्रण से बनाया जाय, इस निर्धारण में यह ध्यान रखा जाता है कि रोगी के शरीर में किन पोषक खाद्य पदार्थों की आवश्यकता है। सामान्यतया उपयोग किये जाने वाले यज्ञीय धान्य हैं-चावल, जौ, जंगली धान, तिल, चना, गेहूँ। शर्करा वर्ग में गुड़वाली शक्कर-खाँडसारी गुड़, चीनी, शहद, फलों एवं सूखे मेवों का उपयोग होता है। इन सबके उपयोग से शरीर पर क्या पोषक प्रभाव होता है, यह भी शोध का एक अंग है। पूर्णाहुति में आमतौर से नारियल, सुपारी आदि सुगमतापूर्वक मिल सकने वाले पदार्थ प्रचलित हैं, पर उसमें सूखे मेवे एवं पके फल भी प्रयुक्त हो सकते हैं। समिधाओं के निर्धारण की तरह पूर्णाहुति में फलों के चयन में भी सूझ-बूझ का परिचय देना पड़ता है।

५. वसोधारा में घृत की धारा छोड़ी जाती है अर्थात् उसकी मात्रा बढ़ाई जाती है। इसका एक कारण यह है कि हवनकुण्ड में जहाँ-तहाँ शेष रहा कच्चा हविष्य तुरंत ज्वलनशील हो सके। दूसरे चिकनाई की वह मात्रा शरीर को मिल सके, जो सामयिक परिस्थिति के अनुरूप आवश्यक है। शर्करा सहित अन्नवर्ग को स्विष्टकृत में, फलवर्ग को पूर्णाहुति में, घृतवर्ग को वसोधारा में प्रयुक्त करके आहार की संतुलित मात्रा का इस प्रकार निर्धारण किया जाता है कि यजनकर्ता को समुचित पोषण प्राप्त हो सके। वसोधारा घृत में कपूर, केशर आदि मिलाने की भी व्यवस्था रहती है, जिससे घृत मात्र चिकनाई न रहकर एक विशिष्ट औषधि बन जाती है। स्विष्टकृत होम, पूर्णाहुति एवं वसोधारा में उपयुक्त खाद्यान्नों एवं औषधियों की टॉनिक जैसी उपयोगिता का वैज्ञानिक विवेचन आज के युग में आवश्यक है। यही विचार कर यज्ञोपैथी प्रयोगशाला को आधुनिक यंत्रों से सुसज्जित किया गया है।

६. जिस कुण्ड में हवन किया जाता है, उसका ज्यामितीय आकार बहुत महत्व रखता है। यह उलटे पिरामिड के आकार का होता है। नीचे सँकरा, ऊपर चौड़ा। जितना आयतन होता है, उतनी ही समिधाएँ डाली जाती हैं व उतनी ही हवन सामग्री; ताकि संतुलित ऊर्जा उत्पन्न होती रहे, अग्नि प्रदीप्त रहे और धुआँ उत्पन्न न हो। मध्यमा और अनामिका अँगुली पर जितनी मात्रा में जौकुट हवन सामग्री आ जाती है, वह लगभग तीन ग्राम के बराबर होती है। ताम्रपात्र या हवन कुण्ड इतनी दूर होता है कि याजक तो अधिक गर्मी अनुभव न करे और जो भी धूम्र ऊर्जा बने, वह श्वांस मार्ग से अन्दर जाती रहे। आधे घण्टे का औसत प्रयोग प्रर्याप्त माना जाता है।

७. यज्ञ प्रक्रिया अपने आप में एक समग्र विज्ञान है। इसका प्रत्येक पक्ष विशिष्ट है। यज्ञ समाप्त होने पर बचा 'चरु' दिव्य प्रसाद के रूप में ग्रहण किया जाता है। आहुतियों से बचा 'इदन्नमम्' के साथ टपकाया हुआ तथा वसोधारा से बचा घी 'घृतअवघ्राण' के रूप में मुख, सिर तथा हृदय आदि पर लगाया व सूँघा जाता है। होमीकृत औषधियों एवं अन्य हव्य पदार्थों से संस्कारित भस्म को मस्तक तथा हृदय पर धारण किया जाता है। ये सभी

पदार्थ उतना ही प्रभाव डालते हैं, जितनी कि हविष्य की आहुतियों से उत्पादित उर्जा। सूक्ष्म सामर्थ्य से सम्पन्न यज्ञ चरु अथवा अन्य पदार्थ इतने अधिक बलवर्धक होते हैं कि उनकी थोड़ी मात्रा भी कई गुने सामर्थ्य वाले खाद्य पदार्थों की बराबरी करते हैं। इस वर्णित तथ्य को वैज्ञानिक प्रयोग-परीक्षण द्वारा प्रत्यक्ष सिद्ध किया जा सकता है।

८. यज्ञ चिकित्सा में कलश में रखे जल का भी वैज्ञानिक महत्व है। यह जल यज्ञ प्रक्रिया में यज्ञ ऊर्जा से प्रभावित एवं धूम्रीकृत-वाष्पीकृत वनौषधियों के सूक्ष्म गुणों से युक्त होता रहता है। यूनानी चिकित्सा पद्धति द्वारा बनाये जाने वाले अर्क के पीछे भी यही सिद्धांत है। यह जल मंत्रोच्चार द्वारा अभिमंत्रित किया जाता है। मंत्र की सामर्थ्य जल में होती है। इसके प्रयोग द्वारा विभिन्न साधकों एवं रोगियों पर पड़ने वाले प्रभावों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

यह तो यज्ञ का पदार्थपरक वैज्ञानिक विवेचन हुआ। आगे की बात अति सूक्ष्म-कारण स्तर की है। सामर्थ्यों की स्रोत कारण परत में है। मनुष्यों की तरह पदार्थ में भी तीन स्तरीय पदार्थ होते हैं-स्थूल, सूक्ष्म और कारण। यज्ञ प्रक्रिया में प्रायः हर पदार्थ के कारण शक्ति को उभारा जाता है, तभी वह यजनकर्ता के मन और अन्तःकरण में अभीष्ट परिवर्तन ला सकती है। यज्ञ की विशिष्टता उसमें प्रयुक्त होने वाले पदार्थों की सूक्ष्म शक्ति पर निर्भर है। कारण शक्ति का उत्पादन-अभिवर्धन करने के लिए मंत्रविज्ञान का सहारा लिया जाता है। उद्‌गाता इस बात का पूरा ध्यान रखते हैं कि निर्धारित विधि-विधान के लिए जिन मंत्रों का सस्वर उच्चारण एवं विनियोग करने की पद्धति प्रचलित है, उसका उपयोग सही रीति से हो। उदात्त-अनुदात्त भावों के उतार-चढ़ाव वातावरण में कंपन पैदा करते हैं एवं उनका प्रभाव शरीर की सूक्ष्म ग्रंथियों एवं अन्य महत्वपूर्ण अवयवों पर होता है। शब्द को ब्रह्म कहा गया है। उसकी शक्ति सामान्य जीवन में ज्ञान संवर्धन एवं वैचारिक आदान-प्रदान के लिए होती है, किंतु उच्चस्तरीय भूमिका में शब्द का शक्ति

के रूप में परिवर्तन हो जाता है। मंत्रशास्त्र का समूचा आधार इसी पृष्ठभूमि पर खड़ा है कि शब्द गुच्छकों का चयन-गुंथन एवं विनियोग ऐसी विशिष्ट क्रिया-प्रक्रिया के साथ सम्पन्न किया जाय, जिससे चेतना को विशिष्ट क्षमता संपन्न बनने का चमत्कारी लाभ मिल सके।

९. यज्ञ विज्ञान के विभिन्न पक्षों की शोध करते हुए अंतिम क्रम आता है-याजक गणों का। यज्ञ में अध्वर्यु, उद्‍गाता, ब्रह्मा, होता, आचार्य एवं यजमान-ये याजक गण होते हैं। इन छह के आचार, विचार, व्यक्तित्व एवं चिन्तन को मिलाकर यज्ञ का समग्र स्वरूप तैयार होता है। इनकी वैयक्तिक ऊर्जा एवं मनोबल का संयुक्तीकरण ही यज्ञ की सफलता में सहायक होता है। हवनकर्ता को मनमानी वस्तुएँ खाने-पीने की छूट नहीं मिलती, वरन् उनके आहार में किन वस्तुओं का उपयोग किस मात्रा में हो, उसका भी सुनिश्चित निर्धारण किया जाता है। तपश्चर्यापरक धर्मानुष्ठान एवं प्रायश्चित प्रक्रिया का भी इसमें समावेश किया जाता है। इस तरह यज्ञ एक समग्र चिकित्सा पद्धति है, जो मनुष्य के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों उपचारों की पूर्ति एक साथ करती है।

यज्ञ चिकित्सा की सरल व संक्षिप्त क्रम व्यवस्था

यों तो यज्ञ चिकित्सा का पूर्ण शास्त्रोक्त विधान अज्ञात है, फिर भी कुछ साधारण प्रयोग ऐसे हैं, जिनके द्वारा रोगनिवारण का कार्य साधारण उपचारों की अपेक्षा अधिक सरलता एवं सफलतापूर्वक हो सकता है। प्राय: देखा जाता है कि भिन्न-भिन्न रोगियों की शारीरिक स्थिति अलग प्रकार की होती है। जिन्हें कोई साधारण मंद रोग होते हैं, उन्हें चलने-फिरने, स्नान करने आदि साधारण कार्यों में कुछ कठिनाई नहीं होती, वे हवन पर स्वयं बैठ सकते हैं। जिनको चलने-फिरने, स्नान करने आदि में असुविधा है, उन्हें आहुति आदि स्वयं तो नहीं देनी चाहिए, पर हवन के निकट ही आराम के साथ बैठ जाना चाहिए। जो रोगी बिलकुल असमर्थ हैं, उनकी रोगशैय्या के समीप ही हवन किया जा सकता है। वे रोगी हवन की ओर मुख किये हों,

ताकि हवन में होमी हुई आहुतियों की गंध उनके मुख और नासिका तक पहुँचती रहे। यदि वायु अथवा मौसम प्रतिकूल न हो, तो रोगी के शरीर को जितना संभव हो, उतना खुला रखकर या कम से कम व हलके-ढीले कपड़े पहनाकर भी उस यज्ञीय वायु ऊर्जा को शरीर से स्पर्श कराने का प्रयत्न करना चाहिए।

हवन कुण्ड

यों तो हवन कुण्ड कई तरह के होते हैं, और विविध यज्ञीय प्रयोजनों में उद्देश्यानुसार प्रयुक्त होते हैं। प्रख्यात मनीषी श्रीमद् विट्ठल दीक्षित ने अपने अनुपम ग्रंथ 'मण्डपकुण्डसिद्धि' में कुण्डों को चतुरास्त्र मूलक मानकर चतुरस्त्रकुण्ड, योनिकुण्ड, अर्धचंद्रकुण्ड, त्रिकोणकुण्ड, वृत्तकुण्ड, षडस्त्रकुण्ड, पद्मकुण्ड एवं अष्टास्त्रकुण्ड अर्थात आठ आकारों वाले एक हाथ क्षेत्रफल से लेकर दस हाथ क्षेत्रफल तक के कुण्डों का विस्तृत वर्णन किया है। उसके अनुसार प्रमुख रूप से कुण्डों के दो भेद हैं-१. आयाम भेद एवं २. आकृति भेद। आयाम भेद के अनुसार हवनकुण्ड पाँच प्रकार के होते हैं-एकहस्तात्मक, द्विहस्तात्मक, चतुर्हस्तात्मक, षड्हस्तात्मक, अष्टहस्तात्मक और दसहस्तात्मक। आकृति भेद के अनुसार कुण्डों के तीन प्रकार बताए गये हैं-१. कोणात्मक कुण्ड-जिसके अंतर्गत त्रिकोणकुण्ड, चतुरस्त्रकुण्ड, पञ्चास्त्र, षडास्त्र, सप्तास्त्र, अष्टास्त्र, नवास्त्रकुण्ड, रुद्रकुण्ड, षट्त्रिंशास्त्र कुण्ड एवं अष्टचत्वारिंशास्त्र कुण्ड आते हैं। २. वर्तुलकुण्ड-इसके अंतर्गत वृत्त कुण्ड, अर्धचंद्र कुण्ड, पद्म कुण्ड एवं सूर्य कुण्ड आते हैं। ३. विशिष्ट कुण्ड-इसके अंतर्गत योनि कुण्ड, असि कुण्ड, कुंत कुण्ड, चाप कुण्ड, मुद्गर कुण्ड, शनि कुण्ड, राहु कुण्ड, केतु कुण्ड, चंद्र कुण्ड, भौम कुण्ड, बुध कुण्ड, गुरु कुण्ड, शुक्र कुण्ड आदि आते हैं। इस तरह हवन कुण्डों की आकृति एवं उसके आकार का निर्धारण यज्ञ के प्रकार एवं उद्देश्य तथा यजनकर्ताओं की संख्या के आधार पर की जाती है। आकारानुसार कुण्डों के प्रतिफल का वर्णन करते हुए शारदातिलक तंत्र, तृतीय पटल, श्लोक ८५-८७ में कहा गया है-

Havan Kunda
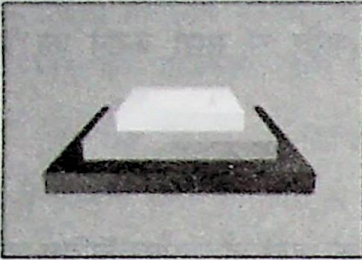
Catuskona
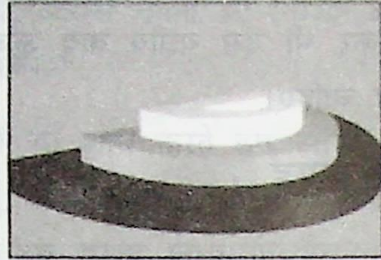
Ardhacandra
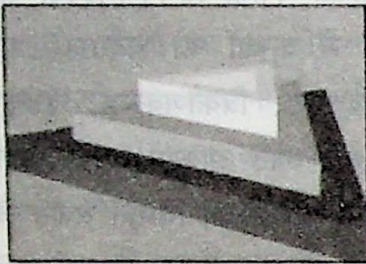
Trikona
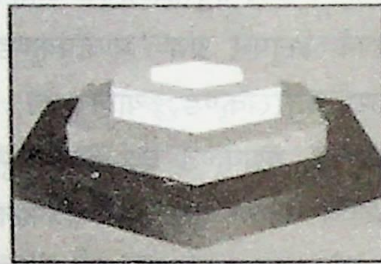
visama Sadasra
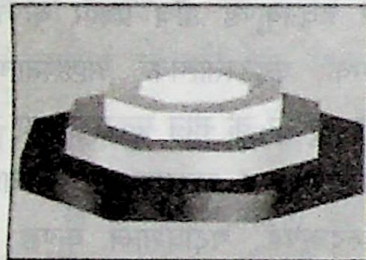
Visama Astasra

Vritta Kunda
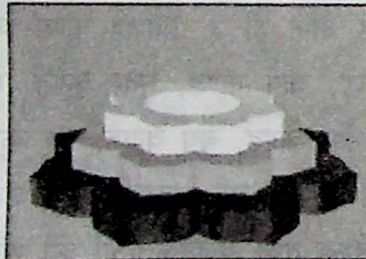
Padma Kunda
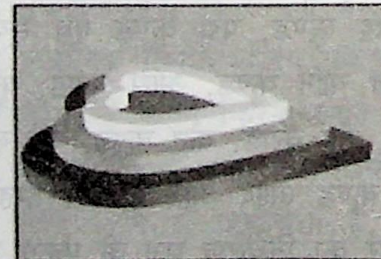
Yoni Kunda

चित्र संख्या-1

सर्वसिद्धिकरं कुण्डं चतुरस्त्रमुदाहृतम् ।

पुत्रप्रदं योनिकुण्डमर्द्धेन्द्वाभं शुभप्रदम् ॥

शत्रुक्षयकरं त्र्यस्त्रंवर्तुलं शान्तिकर्मणि ।

छेदमारणयोः कुण्डं षडस्त्रं पद्मसन्निभम् ।

वृष्टिदं रोगशमनं कुण्डमष्टास्त्रमीरितम् ॥

पद्मकुण्डमथो वक्ष्ये सौम्ये तत् पुष्टिवर्धनम् ।

वक्ष्ये कुण्डमथाष्टास्त्रमीशाने सर्वकामदम् ॥

अर्थात चतुरस्त्र कुण्ड का प्रयोग करने से कार्यसिद्धि होती है। योनि कुण्ड के प्रयोग से समस्त स्त्री रोगों का शमन एवं पुत्र की प्राप्ति होती है। अर्धचंद्र कुण्ड से कल्याण होता है। त्रिकोण कुण्ड के प्रयोग से शत्रु दमन एवं वर्तुल या वृत्ताकार कुण्ड से शांति प्राप्ति होती है। षडस्त्र कुण्ड का प्रयोग मारण कर्म के लिए किया जाता है। पद्मकुण्ड को सौम्य, पुष्टिवर्धक, परम शुभदायी, सुख-समृद्धि देने वाला तथा वर्षाकारक माना गया है। अष्टास्त्र कुण्ड सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाला तथा आरोग्य प्रदान करने वाला होता है। पंचास्त्र कुण्ड का उपयोग अभिचार क्रियाओं की शांति के लिए तथा सप्तास्त्र कुण्ड का उपयोग भूतदोषों की शांति के लिए होता है। शास्त्रसम्मत कुछ कुण्डों के चित्र पृष्ट-३० पर दिए गए हैं।

हवन कुण्डों का प्रमाण हव्य पदार्थों की स्थूलता या सूक्ष्मता एवं आहुतियों की संख्या को ध्यान में रख कर निर्धारित किया जाता है और यह सदैव पूर्णांकों के माप से ही निर्मित होते हैं। शास्त्रों के अनुसार हवन कुण्ड उतना ही बड़ा होना चाहिए, जिसमें हवन करते समय हवन सामग्री कुण्ड से बाहर न फैले। छोटे कुण्ड एक हस्त माप के अर्थात २४ अंगुल के होते हैं, जिन्हें भूहस्तात्मक कुण्ड भी कहते हैं। शिखरिणी छंद के अनुसार ५० से

९९ आहुतियों के लिए २१ अंगुल तथा १०० से ९९९ आहुतियों के लिए २२ अंगुल का कुण्ड बनाना चाहिए। इसके आगे १००० से ९९९९ आहुतियों के लिए २४ अंगुल अर्थात एक हाथ प्रमाण के तथा इससे आगे दस हजार से ९९९९९ तक की आहुतियों के लिए दो हाथ प्रमाण के हवन कुण्ड बनाए जाते हैं, आदि। परंतु यहाँ पर यज्ञ चिकित्सा के लिए जिस हवन कुण्ड का वर्णन किया जा रहा है, वह सर्वजनीन है। इसके लिए ताँबे के निर्मित हवन कुण्ड लेना चाहिए अथवा भूमि पर १२ अंगुल चौड़ी, १२ अंगुल लंबी, ३ अंगुल ऊँची पीली मिट्टी की या बालू की वेदी बना कर हवन कुण्ड तैयार कर लेना चाहिए और उसी में हवन करना चाहिए। पचास से कम आहुतियों के लिए यह प्रशस्त है। ताँबे से बने हवन कुण्ड की तरह ही मिट्टी के चलते-फिरते छोटे हवन कुण्ड बनाकर भी प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

यज्ञ चिकित्सा का विधि-विधान

हवन करने वाले हवन कुण्ड के आसपास बैठें। यदि रोगी भी हवन पर बैठ सकता हो, तो उसे पूर्व की ओर मुख करके बैठाना चाहिए। ऐसे हवन देवाह्वान के लिए नहीं, चिकित्सा प्रयोजन के लिए होते हैं, इसलिए इनमें देव पूजन आदि की सर्वांगपूर्ण प्रक्रियाएँ न बन पड़ें, तो चिन्ता की बात नहीं है। शरीरशुद्धि, मार्जन, शिखाबंधन, आचमन, प्राणायाम, न्यास आदि गायत्री मंत्र से करके कोई ईश्वर प्रार्थना हिन्दी या संस्कृत की करनी चाहिए। विस्तृत यज्ञीय कर्मकाण्ड के लिए गायत्री यज्ञ विधान, सरल और सर्वोपयोगी गायत्री हवन विधि, कर्मकाण्डभास्कर आदि मिशन की पुस्तकों का अवलोकन किया जा सकता है। वेदी और यज्ञ का जल, अक्षत आदि से पूजन करके गायत्री मंत्र अथवा सूर्य गायत्री मंत्र के साथ हवन आरंभ कर देना चाहिए। यदि कोई जानकार यज्ञकर्ता हो, तो उन पद्धतियों में से जितना अधिक संभव हो, विधि-विधान से प्रयोग कर सकता है। यदि रोगी के निकटवर्ती को उतनी जानकारी न हो, तो एक लोटे में जल तथा आज्याहुति एवं वसोधारा आदि के लिए कटोरी में घृत रख कर रोग की विशिष्ट हवन सामग्री से आहुतियाँ देनी आरंभ कर देनी चाहिए। कम से कम २४ आहुतियाँ अवश्य देनी चाहिए।

॥ ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

देव संस्कृति के निर्माता
यज्ञ पिता गायत्री माता

चित्र संख्या-2
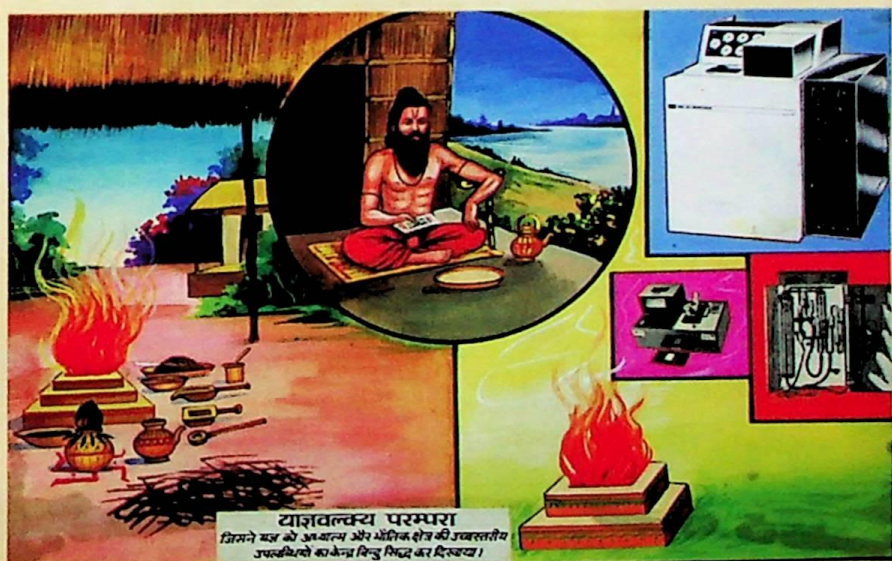
चित्र संख्या-3

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान का वृहंगम दृश्य

चित्र संख्या-4

ब्र.शो.सं. के निर्देशक परम श्रद्धेय डॉ. प्रणव पण्ड्या, एम.डी. के निर्देशन में चल रहा यज्ञानुसंधान

चित्र संख्या-5

मंत्र विज्ञान पर अनुसंधानरत
परम श्रद्धेय डॉ. प्रणव पण्ड्या जी
चित्र संख्या-6
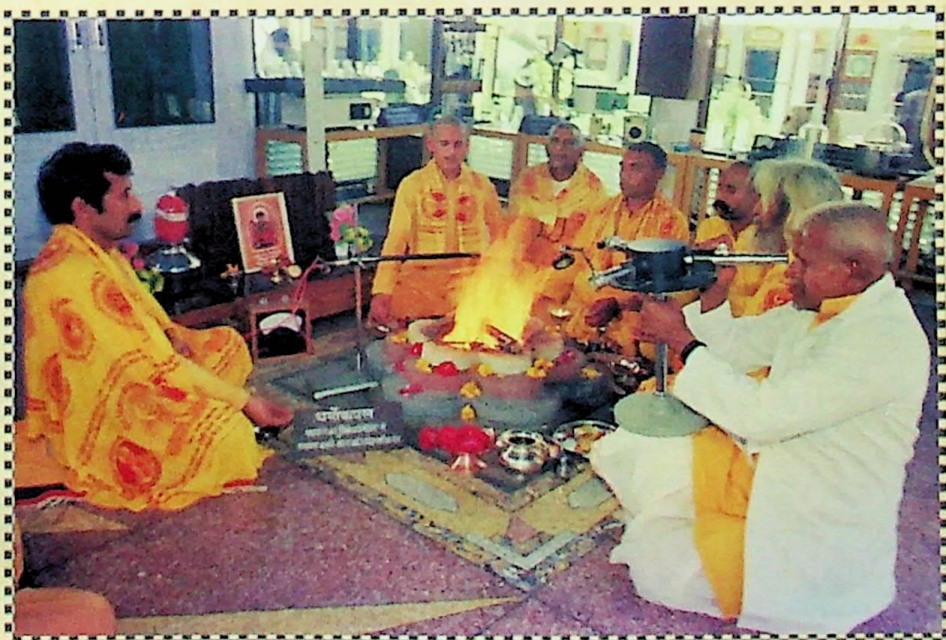
यज्ञ चिकित्सा करते साधक

चित्र संख्या-7

चित्र संख्या-8

चित्र संख्या-9

जिन रोगों में रोगी को लंघन-उपवास हो रहे हों, उनमें तिल, जौ तथा चावल स्वल्प मात्रा में ही डालना चाहिए। ऐसी स्थिति में जो घी हवन सामग्री में मिलाया गया है, उतना पर्याप्त है। यदि रोगी खाता-पीता है, तो हवन सामग्री में मिलाकर अथवा अलग से आहुति देकर घी का समुचित उपयोग किया जाना ठीक है। कुछ औषधियाँ ऐसी हैं जो हवन सामग्री के रूप में प्रत्येक रोग में प्रयुक्त होती हैं। उनके साथ-साथ उस विशेष रोग में उपयुक्त विशेष औषधियाँ भी मिला लेनी चाहिए। औषधियाँ पुरानी, सड़ी, घुनी, हीनवीर्य न हों। जितनी ताजी और अच्छी हवन औषधियाँ होंगी, उतना ही वे अधिक लाभ करेंगी। हवन सामग्री बनाने के लिए प्रायः सभी औषधियों को बराबर मात्रा में लिया जाता है तथा इनका दसवाँ भाग शक्कर या खाँडसारी गुड़ एवं आठवाँ भाग शहद डालकर गोघृत में लड्डू बनाकर प्रातः-सायं हवन किया जाता है। आवश्यकतानुसार पीछे भी दिन में तीन बार और रात को एक-दो बार किसी पात्र में अग्नि रखकर थोड़ी-सी औषधीय हव्य सामग्री थोड़ी देर के लिये रोगी के निकट धूप की भाँति जलाई जा सकती है।

हवन के पश्चात् समीप रखे हुए जल पात्र में दूर्वा, कुश अथवा पुष्प डुबोकर गायत्री मंत्र पढ़ते हुए रोगी पर अभिसिंचन करना चाहिए। साथ ही यज्ञ की भस्म मस्तक, हृदय, कंठ, पेट, नाभि एवं दोनों भुजाओं पर लगानी चाहिए। इसी प्रकार घृतपात्र में जो घृत बचा रहता है, उसमें से कुछ बूँदें लेकर रोगी के मस्तक एवं हृदय पर लगाना चाहिए। देखा गया है कि इन प्रयोगों से सामान्य औषधि चिकित्सा की अपेक्षा रोगी को अधिक लाभ मिलता है। इसका प्रभाव रोगी के शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही क्षेत्रों में पड़ता है, परिणामस्वरूप वह जल्दी स्वस्थ हो जाता है। जीवनीशक्ति बढ़ जाने से वह दुबारा उस बीमारी से आक्रांत नहीं होने पाता

यज्ञोपचार की संक्षिप्त प्रक्रिया

शास्त्रों में सूर्य को स्वास्थ्य का केंद्र माना गया है। सूर्य में रोगनिवारण की प्रचंड शक्ति विद्यमान है। यजुर्वेद में सूर्य को संसार की आत्मा कहा गया है-''**सूर्यआत्मा जगतस्तस्थुषश्च।**'' शास्त्रकारों का भी कहना है कि **"आरोग्यं भास्करादिच्छेत्"** अर्थात आरोग्य की कामना सूर्य संपर्क से करें। सूर्य शक्ति का प्रयोग करने से कई प्रकार के रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है और पूर्ण दीर्घायुष्य का आनन्द उठाया जा सकता है। नीरोगता, बलिष्ठता, दीर्घायु एवं सुख-समृद्धि के लिए सूर्य गायत्री मंत्र का उपयोग किया जाता है।

सूर्य गायत्री मंत्रः इस प्रकार है-

''ॐ भूर्भुवः स्वः भास्कराय विद्महे दिवाकराय धीमहि तन्नः सूर्यो प्रचोदयात्।''

उक्त मंत्र का उच्चारण करते हुए मंत्र के अंत में **'स्वाहाः ॥ इदम् सूर्याय इदम् न मम्'॥** कहते हुए कम से कम चौबीस आहुतियाँ नित्य डालनी चाहिए।

गहन वैज्ञानिक अध्ययन-अनुसंधानों के आधार पर पाया गया है कि जो वनौषधियाँ आयुर्वेद ग्रंथों में जिन रोगों के लिए गुणकारी मानी गई हैं, उन्हें हवन सामग्री के रूप में घृत और शक्कर मिलाकर सूर्य गायत्री मंत्र के साथ रोगी के निकट हवन करने से साधारण औषधि चिकित्सा की अपेक्षा रोगी को अधिक लाभ मिलता है। यज्ञोपचार प्रक्रिया में रोगानुसार गायत्री महामंत्र तथा उससे संबंधित अन्य चौबीस गायत्री मंत्रों द्वारा भी हवन किया जा सकता है। प्रत्येक बैठक में कम से कम चौबीस आहुतियाँ अवश्य देनी चाहिए। यज्ञ चिकित्सा करते समय उन्हीं विशिष्ट औषधियों को सूक्ष्म चूर्ण के रूप में सुबह-शाम एक-एक चम्मच लेते रहने से दूना लाभ मिलता है। इन्हें क्वाथ बनाकर भी लिया जा सकता है।

यज्ञ चिकित्सा का सर्वोत्तम काल

यज्ञ चिकित्सा का लगभग वही समय है, जो सामान्यतया यज्ञ का होता है। अरुणोदय से लेकर अर्थात सुबह लगभग पांच-छः बजे से लेकर नौ बजे सुबह तक एवं शाम को सूर्यास्त से एक घंटा पहले से सूर्यास्त-गोधूलि वेला तक दो-तीन घंटे की अवधि में की गई यज्ञ चिकित्सा सर्वाधिक लाभ पहुचाती है। शास्त्रों में यज्ञोपचार का सर्वोत्तम समय सूर्योदय एवं सूर्यास्त काल की संधिवेला को माना गया है। विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोग-परीक्षणों द्वारा भी अब यह तथ्य सिद्ध हो चुका है।

अध्याय-२

यज्ञ चिकित्सा के विविध प्रयोग

★★★★★★★

यज्ञ विज्ञान के अनेकों पक्ष हैं। इसमें मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य की अभिवृद्धि के साथ शारीरिक रोगों के निवारण में भी असाधारण सफलता मिलती है। स्वास्थ्य संवर्द्धन की यह यज्ञोपचार प्रक्रिया इतनी सरल और उपयोगी है कि इसके आधार पर मारक और पोषक दोनों ही तत्त्वों को शरीर के विभिन्न अंग-अवयवों में आसानी से पहुँचाया जा सकता है। विभिन्न औषधीय वनस्पतियों, पोषक द्रव्यों की हवि से हर कोई व्यक्ति बल, पोषण एवं रोगनिरोधक शक्ति प्राप्त कर सकता है तथा आगत व अनागत विभिन्न रोगों से बचकर दीर्घायुष्य प्राप्त कर सकता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि यज्ञीय ऊर्जा के साथ सूक्ष्मीभूत हुए औषधीय एवं पोषक तत्व साँस के साथ सीधे रस-रक्त में शीघ्रता से मिल जाते हैं और जैवकोशिकाओं को प्रभावित कर शरीर के रोग प्रतिरोधी क्षमता की अभिवृद्धि एवं जीवनी शक्ति का विकास असाधारण रूप से करते हैं। इसके प्रभाव से मन-मस्तिष्क से संबंधित सिरदर्द, आधासीसी, अनिद्रा, सनक, पागलपन, उन्माद आदि एवं नासिका, गला, फेफड़े आदि से संबंधित सरदी, जुकाम, खाँसी, दमा, ब्रौंकाइटिस, टी.बी. आदि रोगों में देखते-देखते लाभ पहुँचता है। गहन अध्ययन-अनुसंधानों के पश्चात् पाया गया है कि जिन स्थानों पर नित्य निरंतर यज्ञ होता रहता है, वहाँ क्षय, प्लेग जैसी महामारियों के जीवाणु-विषाणु पनपते तक नहीं हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में यज्ञ चिकित्सा के वर्णन क्रम में सबसे पहले विविध प्रकार के शारीरिक रोगों को लिया गया है, तदुपरान्त मानसिक रोगों का वर्णन किया गया है। पर्यावरण परिशोधन को सबसे अंत में लिया गया है, जिसके अंतर्गत षड्-ऋतुओं का क्रमानुसार वर्णन करते हुए स्वास्थ्य संवर्धन हेतु यज्ञ चिकित्सा का अनुसंधानपूर्ण सर्वथा नूतन अध्याय जोड़ा गया है। अंत में परिशिष्ट के अंतर्गत कुछ अनुसंधानात्मक शोधनिष्कर्षों के साथ रोगानुसार विशिष्ट हवन सामग्रियों तथा यज्ञ चिकित्सा में प्रयुक्त वनौषधियों के प्रचलित व वानस्पतिक नाम अकारादि क्रम से दिये गये हैं।

रोग निवारण की यज्ञोपचार प्रक्रिया

यज्ञोपैथी द्वारा सामान्य रोगों को दूर करने में प्रयुक्त होने वाली विशेष औषधियों के रोगानुसार नाम एवं उनकी प्रयोग-विधि का वर्णन आगे किया जा रहा है। यहाँ इस बात को विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिए कि इन विशिष्ट औषधियों से बनी हवन सामग्री के साथ ही निम्नोक्त 'कॉमन हवन सामग्री-नम्बर (१)' को भी बराबर मात्रा में मिलाकर तब रोगी के समीप हवन किया जाता है।

यों तो विशेष रोगों के लिए विशेष प्रकार की रोगानुसार हवन सामग्री तैयार की जाती है, परंतु जो औषधियाँ सभी रोगों में समान रूप से प्रयुक्त होती हैं, उनका संयुक्त नाम 'कॉमन हवन सामग्री-नम्बर (१)' रखा गया है। वह इस प्रकार है-

'कॉमन हवन सामग्री-नम्बर (१)'

(अ) 1. अगर 2. तगर 3. देवदार 4. चंदन
5. लाल चंदन 6. जायफल 7. लौंग 8. गुग्गुल
9. चिरायता 10. अश्वगंधा एवं 11. गिलोय।

(ब) 1. जौ 2. तिल 3. चावल

4. गोघृत 5. खाँडसारी गुड़ या शक्कर।

उपरोक्त औषधियों को बराबर मात्रा में लेकर स्वच्छ कर लेते हैं, तत्पश्चात् सुखा कर कूट-पीसकर उनका दरदरा जौकुट चूर्ण बना लेते हैं। इस प्रकार तैयार हवन सामग्री को एक डिब्बे में रखकर उस पर कॉमन हवन सामग्री-नम्बर (१)" का लेबल लगा दिया जाता है।

अब, जैसा कि आगे चिकित्सा प्रकरण में वर्णन किया जा रहा है, रोगानुसार उन विशिष्ट औषधियों को लेकर उनका भी जौकुट पाउडर बनाकर दूसरे डिब्बे में रख करके उस पर 'रोग विशेष की हवन सामग्री-नम्बर (२)' का लेबल चिपका देना चाहिए। यज्ञोपचार करते समय नम्बर (१) एवं नम्बर (२) के डिब्बों में से समान मात्रा में औषधीय हवन सामग्री एक अलग पात्र में निकाल कर मिश्रित कर लेना चाहिए और उसी से गायत्री महामंत्र या सूर्य गायत्री मंत्र द्वारा कम से कम चौबीस बार हवन करना चाहिए अर्थात् चौबीस आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिए। औषधियाँ जितनी ताजी और अच्छी होंगी, उतना ही अधिक वे लाभकारी होंगी। कोई औषधि या वस्तु अधिक महँगी हो अथवा अनुपलब्ध हो, तो उसकी पूर्ति अन्य दूसरी औषधियों की मात्रा बढ़ाकर की जा सकती है। यहाँ इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए कि 'कॉमन हवन सामग्री-नम्बर (१)' को रोग विशेष के लिए खाने में प्रयुक्त होने वाले चूर्ण या क्वाथ में नहीं मिलया जाता है। इसे केवल रोगों की विशिष्ट हवन सामग्री में मिलाकर मात्र हवन के लिये प्रयुक्त किया जाता है।

सामान्य रोगों की यज्ञ चिकित्सा

सामान्य रोगों की यज्ञ चिकित्सा के अंतर्गत पाचन तंत्र से संबंधित जिन रोगों को यहाँ सम्मिलित किया गया है, उनमें प्रमुख हैं-

१. यकृत रोग २. अपच ३. वमन

४. उदर रोग	५. डायरिया	६. हैजा
७. आँव-पेचिस	८. बवासीर	९. विष निवारण आदि।

१. यकृत (लीवर) एवं तिल्ली तथा उससे संबंधित रोग

इन अंगों से संबंधित रोगों की विशेष हवन सामग्री में निम्नलिखित औषधियाँ बराबर मात्रा में मिलाई जाती हैं-

1. शरपुंखा	2. कालमेघ	3. पिप्पलीमूल
4. पुनर्नवा	5. मकोय	6. सेमर (शाल्मली) फूल
7. जामुन छाल	8. अपामार्ग	9. भृंगराज
10. भुईआँवला	11. कुटकी	12. राई।

इन सभी बारह औषधियों को जौकुट कर हवन सामग्री बनाने के साथ ही इसकी कुछ मात्रा महीन पीसकर इसको कपड़े से छानकर पाउडर रूप में अलग रख लेना चाहिए और रोगी को सुबह-शाम एक-एक चम्मच चूर्ण जल के साथ खिलाना चाहिए। हवन करते समय पूर्व वर्णित 'कॉमन हवन सामग्री-नम्बर(१)' को भी बराबर मात्रा में मिला कर तब हवन करना चाहिए। यज्ञोपचार का पूर्ण लाभ तभी मिलता है।

२. अपच अर्थात् भोजन न पचना एवं संबंधित रोगों के लिए विशेष हवन सामग्री

अपच के लिए निम्नांकित औषधियों को बराबर मात्रा में लेकर हवन सामग्री तैयार की जाती है-

1. तालीसपत्र	2. तेजपत्र	3. पोदीना	4. हरड़
5. अमलतास	6. नागकेसर	7. काला जीरा	8. सफेद जीरा।

कॉमन हवन सामग्री-नंबर (१) को मिलाकर हवन करने के साथ ही उपर्युक्त आठों चीजों के कपड़छन चूर्ण को मिलाकर सुबह-शाम एक-एक चम्मच चूर्ण मट्ठा या जल के साथ रोगी को खिलाने से शीघ्र लाभ

मिलता है। उदर रोगों-विशेष कर अपच, अरुचि, मंदाग्नि आदि के लिए हवन के साथ ही निम्नांकित पाचक गोली बनाई और ली जा सकती है-

पाचक गोली

इसके निर्माण में निम्नलिखित औषधि द्रव्य प्रयुक्त किए जाते हैं-

1. हरड़-छोटी-125 ग्राम
2. हींग-2 ग्राम
3. कालीमिरच-10 ग्राम
4. जीरा-20 ग्राम
5. काला नमक-40 ग्राम
6. सेंधा नमक-20 ग्राम
7. खाने का मीठा सोडा-10 ग्राम
8. अमचूर-100 ग्राम
9. टार्टरिक एसिड-5 ग्राम
10. शक्कर-150 ग्राम
11. मुलहठी-25 ग्राम
12. किपूर सत्-2 ग्राम
13. सौंफ-20 ग्राम
14. अनारदाना-75 ग्राम।

गोली बनाने की विधि इस प्रकार है-

उपर्युक्त सभी चौदह औषधि घटकद्रव्यों को कूट-पीसकर उनका कपड़छन पाउडर तैयार करके सबको मिलाकर एकरस कर लेना चाहिए। इसके बाद पानी में आटे की तरह पाउडर को कड़ा गूँदकर आधे-आधे ग्राम की गोली बनाकर सुखा लेनी चाहिए। पाउडर की गोली न बनानी हो, तो उसे कैप्सूल में भरकर भी प्रयुक्त कर सकते हैं। कैप्सूल को एयरटाइट डिब्बे में ही रखें, अन्यथा वातावरण में व्याप्त नमी से वे पिघल सकते हैं। बनाते समय अगर अनारदाना न मिले, तो उसकी जगह हरड़ की ७५ ग्राम मात्रा और बढ़ाकर १२५ ग्राम के स्थान पर २०० ग्राम कर लेनी चाहिए । पाचन तंत्र की गड़बड़ी एवं पेट में गैस बनने की स्थिति में एक-दो गोली या कैप्सूल कुनकुने जल से निगल जाना चाहिए। इससे तुरंत राहत मिलती है और पाचन-प्रक्रिया में सुधार होता है।

३. वमन-उल्टी तथा संबंधित रोगों के लिए विशेष हवन सामग्री

इसके लिए निम्नांकित चीजों को सम भाग में मिलाकर हवन सामग्री तैयार करते हैं-

1. बायविडंग 2. पीपल 3. छोटी पिप्पली
4. ढाक या पलाश के बीज या सूखे फल
5. गिलोय 6. निशोथ 7. नीबू की जड़ या सूखे फल
8. आम की गुठली 9. प्रियंगु 10. धाय के बीज।

उक्त सभी दस चीजों के महीन छने हुए चूर्ण को सुबह-शाम एक-एक चम्मच शहद से खिलाना भी चाहिए। हवन करते समय कॉमन हवन सामग्री को भी बराबर मात्रा में मिला लेना चाहिए। कॉमन हवन सामग्री खाने में प्रयुक्त नहीं की जाती।

४. उदर रोग के लिए विशेष हवन सामग्री

इसके लिए जिन औषधियों को हवन सामग्री बनाने में प्रयुक्त करते हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं-

1. चव्य 2. चित्रक 3. तालीसपत्र
4. दालचीनी 5. आलूबुखारा 6. छोटी पिप्पली ।

हवन करने के साथ-साथ उक्त छह चीजों को मिलाकर बनाए गए सूक्ष्म चूर्ण को एक-एक चम्मच जल के साथ सुबह-शाम रोगी को खिलाते रहना चाहिए। हवन प्रक्रिया उपरोक्त विधि से ही की जाती है।

५. दस्त, डॉयरिया एवं संबंधित रोगों की विशिष्ट हवन सामग्री

इसमें निम्नांकित वनौषधियाँ मिलाई जाती हैं-

1. सफेद जीरा 2. दालचीनी 3. अजमोद 4. चित्रक
5. बिल्वगिरी 6. अतीस 7. सोंठ 8. चव्य
9. ईसबगोल 10. मौलश्री की छाल 11. तालमखाना 12. छुआरा।

उपर्युक्त सभी बारह चीजों को कूट-पीस कर जौकुट हवन सामग्री बनाकर उससे हवन करने के साथ ही इसका कुछ भाग सूक्ष्म चूर्ण बनाकर एक-एक चम्मच सुबह-शाम दही या मट्ठे के साथ रोगी को खिलाते रहना चाहिए। जब दस्त लग रहे हों, तो परहेज का, पथ्यापथ्य का विशेष ध्यान रखा जाता है। ऐसी स्थिति में दूध व दूध से बने मीठे पदार्थ, तली-भुनी चीजें एवं गरिष्ट चीजें नहीं देनी चाहिए। हवन करते समय कॉमन हवन सामग्री समभाग में मिला लेनी चाहिए।

६. हैजा की विशेष हवन सामग्री

इसमें मिलाई जाने वाली औषधियाँ इस प्रकार हैं-

1. धनिया 2. कासनी 3. सौंफ 4. कपूर 5. चित्रक ।

इन्हीं पाँचों हव्य पदार्थों के सूक्ष्म पाउडर को हवन करने के साथ-साथ रोगी को एक-एक चम्मच सुबह-शाम खिलाते रहना चाहिए। हवन प्रक्रिया कॉमन हवन सामग्री के साथ उपरोक्त प्रकार ही रहेगी।

७. आँव-पेचिस आदि के लिए विशेष हवन सामग्री

इसमें मिलाई जाने वाली औषधियाँ इस प्रकार हैं-

1. मरोड़फली 2. अनारदाना 3. पोदीना
4. आम की गुठली 5. कतीरा।

हवन के साथ-साथ उक्त पाँचों चीजों के महीन चूर्ण को जल के साथ एक-एक चम्मच सुबह-सायं रोगी को खिलाते रहने से द्विगुणित लाभ मिलता है। हवन प्रक्रिया ऊपर की भाँति ही रहेगी।

८. पाइल्स-बवासीर एवं तत्संबंधित रोगों की विशिष्ट हवन सामग्री

खान-पान की गड़बड़ी से प्राय: कब्ज बने रहने एवं अमीबायोसिस आदि के कारण यह बीमारी अधिकांश लोगों में पाई जाती है। शुष्क एवं

रक्तार्श दोनों ही स्थितियों में निम्नलिखित औषधियों से बनी हवि सामग्री अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है-

1. नागकेशर	2. हाऊबेर	3. धमासा
4. दारुहलदी	5. नीम की गुठली निबौली.	6. मूली के बीज
7. जावित्री	8. कमलकेशर	9. गूलर के फूल।

इन सभी नौ चीजों को जौकुट करने के साथ ही इसकी कुछ मात्रा को बारीक चूर्ण करके कपड़े से छान लेना चाहिए और हवन के साथ सुबह-शाम एक-एक चम्मच चूर्ण जल के साथ रोगी व्यक्ति को खिलाते रहना चाहिए। हवन का क्रम पहले की भाँति ही रहेगा।

बादी अर्श में असह्य पीड़ा की स्थिति में निम्नलिखित औषधियों की धूप भी दी जा सकती है। इस संबंध में वृहत् निघंटु-१० में उल्लेख है-

अश्वगंधोऽथ निर्गुण्डी वृहतीपिप्पली फलम् ।
धूपोऽयं स्पर्शमात्रेणह्यर्शसं शमने ह्यलम् ॥

अर्थात् अश्वगंधा, निर्गुण्डी, बड़ी कटेरी (कंटकारी) एवं पिप्पली का चूर्ण बनाकर इन्हें अग्नि में जलाकर धूप देने से बवासीर-अर्श की पीड़ा शांत होती है।

९. विष निवारण की विशिष्ट हवन सामग्री

इसमें निम्नलिखित वनौषधियाँ बराबर मात्रा में मिलाई जाती हैं -

1. बनतुलसी के बीज	2. अपामार्ग	3. इंद्रायण की जड़
4. करंज की गिरी	5. दारुहलदी	6. चौलाई के पत्ते
7. बिनौला गिरी	8. लाल चंदन।	

हवन के साथ ही इन्हीं आठ चीजों को मिलाकर बारीक चूर्ण बनाकर सुबह-शाम एक-एक चम्मच जल के साथ देते रहने से तत्काल लाभ मिलता है। यज्ञोपचार की प्रक्रिया पहले की भाँति ही है।

यज्ञ या हवन से रोगोपचार की महिमा अनंत है। आवश्यकता मात्र औषधिचयन, नियमितता एवं भाव-श्रद्धा की गहनता की त्रिवेणी के समन्वय की है। औषधिचयन के संदर्भ में आयुर्वेद ग्रंथों में स्पष्टोक्ति है-

सुरभीणि सुपुष्टेश्च कारकाणि सितादिकम् ।
द्रव्यारामादाय जुहुयाच्चतुर्थ रोगनाशकम् ॥

अर्थात् सुगंधित, पुष्टिकारक, मधुर एवं रोगनाशक, इन चार प्रकार के पदार्थों का हवन करने से नाना प्रकार के रोगों का निवारण होता है ।

अध्याय-३

ज्वरादि रोगों की यज्ञ चिकित्सा

★★★★★★★

विशिष्ट प्रकार की औषधियों से विनिर्मित हवन सामग्री के प्रयोग द्वारा नाना प्रकार के ज्वरों (फीवर) से कैसे छुटकारा पाया और स्वस्थ हुआ जा सकता है, इसका वर्णन इस अध्याय में किया जा रहा है। ज्वर चिकित्सा में हवन करते समय आहुतियाँ प्रदान करने का मंत्र सूर्य गायत्री मंत्र ही प्रयुक्त होता है। सभी प्रकार के ज्वरों में प्रयुक्त होने वाली अलग-अलग हवन सामग्री में पहले से बनी 'कॉमन हवन सामग्री नंबर (१)' को भी समभाग में मिलाकर तब हवन किया जाता है।

ज्वर की विविध श्रेणियाँ हैं। उदाहरण के लिए मलेरिया को ही लें, तो इसके एकतरा, तिजारी, चौथिया, डेंगू फीवर आदि कितने ही रूप हैं। इनमें ठंड देकर बुखार आता है और पसीना देकर उतर जाता है। इसी तरह वात, पित्त, कफ के कुपित होने, बैक्टीरिया, वायरस जैसे जीवाणुओं-विषाणुओं के कारण शरीर के विविध अंग-अवयवों में संक्रमण होने से तरह-तरह के बुखार उत्पन्न होते हैं। समयानुसार इनकी तीव्रता घटती-बढ़ती रहती है और तदनुसार रोगी के शरीर का तापमान भी परिवर्तित होता रहता है। ऐसी अवस्था में जिन रोगियों को सामान्य बुखार होते हैं और उन्हें चलने-फिरने, उठने-बैठने, स्नान करने आदि में कठिनाई नहीं होती, वे स्वयं हवन कर सकते हैं। किंतु जिन्हें उन सब बातों में कठिनाई अनुभव होती है, वे स्वयं

आहुति न डालकर केवल हवन के समीप आराम से बैठ सकते हैं। चलने -फिरने एवं उठने-बैठने में असमर्थ रोगियों की शैय्या के पास ही ताँबे से बने हवनकुण्ड में हवन करना चाहिए। रेडीमेड हवनकुण्ड न होने पर जमीन पर ही मिट्टी या ईंट से छोटा-सा हवनकुण्ड बनाकर हवन किया जा सकता है। रोगी को पूर्वाभिमुख होकर हवन करना तथा ईशान कोण की ओर मुख करके इष्टदेवता को नमन करते हुए औषधि सेवन करना चाहिए।

यहाँ पर रोगानुसार जिस विशिष्ट प्रकार की हवन सामग्री से हवन करने का विधि-विधान बताया जा रहा है, उन्हीं औषधियों का सूक्ष्मीकृत कपड़छन पाउडर भी नियमित रूप से सुबह-शाम एक-एक चम्मच रोगी को खिलाते रहना चाहिए। इससे रोग-शमन में तीव्रता आती है और व्यक्ति जल्दी स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करता है।

१. साधारण बुखार (सिंपिल फीवर) की विशेष हवन सामग्री

इसके लिए निम्नांकित औषधियाँ बराबर मात्रा में ली जाती हैं-

1. चिरायता 2. तुलसी की लकड़ी 3. तुलसी के बीज
4. पटोलपत्र 5. करंज की गिरी 6. नागरमोथा
7. लाल चंदन 8. लाल कनेर के पुष्प 9. नीम छाल
10. गिलोय 11. कुटकी 12. मुलहठी।

कॉमन हवन सामग्री-नम्बर (१) को समभाग में मिलाकर हवन करने के साथ ही इन्हीं बारह द्रव्यों के सम्मिश्रित कपड़छन चूर्ण को सुबह-शाम एक-एक चम्मच कुनकुने जल के साथ रोगी व्यक्ति को सेवन भी कराते रहना चाहिए।

(२) शीत ज्वर-कॉमन कोल्ड (मलेरिया) की विशेष हवन सामग्री

इसमें निम्न औषधियाँ बराबर मात्रा में मिलाई जाती हैं-

1. चिरायता 2. नीम छाल या नीम बीज की गिरी

3. पटोलपत्र 4. गिलोय 5. कालमेघ
6. कुटज छाल (कुड़ा) 7. नागरमोथा 8. करंज की गिरी
9. नीम पुष्प या पत्र 10. कुटकी 11. तुलसी पत्र
12. लाल चंदन 13. चित्रक।

उक्त १३ औषधियों के महीन चूर्ण को सुबह-शाम एक-एक चम्मच गरम जल के साथ मलेरिया ग्रस्त व्यक्ति को देते रहना चाहिए। हवन करते समय उक्त सामग्री में ही 'कॉमन हवन सामग्री-नम्बर (१)' बराबर मात्रा में तथा इनका दसवाँ भाग शर्करा एवं दसवाँ भाग ही घी मिलाकर तब हवन करना चाहिए।

(३) जाड़े का बुखार, तिजारी व चौथिया मलेरिया की विशेष हवन सामग्री

यह मलेरिया बुखार एक दिन बाद एवं दो दिन बाद अंतर देकर ठंडक के साथ आता है। इसमें प्रयुक्त होने वाली हवन सामग्री में निम्नांकित औषधियाँ मिलाई जाती हैं-

1. अडूसा 2. पटोल पत्र 3. तेजपत्र 4. अमलतास
5. दारुहलदी 6. चिरायता 7. कालमेघ 8. बच
9. गिलोय 10. लाल चंदन 11. शालिपर्णी 12. पृश्निपर्णी
13. देवदार 14. खस 15. करंज गिरी 16. तुलसी पत्र।

हवन के साथ ही इन सभी सोलह औषधियों का कपड़छन पाउडर सुबह-शाम एक-एक चम्मच कुनकुने जल के साथ रोगी को खिलाते रहने पर तत्काल लाभ मिलता है। हवन प्रक्रिया उपरोक्त की भांति ही रहेगी।

४. डेंगू एवं वायरल फीवर की विशिष्ट हवन सामग्री

मलेरिया की तरह ही गरमी में एवं बरसात के समय डेंगू फीवर एवं वायरल फीवर का प्रकोप विशेष रूप से देखा जाता है। एलोपैथी दवाओं का

सेवन करने की अपेक्षा वनौषधियों से निर्मित विशिष्ट प्रकार की हवन सामग्री से हवन करने, उसी को चूर्ण रूप में या क्वाथ रूप में सेवन करने से यह दोनों प्रकार की व्याधियाँ समूल रूप से कम समय में ही नष्ट हो जाती हैं।

डेंगू फीवर, वायरल फीवर एवं संबंधित रोगों की विशेष हवन सामग्री में बराबर मात्रा में मिलाये जाने वाले घटक तत्त्व इस तरह से हैं-

1. चिरायता 2. कालमेघ 3. आर्टीमीसिया एनुआ
4. कपूर तुलसी 5. शरपुंखा 6. सप्तपर्णी
7. मुलहठी 8. गिलोय 9. सारिवा
10. विजया 11. कुटकी 12. करंज गिरी
13. पटोल पत्र 14. निबौली या नीम छाल।

समभाग कॉमन हवन सामग्री-नम्बर (१) मिलाकर हवन करने के साथ ही उक्त सभी १४ चीजों के समभाग बारीक कपड़छन पाउडर को हलके कुनकुने जल के साथ सुबह-शाम एक-एक चम्मच रोगी व्यक्ति को खिलाते रहने से उक्त रोगों में शीघ्र लाभ मिलता है।

५. दंडकज्वर की विशेष हवन सामग्री (सभी संक्रामक रोगों पर)

दंडक ज्वर की हवन सामग्री बनाने के लिए जो औषधियाँ बराबर मात्रा में प्रयुक्त होती हैं, वे इस प्रकार हैं-

1. पटोल पत्र 2. कालमेघ 3. चिरायता
4. आर्टीमीसिया एनुआ 5. कुटकी 6. नीम गिरी (निबौली)
7. गिलोय 8. करंज गिरी 9. कपूर तुलसी।

हवन के साथ ही उक्त सभी ९ चीजों को मिलाकर कपड़छन करके प्राप्त पाउडर को एक-एक चम्मच सुबह व शाम को जल के साथ रोगी को खिलाना चाहिए। हवन प्रक्रिया पूर्व की तरह ही रहेगी ।

६. विषम ज्वर की विशेष हवन सामग्री

जो ज्वर कभी सरदी से, कभी गरमी से, कभी कम, कभी ज्यादा तथा समय-कुसमय अनियमित रूप से आते हैं, उन्हें विषम ज्वर कहते हैं। विषम ज्वर की विशिष्ट हवन सामग्री बनाने में जो औषधियाँ समभाग में प्रयुक्त की जाती हैं, वे इस प्रकार हैं-

1. चिरायता 2. कालमेघ 3. आर्टीमीसिया एनुआ
4. करंज गिरी 5. नीम गिरी (निबौली) 6. नीम छाल
7. सहदेवी 8. गिलोय 9. पाढ़ल की जड़ (पाढ़.)
10. नागरमोथा 11. तुलसी पत्र 12. कपूर तुलसी
13. कुटकी 14. पटोल पत्र।

हवन के साथ ही इन सभी १४ चीजों को मिलाकर बनाए गए कपड़छन पाउडर को एक चम्मच सुबह एवं एक चम्मच शाम को जल के साथ रोगी को अवश्य खिलाते रहना चाहिए। इस तरह के विषम ज्वर को शमन करने में यह योग अतीव उपयोगी सिद्ध होता है। हवन की प्रक्रिया पूर्ववत ही रहेगी।

७. उष्णज्वर की विशिष्ट हवन सामग्री- टायफायड, पैराटायफायड एवं संबंधित रोगों पर.

इसके लिए जिन औषधियों को विशेष रूप से हवन करने एवं खाने में प्रयुक्त किया जाता है, उनके नाम इस प्रकार हैं-

1. इंद्रजौ 2. पटोलपत्र 3. नीम की गिरी (निबौली)
4. नेत्रबाला या सुगंधबाला 5. त्रायमाण 6. काला जीरा
7. चौलाई की जड़ 8. बड़ी इलायची 9. मुलहठी
10. वासा 11. गिलोय 12. नागरमोथा।

इन सभी १२ चीजों को मिलाकर बारीक पिसा हुआ कपड़छन पाउडर एक-एक चम्मच सुबह-शाम जल के साथ रोगी को खिलाना चाहिए।

टायफायड एवं पैराटायफायड में इससे शीघ्र लाभ मिलता है। हवन की प्रक्रिया पहले की भांति ही रहेगी।

८. जीर्ण ज्वर की विशिष्ट हवन सामग्री

इसमें निम्नलिखित वनौषधियाँ समभाग में मिलाई जाती हैं–

1. गिलोय	2. चिरायता	3. कालमेघ
4. आर्टीमीसिया एनुआ	5. नागरमोथा	6. कुटकी
7. अश्वगंधा	8. त्रायमाण	9. नेत्रबाला
10. खिरेंटी (बला)	11. सुगंधबाला या तगर	12. मुलहठी
13. मुनक्का	14. तुलसी पत्र	15. पटोलपत्र
16. नीम छाल	17. जवासा	18. इंद्रजौ।

हवन करने के साथ ही उक्त सभी अठारह चीजों को मिलाकर बनाए गए कपड़छन चूर्ण को जल के साथ सुबह-शाम एक-एक चम्मच लेते रहना चाहिए। चूँकि ज्वरों के आरंभ में समुचित चिकित्सा के अभाव में और रोगवृद्धि ज्वरांत में अपथ्य, अज्ञानता, कब्ज एवं अधिक ताप के कारण यह ज्वर होता है। अत: समुचित आहार-विहार एवं पथ्य-परहेज का इसमें विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। हवन करते समय कॉमन हवन सामग्री-नं० १. को भी बराबर मात्रा में मिला लेना चाहिए।

९. सरदी, जुकाम, बुखार की विशेष हवन सामग्री

सरदी-जुखाम के साथ ही यदि बुखार आता हो, तो निम्नलिखित औषधियों को समान मात्रा में लेकर हवन सामग्री बनाकर सूर्य गायत्री मंत्र के साथ कम से कम चौबीस बार नित्य हवन करना चाहिए। पूर्वोक्त 'कॉमन हवन सामग्री-नम्बर-१.' को भी रोगानुसार तैयार की गई सभी प्रकार की विशिष्ट हवन सामग्री में बराबर मात्रा में मिश्रित कर तब हवन किया जाता है। इस बात को भी सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि घी, जौ, शक्कर हवन करते समय अलग से मिलाए जाते हैं।

सरदी-जुकाम, बुखार की विशेष हवन सामग्री में मिलाई जाने वाली औषधियाँ इस प्रकार हैं-

1. दूब	2. पोस्त	3. कासनी
4. चिरायता	5. कालमेघ	6. शरपुंखा
7. सप्तपर्णी	8. भुईआँवला	9. पटोलपत्र
10. नीमछाल	11. कटु	12. कुटकी
13. आर्टीमीसिया एनुआ	14. तुलसी पत्र	15. वासा
16. भारंगी	17. कंटकारी	18. मुलहठी।

हवन करने के साथ ही उक्त सभी अठारह औषधियों के बारीक पिसे एवं कपड़छन पाउडर को सुबह-शाम एक-एक चम्मच कुनकुने जल के साथ रोगी को खिलाते रहना चाहिए। इससे सरदी-जुकाम में तत्काल लाभ मिलता है।

१०. जुकाम की विशेष हवन सामग्री-खाँसी, ठंड लगना, हाथ-पैर में टूटन आदि में.

इसमें निम्नांकित वनौषधियाँ मिलाई जाती हैं-

1. दूर्वा घास (दूब)	2. कासनी	3. सौंफ
4. उन्नाव	5. बहेड़ा	6. धनिया
7. तुलसी पत्र	8. अंजीर	9.गुलाब के फूल
10. बनफ्शा	11. तुलसी की मंजरी	12. चिरायता।

इन सभी बारह चीजों के सूक्ष्मीकृत पाउडर को सुबह-शाम एक-एक चम्मच कुनकुने जल के साथ जुकाम पीड़ित व्यक्ति को हवन करने के पश्चात् देते रहने से शीघ्रता से आराम मिलता है।

११. खाँसी की विशेष हवन सामग्री

(सरदी, जुकाम एवं संबंधित ज्वरों पर)

इसके लिए निम्नलिखित औषधियों को बराबर मात्रा में मिलाकर हवन सामग्री तैयार की जाती है-

1. मुलहठी	2. पान की जड़(कुरदान)	3. हलदी
4. अनार	5. कंटकारी	6. वासा
7. बहेड़ा	8. उन्नाव	9. अंजीर की छाल
10. काकड़ासिंगी	11. बड़ी इलायची	12. कुलंजन
13. तुलसी की मंजरी	14. गिलोय	15. दालचीनी
16. लौंग	17. मुनक्का	18. पिप्पली।

कॉमन हवन सामग्री मिलाकर हवन करने के पश्चात् उक्त अठारह चीजों को समान मात्रा में मिलाकर बनाए गए कपडछ़न चूर्ण को सुबह एवं शाम को एक-एक चम्मच शहद के साथ रुग्ण व्यक्ति को खिलाते रहना चाहिए।

विशेष ज्ञातव्य: सर्दी-जुकाम के साथ वायरल फीवर एवं ब्रौंकाइटिस में विशेष कर एलर्जिक ब्रौंकाइटिस में निम्नांकित कैप्सूल अत्यंत लाभकारी सिद्ध होता है। खाली कैप्सूल मेडिकल स्टोरों पर मिल जाते हैं। उन्हें लेकर निम्न पाउडर को उसमें भर लेते हैं-

१. शोधित अतीस-१०० मि. ग्राम २. कुटकी-४०० मि. ग्राम।

इसी अनुपात में आवश्यकतानुसार दोनों को लेकर बारीक कूट-पीस कर कपड़छन करके आपस में अच्छी तरह मिला लेते हैं। इसके पश्चात् इसे दो-दो ग्राम की मात्रा में खाली कैप्सूल में भर कर रख लेते हैं और सुबह-शाम दो-दो कैप्सूल कुनकुने जल से रोगी को खिला देते हैं। आगे भी आवश्यकतानुसार उपरोक्त औषधियों को उसी अनुपात में लेकर अधिक मात्रा में कैप्सूल बनाए जा सकते हैं।

१२. खाँसी, अस्थमा, क्रॉनिक ब्रौंकाइटिस आदि रोगों की विशिष्ट हवन सामग्री

अस्थमा या दमा की आरंभिक अवस्था से लेकर 'क्रॉनिक' अवस्था तक के लिए निम्नांकित वनौषधियों को बराबर मात्रा में लेकर जौकुट हवन सामग्री बनाकर नित्य प्रात: हवन करने एवं शाम को इसी हवन सामग्री से अग्निधूप देने से शीघ्र लाभ मिलता है। हविर्द्रव्य इस प्रकार हैं-

1. धाय के फूल	2. पोस्त के डोंड़े	3. बबूल की छाल
4. मालकांगनी	5. बड़ी इलायची	6. तुलसी पंचांग
7. वासा-अडूसा के पत्ते	8. आक के पीले पत्ते	9. नागरमोथा
10. कंटकारी	11. काकड़ासिंगी	12. लौंग
13. भाँग	14. बहेड़े का छिलका	15. चिरायता
16. अपामार्ग के बीज	17. धनिया	18. अजवायन
19. चंदन	20. हलदी	21. इंद्रजौ
22. सोंठ	23. छोटी पीपल	24. अतीस।

हवन के साथ ही इन सभी चौबीस चीजों को मिलाकर बनाए गए कपड़छन चूर्ण को सुबह एवं शाम को एक-एक चम्मच शहद के साथ खिलाते रहने से दूना लाभ मिलता है और अस्थमा रोग धीरे-धीरे सदा के लिए समूल नष्ट हो जाता है।

१३. उष्णता की विशिष्ट हवन सामग्री-शरीर में गरमी की अधिकता एवं संबंधित रोगों पर.

शरीर में उष्णता अधिक बढ़ जाने पर निम्नांकित औषधियों को बराबर मात्रा में लेकर हवन सामग्री बनाई जाती है और नित्य प्रात: सूर्य गायत्री मंत्र के साथ हवन किया जाता है-

1. धनिया	2. कासनी	3. बनगुलाब के फूल
4. आँवला	5. खस	6. खसखस- पोस्तबीज.
7. सौंफ	8. बनफ्शा।	

कॉमन हवन सामग्री के साथ हवन करने के बाद इन सभी आठ चीजों को मिलाकर बनाए गए सूक्ष्म पाउडर को एक-एक चम्मच सुबह-शाम जल से खिलाते रहने से अधिक लाभ मिलता है।

१४. रक्त विकार की विशेष हवन सामग्री

इसके लिए निम्नलिखित औषधियों को बराबर मात्रा में मिलाकर हवन सामग्री तैयार की जाती है-

1. धमासा 2. सारिवा 3. कुटज छाल (कुड़ा)
4. अडूसा (वासा) 5. शरपुंखा 6. मंजीष्ठ
7. कुटकी 8. रास्ना 9. खदिर (खैर)
10. शीतलचीनी 11. चोपचीनी 12. नीम के फूल या पत्ते
13. दारुहलदी 14. कपूर 15. चमेली के पत्ते
16. चकौंड़ के बीज (चक्रमर्द-बीज) 17. बाकुची
18. जवासा 19. कालमेघ।

समभाग कॉमन हवन सामग्री मिलाकर हवन करने के पश्चात् उपरोक्त सभी १९ चीजों को मिलाकर कपड़छन किए हुए पाउडर में से सुबह-शाम एक-एक चम्मच चूर्ण जल के साथ रोगी को खिलाते रहने से तत्काल लाभ मिलता है। रक्त विकार में पथ्य-परहेज का विशेष ध्यान रखना चाहिए और प्रभावित व्यक्ति को खटाई एवं तली-भुनी चीजें नहीं देनी चाहिए।

१५. चर्मरोग-दाद, खाज, खुजली, एलर्जी आदि की विशिष्ट हवन सामग्री

इसके लिए निम्नलिखित औषधियों को समान मात्रा में लेकर हवन सामग्री बनाई जाती है-

1. शीतलचीनी 2. चोपचीनी 3. नीम के फूल या पत्ते
4. चमेली के पत्ते 5. दारुहलदी 6. कपूर
7. मेथी के बीज 8. पद्माख 9. मेंहदी के पत्ते
10. चक्रमर्द के बीज।

उपरोक्त सभी चीजों को कॉमन हवन सामग्री के साथ मिला कर नित्य हवन करने के पश्चात् समान मात्रा में मिलाकर बनाए गए उक्त दस औषधियाँ के बारीक कपड़छन पाउडर में से सुबह एवं शाम एक-एक चम्मच चूर्ण जल या शहद के साथ खाते या खिलाते रहना चाहिए।

१६. ल्यूकोडर्मा-सफेद दाग या श्वित्र की विशिष्ट हवन सामग्री

इसके लिए निम्नलिखित वनौषधियों को समान मात्रा में लेकर हवन सामग्री बनाई जाती है–

1. अपराजिता मूल 2. अंजीर के पत्ते 3. ईश्वरमूल
4. काला उड़द 5. काला तिल 6. काली मिर्च
7. केले के पत्ते 8. खैर की लकड़ी 9. गिलोय
10. गूलर या कठगूलर 11. गुड़ 12. गोरोचन
13. चक्रमर्द 14. चमेली के पत्ते 15. चोपचीनी
16. तुलसी पत्र 17. दारुहलदी 18. पद्माख
19. नीम पत्र या निबौली 20. पिप्पली
21. फूलप्रियंगु 22. बकायन 23. बाकुची
24. बायविडंग 25. मुलहठी 26. रसौत या रसांजन
27. लहसुन 28. लाक्षा या लाख 29. विजयसार या बीजा
30. शीतलचीनी या कबाबचीनी 31. सौंफ
32. हलदी 33. त्रिफला (समभाग-आंवला, हरड़, बहेड़ा)।

उपरोक्त सभी चीजों को समभाग में लेकर कूट-पीसकर उनका जौकुट पाउडर बना लेते हैं और कॉमन हवन सामग्री-नम्बर(१)की बराबर मात्रा मिलाकर नित्य हवन करते हैं। खाने के लिए प्रयुक्त होने वाले चूर्ण का, रोग की प्रबलता के अनुसार उक्त ३३ वनौषधियों में से निर्धारण किया जाता है। समिधा के लिए गाय के गोबर के सूखे कंडे या उपले अधिक उपयुक्त होते हैं। रक्त विकार की तरह ही सभी प्रकार के त्वचा रोगों में भी परहेज करना आवश्यक है। इसमें भी खटाई, तली, भुनी चीजें एवं गरिष्ट पदार्थ नहीं खाने चाहिए।

अध्याय-४

प्राणघातक संक्रामक रोगों की यज्ञोपचार प्रक्रिया

★★★★★★★★★★

वैज्ञानिक अनुसंधान एवं विविध प्रयोग-परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि विशेष प्रकार से तैयार की गई औषधीय हवन सामग्री से नित्य-नियमित रूप से गायत्री महामंत्र या सूर्य गायत्री मंत्र द्वारा हवन करने से सभी प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक आधि-व्याधियों से छुटकारा पाया जा सकता है। जिन स्थानों पर प्रतिदिन हवन या अग्निहोत्र होता है, वहाँ रोग उत्पन्न करने वाले रोगाणु-विषाणु पनपने ही नहीं पाते। यदि दूषित वातावरण या गंदगी अथवा संक्रमण के कारण फैल भी गए, तो यज्ञीय ऊर्जा के प्रभाव से वहाँ पर अधिक दिनों तक वे टिक नहीं पाते। यज्ञीय ऊर्जा केवल रोगाणुओं का ही शमन नहीं करती, वरन् वातावरण को सुगंधित बनाने, प्राणपर्जन्य उत्पन्न करने एवं पुष्टि प्रदान करने की महत्त्वपूर्ण भूमिका भी संपन्न करती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि हवन में जो पदार्थ डाले जाते हैं,वे वस्तुत: चार प्रकार के होते हैं-(१) पुष्टिकारक (२) रोगनाशक (३) सुगंधित और (४) मिष्ट। इनमें से मिष्ट और पुष्टिकारक औषधियों के सूक्ष्म परमाणु यज्ञाग्नि में पड़कर वायुभूत होकर पुष्टि-पोषण प्रदान करते हैं और सुगंधित औषधियाँ चित्त को प्रसन्न करती हैं। चिरायता, बच, गूगल, नीम, नागरमोथा, लौंग, जायफल, जावित्री, अपराजिता, कालमेघ, अगर, चंदन, लोबान आदि के रोगनाशक परमाणु संक्रामक एवं प्राणघातक रोगोत्पत्तिकारक जीवाणुओं-विषाणुओं को नष्ट करते एवं रक्तशोधन कर जीवनीशक्ति का अभिवर्धन करते हैं।

इस अध्याय के अंतर्गत चेचक, खसरा (मीजल्स), प्लेग, टी.बी. अर्थात क्षयरोग, कैंसर एवं स्वाइन फ्लू जैसे प्राणघातक रोगों की विशिष्ट यज्ञोपचार प्रक्रिया का वर्णन किया गया है।

१. खसरा एवं चेचक की विशेष हवन सामग्री

ये दोनों बीमारियाँ प्राय: गंदगी के कारण फैलती हैं। बच्चों एवं महिलाओं पर इसका प्रकोप ज्यादा पाया जाता है। संक्रामक होने के कारण यह एक व्यक्ति से दूसरे तक शीघ्र फैलती हैं। मलिन बस्तियों में इसका प्रसार अधिकतर देखा जाता है। इससे बचने के लिए पहले से ही तथा रोगोत्पति के समय या बाद में नीचे लिखी गई बनौषधियों से बनाई गई विशेष हवन सामग्री से रोगी के निकट अथवा रोगी के कमरे में नित्य हवन करने से न केवल चेचक एवं खसरे के प्रकोप को रोका जा सकता है, वरन् इसे पूरी तरह समूल नष्ट किया जा सकता है।

खसरा एवं चेचक की विशिष्ट हवन सामग्री में प्रयुक्त होने वाली औषधियाँ इस प्रकार हैं-

1. मेंहदी की जड़	2. नीम की छाल	3. हलदी
4. पटोल पत्र	5. श्योनाक	6. कलौंजी
7. टीक-सागौन के फल	8. जावित्री	9. बाँस की छाल
10. खैर की छाल	11. धमासा	12. धनिया
13. चौलाई की जड़	14. गिलोय	15. तुलसी पत्र
16. बच	17. ब्राह्मी	18. हुलहुल
19. नागरमोथा	20. सारिवा	21. पाढ़ल
22. कुटकी	23. खिरैंटी	24. खस
25. वासा (अडूसा)	26. चिरायता	27. पित्तपापड़ा
28. चंदन	29. जायफल	30. दाख।

उपर्युक्त सभी तीस चीजों को बराबर मात्रा में लेकर कूट-पीसकर जौकुट पाउडर बना लेना चाहिए और कॉमन हवन सामग्री मिलाकर उससे हवन करना चाहिए। इन्हीं तीस चीजों के जौकुट पाउडर की कुछ मात्रा को खूब महीन पीसकर कपड़छन चूर्ण तैयार कर लेना चाहिए और सुबह-शाम एक-एक चम्मच चूर्ण जल के साथ रोगी व्यक्ति को खिलाते रहना चाहिए। चूर्ण रूप में यदि न देना चाहें, तो इसे क्वाथ रूप में भी दे सकते हैं। छः-सात चम्मच चूर्ण को आधा लीटर पानी में मंद आँच में उबलने देना चाहिए और जब क्वाथ चौथाई रह जाए, तो उसे छानकर ठंडा होने पर रोगी को सुबह-शाम पिलाते रहने से वह जल्दी स्वस्थ होता है।

किसी भी व्यक्ति की किसी बीमारी की यज्ञ चिकित्सा करते समय इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि हवन करते समय रोग विशेष के लिए बनाई गई हवन सामग्री में पूर्व वर्णित कॉमन हवन सामग्री, नम्बर (१) को भी बराबर मात्रा में मिला लेना चाहिए। हवन का प्रभावी लाभ तभी मिलता है। खाने वाले पाउडर में इन्हें नहीं मिलाया जाता। इसलिए हवन करने से पूर्व ही रोग विशेष की हवन सामग्री की कुछ मात्रा कपड़छन करके अलग डिब्बे में रख लेते हैं और इसे अनुपान विधि से खाने में प्रयुक्त करते हैं।

हवन सामग्री बनाते समय पूर्वोक्त तीस औषधियों में से यदि सभी उपलब्ध नहीं हो पाती, तो ऐसी स्थिति में जितनी भी चीजें आसानी से मिल जाती हैं, उन्हें ही जौकुट करके हवन चिकित्सा आरंभ कर देनी चाहिए। जो औषधियाँ अधिक मँहगी हों, उनकी मात्रा कम की जा सकती है तथा उनकी भरपाई अन्य निर्धारित औषधियों की मात्रा बढ़ाकर की जा सकती है। जहाँ तक हो सके, हवन के लिए समिधा चीड़, सागौन, आम व देवदार में से किसी एक की उपयोग में लानी चाहिए। नीम व सिरस का प्रयोग सभी कार्यों में किया जा सकता है। नीम की पत्तियाँ द्वार पर टाँगी जा सकती हैं। इससे संक्रमण नहीं फैलने पाता।

विशेष ज्ञातव्य-खसरे एवं चेचक को फैलने से रोकने के लिए यदि उपर्युक्त हवन सामग्री न जुटाई जा सके, तो निम्नलिखित चीजों को मिलाकर भी हवन किया जा सकता है-

१. गुग्गुल 2. आक के सूखे पत्ते 3. काला तिल
4. शक्कर 5. घी।

इस संदर्भ में देवीभागवत् ११/२४/२९-३०में कहा गया है-

मधुत्रियहोमेन नयेच्छान्तिं मसूरिकाम् ।
कपिलासर्पिषाहुत्वा नयेच्छान्तिं मसूरिकाम् ॥

त्रिमधु अर्थात् दूध, दही और घी का हवन करने से मसूरिका-चेचक रोग को शांत किया जा सकता है। इसी तरह अकेले कपिला गाय के घी से हवन करके भी चेचक रोग को ठीक किया जा सकता है। बट (बरगद), मंजीष्ठ, सिरस एवं गूलर की छाल को पीसकर घी मिलाकर लेप करने से भी चेचक के दाने जल्दी सूख जाते हैं और जलन शांत हो जाती है।

२. प्लेग की यज्ञीय चिकित्सा

यों तो 'प्लेग' नामक महामारी को चिकित्सकीय प्रयासों के कारण समाप्तप्राय मान लिया गया है, लेकिन कभी-कभी चूहों में पाए जाने वाले एक विशेष प्रकार के पिस्सुओं के कारण फैलने वाली यह प्राणघातक महामारी देखते ही देखते बहुत बड़ी आबादी को अपने चपेट में ले लेती है। ऐसी स्थिति में एंटीबायोटिक दवाओं के आभाव में अधिकांश संक्रमित व्यक्ति काल के ग्रास बनने लगते हैं। इन परिस्थितियों में जगह-जगह पर व्यापक पैमाने पर हवन करने से रोग के प्रसार को रोका जा सकता है और रोगग्रस्त व्यक्तियों को यज्ञोपचार के माध्यम से स्वस्थ किया जा सकता है।

प्लेग की विशिष्ट हवन सामग्री

प्लेग के लिए यज्ञोपचार में प्रयुक्त होने वाली विशिष्ट हवन सामग्री में जो औषधियाँ मिलाई जाती हैं, वे इस प्रकार हैं-

1. कुटकी-100 ग्राम	2. अश्वगंधा-200 ग्राम
3. चिरायता-100 ग्राम	4. गिलोय-100 ग्राम
5. कालमेघ-100 ग्राम	6. बच-200 ग्राम
7. अपराजिता-200 ग्राम	8. नीमपत्र या नीम की छाल-100 ग्राम
9. नागरमोथा-200 ग्राम	10. गुग्गुल-200 ग्राम
11. लाल चंदन-100 ग्राम	12. इन्द्रायण की जड़-200 ग्राम।

इन बारह चीजों को मिलाकर जौकुट रूप में जो हवन सामग्री बनाई जाती है, उसी में से कुछ हिस्सा बारीक कपड़छन करके अलग डिब्बे में रख लेना चाहिए और रोगी व्यक्ति को सुबह-शाम एक-एक चम्मच चूर्ण शहद के साथ खिलाते रहना चाहिए। हवन करते समय 'कॉमन हवन सामग्री-नंबर (१)' को भी बराबर मात्रा में मिला लेना चाहिए। साथ ही इसमें घी १०० ग्राम, शक्कर १०० ग्राम और काला तिल १०० ग्राम अतिरिक्त रूप में मिलाकर तब हवन करना चाहिए।

अन्य प्रयोग-

प्लेग के कारण शरीर पर उभरी हुई गाँठों पर अश्वगंधा, जिसे गुजराती में 'घोड़ाकुन' और दक्षिण में 'ढोरगुंज' तथा गोवा में 'पत्थर फोड़ी' कहते हैं एवं जिसका वानस्पतिक नाम 'विथेनिया सोमनिफेरा' है, इसकी ताजी या सूखी जड़ को पानी में घिसकर चंदन की तरह लेप करने से गाँठें सूख जाती हैं। इसके साथ ही सूजन वाले स्थान पर इसे लेप करने से सूजन एक जगह पर एकत्र हो जाती है और रोगी को आराम मिलता है। इसके प्रभाव से बेहोश रोगी भी होश में आ जाता है। बराबर लेप करते रहने पर गाँठ पककर अंत में फूट जाती है। ऐसी स्थिति में गाँठ के मुँह पर गेहूँ के आटे की पुल्टिस बाँधने और आस-पास अश्वगंधा की जड़ का लेप लगाते रहने से सारा मवाद बाहर आ जाता है और रोगी व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है। अंत में गाँठ के मुँह पर कोई भी एण्टीबायोटिक क्रीम, गाय का शुद्ध घी या मात्र पेट्रोलियम जेली मलहम लगाते रहने पर घाव पूरी तरह भर जाता है।

इसी तरह इन्द्रायण की ताजी जड़, जो गुच्छे में सबसे नीचे लगी होती है (सातवीं जड़), उसको पानी में घिसकर गाँठ पर लगाने एवं पिलाने से प्लेग की गाँठे ठीक हो जाती हैं।

(३) क्षयरोग की विशिष्ट यज्ञोपचार प्रक्रिया

टी.बी.-क्षय अर्थात राजयक्ष्मा के संबंध में वेद, पुराण एवं आयुर्वेद ग्रंथों में वर्णित है कि यज्ञ चिकित्सा से इसे दूर किया जा सकता है। प्रख्यात आयुर्वेदिक ग्रंथ-चरक संहिता के चिकित्सा स्थान के 'राजयक्ष्माचिकित्सा' नामक आठवें अध्याय के १८३वें श्लोक में कहा गया है-

प्रयुक्तया यया चेष्ट्या राजयक्ष्मा पुरा जितः।
तं वेद विहितामिष्टिमारोग्यार्थी प्रयोजयेत् ॥

अर्थात् जिस यज्ञ के प्रयोग से प्राचीनकाल में राजयक्ष्मा रोग नष्ट किया जाता था, आरोग्यता चाहने वाले मनुष्य को उसी वेदविहित यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए। तात्पर्य यह कि क्षय रोग के लिए यज्ञ चिकित्सा एक ऐसा महत्त्वपूर्ण एवं सर्वांगपूर्ण उपाय-उपचार है कि इसके पश्चात् किसी अन्य उपाय की आवश्यकता नहीं रहती।

आधुनिक चिकित्साशास्त्र के अनुसार क्षयरोग कई तरह का होता है। उदाहरणस्वरूप फेफड़ों का क्षय, ग्रंथियों का क्षय, हड्डियों का क्षय (बोन टी. बी.), मस्तिष्क के आवरण का क्षय, उदर या आँतों का क्षय, त्वचा का क्षय, रीढ़ की हड्डी का क्षय, उत्पादक एवं मूत्रवाहक अंग संबंधी क्षय आदि कई प्रकार के क्षय रोगियों का निर्धारण रोगवाहक जीवाणुओं-विषाणुओं की गहन जाँच-पड़ताल के बाद किया जाता है और उसी के अनुरूप चिकित्सा की जाती है। प्रायः देखा जाता है कि रोगी व्यक्ति की असावधानी, बदपरहेजी एवं दवा की पूर्ण निर्धारित खुराक न लेने से फिर से दुबारा वही रोग उभर आता है और जानलेवा साबित होता है। यज्ञ चिकित्सा में उक्त सभी प्रकार के क्षय रोगों को समूल नष्ट करने की क्षमता विद्यमान है। इस

संबंध में वेद भगवान् आशापूर्ण शब्दों में आदेश देते हैं कि 'हे रोगिन! हवियों के द्वारा क्षय रोग से मैं तुमको छुड़ाता हूँ।' अथर्ववेद कांड-३,दीर्घायुप्राप्ति सूक्त-११, मंत्र प्रथम कहता है-

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इंद्राग्नी प्रमुमुक्तमेनम् ॥

अर्थात् हे व्याधिग्रस्त! तुमको सुख के साथ चिरकाल तक जीने के लिए गुप्त यक्ष्मारोग और संपूर्ण प्रकट राजयक्ष्मा रोग से हवन के द्वारा छुड़ाता हूँ। हे इंद्रदेव और अग्निदेव! इस व्यक्ति को इस समय जिस पीड़ा या पुराने रोग ने जकड़ रखा है, उससे इसको अवश्य छुड़ाएँ।

इसी तरह अथर्ववेद के कांड-२, सूक्त ३३ के 'यक्ष्माविबर्हण सूक्त' के सात मंत्रों में कहा गया है कि हे रोगिन्! आपके प्रत्येक अंग, प्रत्येक लोम और शरीर के प्रत्येक संधि भाग में जहाँ कहीं भी यक्ष्मा रोग का निवास है, यहाँ से हम उसे दूर करते हैं। इससे आगे कांड-६, सूक्त-८५ एवं १२७ के यक्ष्मानाशक सूक्त में, गंडमाला चिकित्सा सूक्त-८६ में यज्ञ द्वारा क्षयरोग दूर करने का उल्लेख है।

क्षयरोग किन कारणों से उत्पन्न होता है? इसका स्पष्ट उल्लेख अथर्ववेद में कांड ७, सूक्त ७६ में किया गया है। जिसका भावर्थ है-जो क्षयरोग पसलियों को तोड़ डालता है, फेफड़ों में जाकर बैठ जाता है, पृष्टभाग के ऊपरी हिस्से में स्थित हो जाता है, अति स्त्री प्रसंग से उत्पन्न होने वाले उस क्षयरोग को हे यज्ञीय हवि! तू शरीर से बाहर निकाल दे। इस क्षयरोग को उत्पन्न करने वाले विषाणु पक्षी की भाँति हवा में उड़ते हुए एक से दूसरे व्यक्ति में प्रविष्ट हो उसे संक्रमित कर देते हैं। चाहे रोग ने जड़ जमा ली हो, चाहे जड़ न जमाई हो, हवन चिकित्सा दोनों की ही उत्तम चिकित्सा है। असंयमित जीवन जीने से उत्पन्न हे क्षय रोग! हम तेरी उत्पत्ति को जानते हैं, किंतु जिस घर में नाना प्रकार की औषधियों से या

रोगनाशक हवि, चरु या अन्न आदि द्वारा हवन होता है, उस घर में तू कैसे पहुँच सकता है?"

प्राकृतिक नियमों का पालन करते हुए जो व्यक्ति नित्यप्रति नियमपूर्वक वनौषधि युक्त हवन सामग्री से गायत्री महामंत्र या सूर्य गायत्री मंत्र के साथ हवन करता है, वह कदापि रोगी नहीं हो सकता। यह वेदवर्णित मत है, जिसकी पुष्टि अब वैज्ञानिक अनुसंधानों से भी हो चुकी है कि क्षय रोग तो ऐसे व्यक्ति के निकट फटकता तक नहीं।

कुछ यक्ष्मानिवारक अन्यान्य वैदिक एवं पौराणिक प्रमाण इस प्रकार हैं। अथर्ववेद काण्ड-१९ सूक्त-३८ मंत्र १-२ का इस संबंध में स्पष्ट आदेश है-

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते ।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गंधो अश्नुते ।।
विष्वञ्चसतस्माद् यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते ।
यद् गुल्गुलु सैंधवं यद्वाप्यासि समुद्रियम् ।।

अर्थात् जिसके शरीर को औषधि रूप रोगनाशक गुग्गुल का उत्तम गंध व्यापता है, उसको राजयक्ष्मा का रोग एवं दूसरों के द्वारा दिए गए अभिशाप स्पर्श तक नहीं करते। इस गुग्गुल की सुगंधि से यक्ष्मा आदि रोग उसी प्रकार सभी दिशाओं में पलायन कर जाते हैं, जिस प्रकार शीघ्रगामी अश्व और हिरन दौड़ जाते हैं।

यज्ञोपचार द्वारा यक्ष्मा रोग को दूर करने का वर्णन पुराणों में भी मिलता है। लिंग पुराण अ.४९, श्लोक ८ से १३ तक विभिन्न प्रकार के रोगों के शमनार्थ यज्ञोपचार का वर्णन है।

षणमास तु घृतं हुत्वा सर्वव्याधिविनाशनम् ।
राजयक्ष्मा तिलैर्होमान्नश्यते वत्सरेणु तु ।
यवहोमेन चायुष्यं घृतेन च जयस्तदा ।।

अर्थात् छह महीने तक घी का हवन करने से सब प्रकार की व्याधियों का नाश होता है। एक वर्ष तक तिल का हवन करने से राजयक्ष्मा अर्थात् टी. बी. का नाश होता है। जौ का हवन करने से आयु वृद्धि एवं घी के हवन से जय प्राप्त होती है।

इसी तरह देवीभागवत् ११/२४-२६ में स्पष्ट उल्लेख है-

वचभिः पयसाक्ताभिः क्षयं हुत्वा विनाशयेत् ।
मधुत्रितयहोमेन राजयक्ष्मा विनश्यति ॥
लताः पर्वसु विच्छिद्य सोमस्य जुहुयाद्द्विजः ।
सोमे सूर्येण संयुक्ते प्रयोक्ताः क्षयशांतये ॥

अर्थात् दूध में बच को अभिषिक्त करके हवन करने से क्षयरोग दूर होता है। दूध, दही और घी इन तीनों को होमने से भी राजयक्ष्मा नष्ट होता है। अमावस्या के दिन सोमलता की डाली को गाँठों पर से अलग करके हवन करने पर क्षयरोग दूर हो जाता है।

इन मंत्रों से स्पष्ट है कि क्षयरोग चाहे प्रारंभिक अवस्था में हो अथवा बहुत बढ़ गया हो, चतुर्थ अवस्था में पहुँच गया हो, यहाँ तक कि उसके कारण रोगी बिलकुल मरणासन्न हो, तो भी यज्ञोपचार के द्वारा वह ठीक हो सकता है और सौ वर्ष तक जीवित रह सकता है। अथर्ववेद काण्ड ३, दीर्घायु प्राप्ति सूक्त-११ मंत्र-४ की स्पष्टोक्ति है-

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमंताञ्छतमु वसंतान् ।
शतं त इंद्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥

अर्थात् हे हवि चिकत्सा द्वारा क्षयरोग से आरोग्य लाभ किए हुए मनुष्य! तू दिनोंदिन बढ़ता हुआ सौ शरदों तक, सौ हेमंतों तक और सौ वसंतों तक जीवित रह। वायु, अग्नि, सूर्य और बृहस्पति पर्जन्य ने सौ वर्ष की आयु देने वाली हवि की सहायता से पुनः तुझे सौ वर्ष की आयु प्राप्त करा दी है।

यज्ञोपचार प्रक्रिया द्वारा क्षयरोग-निवारण के उपरोक्त वैदिक प्रमाणों को मूर्धन्य वैज्ञानिकों ने अपने गहन अध्ययन-अनुसंधानों एवं प्रयोग-परीक्षणों के आधार पर प्रमाणित सिद्ध कर दिखाया है। पाया गया है कि सुदृढ़ भावना के साथ विशिष्ट हवन सामग्री के साथ किया गया हवन आरंभिक अवस्था से लेकर असाध्य स्थिति तक पहुँचे यक्ष्मा (टी. बी.) रोग को समूल नष्ट करने में समर्थ है।

टी.बी.-क्षय रोग की विशेष हवन सामग्री

इसके लिए जिन औषधियों को बराबर मात्रा में लिया जाता है, वे इस प्रकार हैं-

1. रुदंती	2. रुद्रवंती	3. शरपुंखा
4. जावित्री	5. बिल्व की छाल	6. छोटी कंटकारी
7. बड़ी कंटकारी	8. तेजपत्र	9. पाढ़ल
10. वासा	11. गंभारी	12. श्योनाक
13. पृश्निपर्णी	14. शालिपर्णी	15. शतावर
16. अश्वगंधा	17. जायफल	18. नागकेशर
19. शंखाहुली (शंखपुष्पी)	20. नीलकमल	21. लौंग
22. जीवंती	23. कमलगट्टा की गिरी	24. मुनक्का
25. मकोय	26. केशर-यथाशक्ति।	

इन सभी २६ चीजों का जौकुट पाउडर बनाकर हवन करने के लिए एक अलग डिब्बे में रख लेना चाहिए, साथ ही इन्हीं को मिलाकर बनाए गए सूक्ष्म एवं कपड़छन पाउडर को सुबह-शाम खाने के लिए एक अन्य डिब्बे में अलग कर लेना चाहिए। खाने वाले बारीक पाउडर को हवन करने के पश्चात् सुबह एवं शाम को एक-एक चम्मच घी एवं शक्कर के साथ नियमित रूप से लेते रहने से शीघ्र लाभ मिलता है। क्षय रोगी को ठंडी एवं खट्टी चीजों का परहेज अवश्य करना या कराना चाहिए।

हवन करते समय इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि पूर्वोक्त कॉमन हवन सामग्री-नम्बर (१) को, जिसमें अगर, तगर, देवदार, चंदन, लाल चंदन, गुग्गुल, लौंग, जायफल, गिलोय, चिरायता, अश्वगंधा और घी, जौ, तिल, शक्कर, मिले होते हैं, उसे भी क्षय रोग के लिए बनाई गई विशेष हवन सामग्री में बराबर मात्रा में मिलाकर तब हवन करना चाहिए। जहाँ तक हो सके, हवन के लिए क्षीर वृक्षों की समिधा का चयन करना चाहिए, जैसे-पीपल, गूलर, पाकर, पलाश, शमी, देवदार, सेमल आदि। इनके न मिलने पर आम की छालयुक्त सूखी समिधा प्रयुक्त की जा सकती है। इस प्रकार की समिधाओं एवं हवन सामग्री के निरंतर प्रयोग से क्षय रोग को समूल नष्ट किया और दीर्घायुष्य प्राप्त किया जा सकता है।

४. प्राणघातक रोग कैंसर की यज्ञ चिकित्सा

संसार में अनेकों प्रकार की ऐसी बीमारियाँ हैं, जिनसे आक्रांत होने पर मनुष्य को अपने प्राण तक गँवाने पड़ते हैं। इनमें हृदय रोग, उच्चरक्तचाप, डायबिटीज, ट्यूबरकुलोसिस, लीवर सिरोसिस, हेपेटाइटिस, एन्सेफेलाइटिस जैसी प्राणघातक बीमारियाँ सम्मिलित हैं। किंतु इनमें से कैंसर एक अकेली ऐसी महाव्याधि है, जो सबसे अधिक खतरनाक मानी जाती है। इसे लोग यमदूत की तरह देखते और कैंसरग्रस्त होने पर शारीरिक व मानसिक रूप से सबसे अधिक परेशान होते हैं। जब तक रोग का पता चलता है, तब तक वह अपनी जड़ें मजबूती से गहराई तक जमा चुका होता है। चिकित्साविज्ञानी इस रोग का सफल उपचार एवं कारगर प्रविधि अभी तक नहीं खोज पाए हैं। समय रहते यदि इसका उपचार न किया जाए, तो यह रोग तीव्र गति से बढ़ता और कभी-कभी वर्षों तक अपने आप फूटता तक नहीं है, लेकिन जब फूटता है, तो घातक सिद्ध होता है।

कैंसर को आयुर्वेदशास्त्रों में अर्बुदग्रंथि, अधिमांस, कर्कटार्बुद तथा यूनानी हिकमत में रसौली एवं आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में ट्यूमर या नियोप्लाज्म कहते हैं। इसे 'कार्सिनोमा' भी कहा जाता है। यह शरीर की

कोशिकाओं की एक ऐसी अतिवृद्धि है, जो अपनी संरचना, पोषण के प्रक्रम एवं चयापचय में सामान्य कोशिकाओं से भिन्न होती है। इसमें बागी कोशिकाएँ अनियमित रूप से गुणन क्रिया द्वारा उत्तरोत्तर अभिवृद्धि करती जाती हैं। यह शरीर के किसी भी धातु अर्थात् रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि आदि में उसकी अत्यंत वृद्धि, विकृति या दूषण से उत्पन्न हो सकती है। इसे एक प्रकार की स्थानिक कोशिकीय अतिवृद्धि कह सकते हैं, जिसका शरीर में कोई विशेष कार्य नहीं होता और न इसका कोई अंत ही होता है।

आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'सुश्रुत संहिता' के 'निदान स्थान' के ग्यारहवें अध्याय में अर्बुद-ट्यूमर के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है-

गात्रप्रदेशो क्वचिदेव दोषाः संमूर्च्छिता मांसमभिप्रदूष्य ।
वृत्तं स्थिरं मंदरुजं महांतमनल्पमूलं चिरवृद्धयपाकम् ॥
कुर्वंति मांसोपचयं च शोफं तदर्बुदं शास्त्रविदो वदंति ।
वातेन पित्तेन कफेन चापि रक्तेन मांसेन च मेदसा वा ॥
तज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रंथेः समानानि सदा भवंति ॥

अर्थात शरीर के किसी भी भाग में बढ़े हुए वातादि दोष मांस को दूषित करके गोलाकार, स्थिर, स्वल्प पीड़ायुक्त, बड़ा, गहराई तक धातुओं में फैला हुआ, धीरे-धीरे बढ़ने वाला, कभी भी नहीं पकने वाला या देर से पकने वाला और मांस की अभिवृद्धि से युक्त ऐसी शोथ को पैदा करते हैं। आयुर्वेद विशारद इसे ही 'अर्बुद' कहते हैं। ग्रंथि के समान लक्षण वाला यह रोग वात से, पित्त से, कफ से, मांस से और मेद से उत्पन्न होता है। यह शरीर के किसी भी अंग-अवयव में प्रहार या चोट आदि लगने के कारण वातादि दोष के प्रकुपित होकर मांस और रक्त के दूषित होने पर उत्पन्न होता है।

कैंसरोत्पत्ति के प्रमुख कारण

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार शरीर के किसी भी भाग में कोशिकाओं की अनियंत्रित वृद्धि को कैंसर या ट्यूमर कहते हैं अर्थात् जब किन्हीं कारणों के फलस्वरूप शरीर की कोशिकाओं का विभाजन अनियंत्रित

एवं तीव्र गति से होता है, तो कैंसर रोग उत्पन्न होता है। जो तत्त्व इस प्राणघातक रोग की उत्पत्ति के निमित्त कारण बनते हैं, उन्हें 'कार्सिनोजेनिक तत्त्व' कहते हैं । इसके अतिरिक्त कुछ फंगस जो विशेष कर गेहूँ, मूँगफली, मक्का, चावल को प्रदूषित करते हैं, म्यूटाजेनिक पदार्थ, एफ्लाटॉक्सिन समूह के विषैले पदार्थ, जो यकृत-कैंसर उत्पन्न करते हैं, आदि विभिन्न प्रकार के ट्यूमर उत्पन्न करते हैं। मशरूम या कुकुरमुत्ते की कुछ प्रजातियों में भी कैंसरकारक तत्त्व पाए जाते हैं। रासायनिक खादों, कीटनाशकों का अंधाधुंध प्रयोग भी खाद्य पदार्थों को प्रदूषित कर देता है और आहार रूप में पेट में जाने पर अर्बुद उत्पादक का कार्य करता है। बीड़ी-सिगरेट, पान, तंबाकू, सुपारी, गुटखा, आदि का सेवन तथा मद्यपान-ये सभी कैंसर उत्पादन के प्रमुख स्रोत हैं। इनसे मुख, गाल, ग्रासनलिका, गले का कैंसर होता है। कॉफी आदि के अति सेवन से अग्नाशय का कैंसर होता है। चॉकलेट, टॉफी, डिब्बाबंद खाद्य पदार्थ, कोल्ड ड्रिंक्स, जंक फूड आदि पदार्थ भी शरीर के विभिन्न अंग-अवयवों में ट्यूमर को जन्म देते हैं। एंटीबायोटिक दवाओं का अत्यधिक सेवन भी कैंसर सहित अनेक व्याधियाँ उत्पन्न करता है। हॉर्मोन थेरेपी के दुष्परिणाम भी महिलाओं में स्तन कैंसर जैसी व्याधियों को जन्म देते हैं। विषैली धूल, धुआँ, दूषित पर्यावरण भी फेफड़े जैसे अंगों में कैंसर उत्पन्न करते हैं। हाई ग्रिड पावर या उच्च वोल्टेज वाले वैद्युतीय तारों के नीचे रहने वालों के हॉर्मोन्स गड़बड़ा जाते हैं। इससे शरीर की अंदरूनी कोशिकाएँ असामान्य हो जाती हैं और उनके कैंसरग्रस्त होने की संभावना रहती है।

आयुर्वेद विद्याविशारदों ने ट्यूमर अर्थात अर्बुद की उत्पत्ति के अनेक कारण गिनाए हैं, यथा-आघात या चोट, मांस-अस्थि आदि भक्षण, स्नेहन, वमन, विरेचन आदि के मिथ्या योग, जीर्ण वमन, पुराने दस्त, बवासीर, भगंदर आदि, मूत्रकृच्छ, गर्भपात, मिथ्या आहार, तीक्ष्ण भक्षण, धूम्रपान, मद्यपान आदि कारणों से प्रकुपित दोष मांस और रक्त में आश्रित होकर उन्हें विषाक्त बना देते हैं और ट्यूमर (अर्बुद) की उत्पत्ति का कारण बनते हैं।

कच्चे फोड़ों पर बार-बार चीरा लगाने, परिपक्व विद्रधि पर चीरा न लगाकर उसे औषधियों द्वारा सुखाने से, सतत चिंतित रहने से, मल-मूत्रादि वेगों को रोकने से, अधिक चरबीयुक्त आहार लेते रहने से, अति स्त्रीप्रसंग, मिलावटी खाद्य पदार्थों का सेवन, दिन-रात अधिक सोना, अति आलस्य, निरंतर धातुस्राव से भी कैंसर व्याधि उत्पन्न होती है। कभी-कभी भ्रूणावस्था की धातुओं के कुछ भाग उसी स्थिति में शरीर के अंदर रह जाते हैं और उनका विकास नहीं होता। जब किसी कारण से ये उत्तेजित हो जाते हैं, तब तीव्रता से वृद्धि करते हैं और ट्यूमर (अर्बुद) का रूप धारण कर लेते हैं।

कैंसर के प्रकार

आधुनिक चिकित्साविज्ञानियों के अनुसार ट्यूमर दो तरह के होते हैं-(१) सामान्य और (२) घातक। सामान्य ट्यूमर से व्यक्ति को कोई हानि नहीं होती और इसे शल्यक्रिया द्वारा आसानी से शरीर से बाहर किया जा सकता है। जबकि घातक ट्यूमर अत्यंत शीघ्रता से बढ़ते हैं और अपने उद्भव स्थान के अतिरिक्त भी शरीर के अन्यान्य अंग-अवयवों में फैल सकते हैं और कष्टसाध्य या असाध्य बन जाते हैं। समय रहते समुचित चिकित्सा-उपचार न होने से यही ट्यूमर कैंसर का रूप धारण कर लेते हैं और तब उन्हें शरीर से निकाल बाहर करना कठिन हो जाता है।

शरीर के अलग-अलग धातु घटकों-संयोजी ऊतकों से उत्पन्न ट्यूमर कई रूपों में देखे जाते हैं। शरीर के इपीथीलियम या उपकला से उत्पन्न घातक ट्यूमर को 'कार्सिनोमा' एवं कनेक्टिव टिशूज या संयोजी ऊतक के घातक ट्यूमर को 'सारकोमा' कहते हैं। सामान्य अर्बुदों में जिनकी गणना होती है, वे हैं-

1. Fibroma या तंतु अर्बुद
2. Lipoma या वसार्बुद
3. Xanthoma या पीतार्बुद
4. Chondroma या उपास्थि अर्बुद
5. Osteoma या अस्थि अर्बुद
6. Myeloma या मज्जार्बुद

7. Myoma या मांसार्बुद
8. Myxoma या श्लेष्मार्बुद
9. Glioma या स्नायु का अर्बुद
10. Neuroma या नाड्यार्बुद
11. Odontoma या दंतार्बुद
12. Papilloma या त्वगांकुरार्बुद आदि।

कनेक्टिव टिशूज अर्थात संयोजी ऊतक से उत्पन्न घातक अर्बुद (Malignant Connective tissue Tumours) को 'सारकोमा' कहते हैं। ये अस्थि, मज्जा, त्वचा आदि में बनते हैं और तदनुरूप Fibrosarcoma, Osteosarcoma, Myosarcoma आदि नामों से जाने जाते हैं। कुछ ट्यूमर अपने रंग-रूप के कारण भी जाने जाते हैं, जैसे-Adenoma या ग्रंथि अर्बुद। कार्सिनोमा ट्यूमर का सबसे घातक रूप है। इसे ही 'असाध्य कैंसर' कहते हैं। यह बाह्य तथा श्लैष्मिक त्वचा में अधिकतर उत्पन्न होता है। इसके प्रमुख उत्पत्ति स्थान हैं-ओंठ, जिह्वा, मुख, छोटी आँत, बड़ी आँत, आमाशय, मलाशय, स्त्रियों के गर्भाशय और स्तन, पुरुषों की मूत्रेंद्रिय एवं प्रोस्टेट ग्रंथि आदि। अधिकतर यह रोग पैंतालीस वर्ष के बाद उभरता है। अपवादस्वरूप कम उम्र में भी यह विकसित हो सकता है। रोग पुराना हो जाने पर कार्सिनोमा में घाव बन जाते हैं, जिनसे रक्त या स्राव निकलने लगता है।

कैंसर का सामान्य अर्थ केकड़ा (क्रेब) होता है, जो प्राणि-जगत के 'आर्थ्रोपोडा' समुदाय का एक प्राणी है। कार्सिनोमा एक ग्रीक शब्द है, जो दो शब्दों से मिलकर बना है-'कार्सिनास' अर्थात केकड़ा या कर्कट एवं 'ओमा' अर्थात अर्बुद। इस तरह इसका अर्थ कर्कटार्बुद होता है, जिसका तात्पर्य है-केकड़े के समान गुण वाली उभरी हुई बड़ी गाँठ। जिस प्रकार केकड़े की पीठ पर फैली हुई शिराओं की जाल संरचना होती है और जिस तरह केकड़ा अपने पंजे को चारों तरफ फैलाता हुआ दीखता है, उसी प्रकार के गुणों वाला कैंसर या कर्कटार्बुद होता है। इसकी जड़ें भी अंदर तक गहराई में घुसी हुई होती हैं। चरक संहिताकार ने इसे त्रिदोषज गुल्म, महाग्रंथि कहा है, तो सुश्रुत संहिताकार ने सांघातिक अर्बुद, त्रिदोषज अर्बुद आदि नामों से संबोधित किया है। आधुनिक चिकित्साविज्ञानियों ने स्थान विशेष में उत्पन्न होने की दृष्टि से

चालीस प्रकार के कार्सिनोमा का वर्णन किया है। शरीर के विभिन्न अंग-अवयवों में विकसित होने के अनुरूप ही कैंसर का नामकरण किया जाता है।

ब्लड कैंसर अर्थात रक्त कैंसर एक अलग तरह का ही कैंसर है, जो मिथ्या आहार-विहार के कारण वातादि दोष से दूषित रक्त की विषाक्तता के कारण उत्पन्न होता है। इसे सर्वाधिक घातक माना जाता है। ल्यूकेमिया या ब्लड कैंसर रक्त की वह घातक स्थिति है, जिसमें अस्थि-मज्जा एवं प्लीहा आदि रक्तोत्पादक अंग-अवयव अपरिपक्व श्वेतरक्त कणों का अत्यधिक मात्रा में उत्पादन करते हैं।

आयुर्वेद विशेषज्ञों के अनुसार शरीर के मर्मस्थानों पर ही कैंसर रोग उत्पन्न होता है। हमारे शरीर में मर्मस्थानों की संख्या एक सौ सात है, जहाँ प्राणप्रवाह सर्वाधिक होता है। इन स्थानों पर प्रहार करने या चोट आदि लगने से प्राणांत होने का भय रहता है। इस संबंध में सुश्रुत संहिता के 'शरीरस्थान' के छठवें अध्याय-'मर्मनिर्देश' की व्याख्या में कहा गया है कि मर्मों में बहुधा सोम-जल, मारुत-वायु, तेज-अग्नि तथा सत, रज, तम और भूतात्मा-जीव रहते हैं। इसलिए इन स्थानों पर आघात होने से प्राणी जीवित नहीं रहते हैं। इन्हीं मर्मस्थानों पर स्रोतावरोध होने या दोषों के प्रकुपित होने के कारण गाँठ या कैंसर की उत्पत्ति होती है।

कैंसर की प्रचलित चिकित्सा

सभी तरह के ट्यूमर या कैंसर अर्थात अर्बुद, शरीर के किसी भी भाग में हों, चिकित्सा-उपचार न होने से व्यक्ति के लिए अंततः घातक सिद्ध होते हैं। यदि समय पर उपचार न किया जाए तो वे असाध्य बन जाते हैं, साथ ही साथ समूचे शरीर में उनके फैलने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। आरंभ में ही यदि ट्यूमर को शल्यक्रिया द्वारा निकाल दिया जाए, तो इस रोग से मुक्ति मिल सकती है। सर्जरी अर्थात शल्यक्रिया अर्बुद चिकित्सा की प्रामाणिक विधि मानी जाती है। इसमें ट्यूमर को प्रभावित हिस्से से इस तरह

काटकर अलग किया जाता है, जिससे उसका एक भी अंश शरीर में छूटने नहीं पाता। अगर शरीर में एक भी संक्रमित कोशिका छूट जाती है, तो फिर से नए ट्यूमर विकसित होने की पूरी संभावना रहती है। फिर भी इसके पुनः न होने की सुनिश्चितता नहीं कही जा सकती। इसीलिए कैंसर चिकित्सा में शल्यक्रिया के अतिरिक्त कीमोथेरेपी, रेडियोथेरेपी एवं हॉर्मोनथेरेपी आदि का प्रयोग भी किया जाता है। कीमोथेरेपी में एंटीएंजियोजेनेसिस नामक औषधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं, जो कैंसर (ट्यूमर) को रक्त पहुँचाने, ऑक्सीजन की आपूर्ति करने की प्रक्रिया को रोक देती है। इससे कैंसर कोशिकाएँ स्वतः नष्ट होने लगती हैं और ट्यूमर समाप्त हो जाता है। रेडियेशन थेरेपी में इन्टेन्सिटी मॉड्युलेटेड रेडियो थेरेपी, रेडियो फ्रीक्वेंसी एबलेशन, स्टीरियोटैक्टिक रेडियो थेरेपी आदि अत्याधुनिक तकनीकें हैं, जो कैंसरोपचार में प्रयुक्त की जाती हैं। प्रोस्टेट कैंसर, ब्रेन ट्यूमर, हार्ट ट्यूमर, स्तन कैंसर, गरदन ट्यूमर आदि में यही थेरेपी प्रयुक्त होती है। यह उपचार प्रक्रिया खरचीली भी है, साथ ही इसमें एक खतरा यह भी बना रहता है कि इससे स्वस्थ कोशिकाएँ प्रभावित होती हैं और उनके क्षतिग्रस्त होने की संभावना बनी रहती है। हॉर्मोन थेरेपी मुख्यतः महिलाओं के स्तन कैंसर में प्रयुक्त की जाती है। यह रोग ऐस्ट्रोजन व प्रोजेस्ट्रोन हॉर्मोन के असंतुलन से पैदा होता है, जिसे 'एल्ट्राज' या 'एना स्ट्रोजोल' जैसी उपचार प्रक्रिया से सुधारा जाता है।

कैंसर की यज्ञ चिकित्सा

आयुर्वेद में ऐसी अनेकों जड़ी-बूटियाँ, रस-भस्में हैं, जिनका समुचित पथ्य-परहेज के साथ, सुनिश्चित अनुपान के साथ सेवन करने से कैंसर जैसी महाघातक व्याधि समूल नष्ट हो जाती है। इनमें एक ओर जहाँ हीरकभस्म, स्वर्ण भस्म, मुक्तापिष्टी, यशदभस्म, ताम्रभस्म, नागभस्म, वंगभस्म, अभ्रकभस्म, शृंगभस्म, पुनर्नवामंडूर आदि सम्मिलित हैं। कांचनार गूगल तो सभी प्रकार के कैंसर में एक महाऔषधि की तरह कार्य करती है। हीरकभस्म को रक्त कैंसर के उपचार में सर्वाधिक उपयोगी माना गया है। वहीं दूसरी ओर धमासा,

खदिर, नयनतारा (सदाबहार), निर्विषी, लहसुन, चित्रक, आक, श्यामातुलसी, दूर्वा, नीम, करेला, अमरलता, शुद्ध भल्लातक, शुद्ध वत्सनाभ, स्वर्णक्षीरी, देवदार, पलाश, कूठ, गोरखमुंडी, लोध्र, तालीसपत्र, पतरंगा, बनफ्शा, अशोक, चक्रमर्द, कांचनार, दारुहरिद्रा आदि वनौषधियाँ विविध प्रकार के ट्यूमर्स-कैंसर के शमन में प्रयुक्त होती हैं। चीन जैसे देश में सर्वाधिक देशी जड़ी-बूटियों से कैंसर का इलाज किया जाता है।

अपने देश में प्राचीनकाल से ही कैंसर अर्थात कर्कटार्बुद का उपचार आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति से किया जाता रहा है। आज भी देश-विदेश में इस संदर्भ में गहन अनुसंधान किए जा रहे हैं। इस संदर्भ में गहन अध्ययन व अनुसंधान के पश्चात् यज्ञोपचार के माध्यम से कैंसर निदान हेतु जो हवन सामग्री प्रयुक्त की गई है, उसमें पाए जाने वाले औषधीय तत्त्व ट्यूमर या कैंसर की अभिवृद्धि को उत्प्रेरित करने वाले तत्त्वों, एंजाइम व हारमोन आदि के असंतुलन को रोकते तथा उन्हें दूर करते हैं। होमी गई औषधीय सामग्री से उद्‌भूत यज्ञीय ऊर्जा रोगी के श्वसन तंत्र एवं रोमकूपों आदि के माध्यम से शरीर के भीतर पहुँच कर एक ओर जहाँ कैंसर कोशिकाओं को नष्ट करती है, वहीं दूसरी ओर जैविक तत्त्वों को सुनियोजित करके शरीर की रोग-प्रतिरोधी क्षमता को बढ़ाती है।

कैंसर के यज्ञोपचार में प्रयुक्त होने वाली हवन सामग्री में जो वनौषधियाँ मिलाई जाती हैं, उनमें से अधिकांश अपने आस-पास के खेतों, बाग-बगीचों, वन या जंगलों में अथवा फार्मेसी या वनौषधि विक्रेताओं के यहाँ आसानी से उपलब्ध हो जाती हैं। पैनेकस जिन्सेंग, मिंक्गो वाइलोवा, अलमस रूबरा आदि जैसी वनौषधियाँ ही ऐसी हैं, जो प्राय: विदशों में मिलती और आयात की जाती हैं

कैंसर (कर्कटार्बुद) की विशिष्ट हवन सामग्री

इसमें निम्नलिखित वनौषधियाँ बराबर मात्रा में मिलाई जाती हैं-

1. सदाबहार-बारहमासी या नयनतारा
2. कूठ
3. हलदी
4. दारुहलदी
5. मुलहठी
6. शरपुंखा
7. भारंगी
8. तालीस पत्र या थुनेर की छाल (आधी मात्रा में)
9. सीताफल या शरीफा के पत्ते या फल
10. प्रियंगु
11. छोटी कंटकारी
12. अमलतास के पत्ते
13. कांचनार की छाल
14. गुग्गुल
15. खदिर या खैर
16. तेजफल या तुंबरू (नेपाली धनिया)
17. लहसुन
18. चीड़
19. सलई-गोंद
20. देवदार
21. दालचीनी
22. गोरखमुंडी
23. अशोक
24. धमासा
25. चक्रमर्द या चकौड़
26. छोटा गोक्षरू
27. चित्रक
28. अदरक
29. अपराजिता
30. श्वेत निशोथ
31. लाल चंदन
32. एलुआ या ग्वारपाठा
33. रेवंदचीनी या आरचू
34. पद्माख
35. लोध्र
36. नीम-छाल एवं पत्ते
37. बरुण
38. हरीतकी या हरड़
39. मकोय या काकमाची
40. पाठा
41. स्वर्णक्षीरी
42. सहिजना छाल, बीज
43. श्यामातुलसी
44. बनफ्शा
45. पीलो ओगियो
46. पापरी या निर्विषी
47. बनगोभी
48. भल्लातक या भिलावा शोधित आधी मात्रा में.
49. पतरंगा
50. चूका
51. हरचूर या बांदा
52. अरण्यसूरण या बनकांदा
53. ताजे पादशाह-पुर्तुक या नाखूना.
54. जोगी पादशाह
55. पतंग
56. शाल
57. सप्तपर्ण या सतौना
58. बरगद की छाल
59. पीपल की छाल
60. पाकर की छाल
61. अमृता या गिलोय
62. जलपिप्पली
63. पुष्करमूल
64. अश्वगंधा
65. पुनर्नवा
66. रुद्रवंती
67. शिवनिम्ब या नील
68. साइट्रस लिमोना जमीरी नीबू.
69. पैपावर एस.
70. जैन्थियम(बनोकरा)

कैंसरोपचार की हवन सामग्री बनाने के लिए उपर्युक्त सभी वनौषधियों को समभाग में मिलाकर कूट-पीसकर जौकुट पाउडर तैयार कर लेते हैं। एक बड़े डिब्बे पर 'कैंसर की विशिष्ट हवन सामग्री नंबर-२' का लेबल चिपकाकर उसमें भरकर इस हवन सामग्री को सुरक्षित रख लेते हैं। हवन करते समय पहले से तैयार की गई 'कॉमन हवन सामग्री-नंबर (१)' की बराबर मात्रा मिलाकर तब यज्ञोपचार आरंभ करते हैं। अर्थात हवन करते समय आधी सामग्री क्रमांक-१ की व आधी सामग्री क्रमांक-२ की (१००-१०० ग्राम) मिलाकर तब हवन करना चाहिए। कॉमन हवन सामग्री-नम्बर (१) का वर्णन पहले किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त इसमें गोघृत, जौ, तिल, खाँडसारी गुड़ और चावल भी मिलाया जाता है। इन सभी चीजों को मिलाकर पहले से तैयार रखते हैं और उस पात्र पर 'कॉमन हवन सामग्री-नंबर (१)' का लेबल लगा देते हैं। हवन सूर्य गायत्री मंत्र से करते हैं।

पाउडर या क्वाथ का प्रयोग

हवन करने के साथ ही साथ उपर्युक्त कैंसर रोग की विशिष्ट हवन सामग्री-नंबर (२) में वर्णित सभी ७० औषधियों के सम्मिलित जौकुट पाउडर को अच्छी तरह कूट-पीसकर कपड़छन कर लेते हैं और एक पात्र में अलग सुरक्षित रख लेते हैं। इस चूर्ण में से सुबह-शाम एक-एक चम्मच या चार-पाँच ग्राम चूर्ण को जल के साथ रोगी व्यक्ति को प्रतिदिन खिलाते रहते हैं। जो लोग चूर्ण नहीं खा सकते, उनके लिए उपरोक्त ७० औषधियों से बने जौकुट पाउडर का क्वाथ बनाकर देना चाहिए। क्वाथ बनाने के लिए जौकुट पाउडर में से ४-५ चम्मच पाउडर रात्रि में स्टील के एक भगौने में आधे लीटर पानी में भिगो देना चाहिए। सुबह इसे बर्नर या चूल्हे पर चढ़ाकर मंद आँच में क्वाथ बनाकर रोगी को आधी मात्रा ९-१० बजे सुबह एवं आधी मात्रा ४-५ बजे शाम को पिला देना चाहिए। शल्य क्रिया एवं कीमोथेरेपी के बावजूद भी इस उपचार प्रक्रिया को अपनाने से भविष्य में रोग के दुबारा उभरने का भय नहीं रहता।

५- स्वाइन फ्लू की यज्ञ चिकित्सा

कभी सार्स, कभी एंथ्रेक्स, तो कभी बर्डफ्लू जैसी महामारियाँ जब भी फैलती हैं, तो ग्लोबलाइजेशन के इस जमाने में वह एक क्षेत्रीय न रहकर विश्वव्यापी बन जाती हैं। इन दिनों मानव फ्लू और बर्ड्सफ्लू के हाइब्रिड वाइरस-स्वाइन फ्लू नामक इन्फ्लुएंजा ने समूचे विश्व में दहशत फैला रखी है। लाखों लोग इसके चपेट में आचुके हैं और कितने ही व्यक्ति कालकवलित हो चुके हैं। द्रुतगति से यह एक व्यक्ति से दूसरे में फैलता है। बर्ड्स फ्लू की तरह ही यह भी आर्थोमिक्सोवाइरस प्रजाति का सदस्य है, जो उसी प्रजाति से आनुवांशकीय परिवर्तन या म्यूटेशन से उत्पन्न हुआ है। इन्डियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च के महानिदेशक डॉ. वी.एम. कटोच के अनुसार H1N1- स्वाइन फ्लू में मुर्गी, सुअर और मनुष्य के जीन मिल गये हैं और ज्यादा खतरनाक हो गये हैं। इसका संक्रमण सुअरों (स्वाइन) द्वारा मनुष्यों मे तेजी से होता है। यह RNA पर आक्रमण करता है। इस वाइरस के जेनेटिक मटेरियल में पाये जाने वाले प्रोटीन के अमीनो एसिड सिक्वेंस में हीमेग्लूटिमिन और नयूरोएमिनिडेश नामक प्रोटीन का क्रम H1N1 होता है, इसलिए इसका नाम H1N1 रखा गया है। चिकित्सा वैज्ञानिकों के अनुसार स्वाइन फ्लू-H1N1 का संक्रमण होने पर उचित चिकित्सा के अभाव में यह जानलेवा भी सावित हो सकता है। आँकड़े प्रस्तुत करते हुए उनने बताया है कि सन् १९१८-१९ में पहली बार इसके संक्रमण से लगभग पाँच करोड़ लोगों को असमय कालकवलित होना पड़ा था। तब इसे 'स्पेनिश फ्लू' नाम दिया गया था। सुअर से ही फैलने वाले H2N2 नामक वाइरस के संक्रमण से सन् १९३७ में करीब बीस लाख तथा H3N2 नामक वाइरस से फैले 'हांगकांग फ्लू' से भी लगभग इतने ही लोगों की मृत्यु हुई थी। यह संक्रमण सन् १९६८-६९ में फैला था।

लक्षण-

चिकित्सा विज्ञानियों के अनुसार स्वाइन फ्लू के आक्रमण से सामान्य फ्लू या इन्फ्लुएंजा की तरह ही गले में खराश, कफ, जुकाम, खाँसी, बुखार, सिर व बदन दर्द, ऐंठन, जोड़ों में दर्द, श्वास लेने में कठिनाई, भूख

न लगना, कमजोरी, मतली, उल्टी, डायरिया जैसे लक्षण प्रकट हाते हैं। H1N1 वाइरस श्वसन तंत्र के म्यूकस मेम्ब्रेन में घाव बना देते हैं। श्वसन तंत्र के साथ ही यह हृदय तंत्र को भी संक्रमित कर देता है और मायोकॉर्डाइटिस जैसी घातक बीमारी को बढ़ावा देता है। इसके अन्य तरह के संक्रमणों के साथ मिलकर जानलेवा साबित होने का खतरा बना रहता है। सामान्यतया इसका प्रभाव एक से दो सप्ताह तक रहता है। स्वाइन फ्लू का फैलाव H1N1 संक्रमित व्यक्ति के छींकने, खाँसने से अधिक होता है। इससे इसके विषाणु आसपास के वातावरण में फैल जाते हैं और संपर्क में आने वाले स्वस्थ व्यक्ति को भी संक्रमित कर देते हैं। दमा के मरीजों, हृदय रोगियों, डायबिटीज वालों, गर्भिणी महिलाओं, बच्चों व वृद्धजनों के लिए यह अधि क घातक होता है। अतः इस संक्रमण से इन्हें अवश्य बचाना चाहिए।

चिकित्सा

स्वाइन फ्लू के संक्रमण से बचाने के लिए प्रचलित एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति में सीमित क्षेत्र में ही प्रगति हुई है। सावधानी बरतने, स्वच्छता रखने, समुचित खान-पान के साथ ही ओसेल्टामीवीर-टैमीफ्लू तथा रिलेंजा-जेनामिवीर जैसी औषधियों का सेवन करते रहने पर यह ठीक हो जाता है। इनका पाँच दिन का कोर्स होता है, जिसे पूरा करना अनिवार्य है, अन्यथा यह वाइरस ड्रग रेजिस्टेंट हो जाता है। यद्यपि उपलब्ध यह दवाइयाँ भी जनसामान्य की पहुँच से बाहर हैं। ऐसी स्थिति में भारतीय संस्कृति के जनक व प्राण कहे जाने वाले यज्ञ की ओर ध्यान आकर्षित होना स्वाभविक है। भारतीय आयुर्वेद में कितनी ही प्राणवान जड़ी-बूटियाँ-वनौषधियाँ हैं, जिनका हवन करने से स्वाइन फ्लू जैसी घातक बीमारियों को दूर भगाया जा सकता है। प्राणरक्षा करने, रोगप्रतिरोधी क्षमता एवं जीवनीशक्ति को बढ़ाने और वातावरण को जीवाणु-विषाणु रहित बनाने में हवनोपचार से बढ़कर दूसरा कोई अन्य उपाय-उपचार नहीं हैं।

स्वाइन फ्लू की विशिष्ठ हवन सामग्री

स्वाइन फ्लू के संक्रमण को दूर करने तथा उससे बचने के लिए जिन वनौषधियों या हविर्द्रव्यों को मिलाकर विशिष्ठ हवन सामग्री बनाई जाती

है, वे इस प्रकार हैं-

1. रार या शाल की गोंद 2. गिलोय 3. बाकुची
4. कड़वी बच या घुड़बच 5. नागरमोथा 6. शरपुंखा
7. सारिवा 8. भारंगी 9. अपामार्ग-चिरचिटा-पंचांग
10. आक-पंचांग 11. वासा- अडूसा 12 अगर
13. तगर 14. देवदार 15. चंदन 16. लालचंदन
17. अश्वगंधा 18. जायफल 19. लौंग 20. गूगल
21. चिरायता 22. कालमेघ 23. हाऊबेर
24. अनसफल-बादियान खताई 25. गोघृत

उपरोक्त सभी-चौबीस हविर्द्रव्यों-वनौषधियों को बराबर मात्रा में लेकर उन्हें कूट-पीसकर उनका दरदरा पाउडर तैयार कर लेते हैं और इन्हें एक डिब्बे में सुरक्षित रखकर उस पर **"स्वाइनफ्लू की विशिष्ट हवन सामग्री"** का लेबल चिपका देते हैं। हवन करते समय इसमें हवन सामग्री की चौथाई मात्रा गोघृत मिला लेते हैं। हवन सामग्री में गाय का घी मिलाना आवश्यक है। हवन में समिधा के लिए पीपल की सूखी लकड़ी प्रयुक्त की जाती है। पंचोपचार करने के बाद गायत्री महामंत्र या सूर्य गायत्री मंत्र बोलते हुए रोगी व्यक्ति स्वयं हवन करता है अथवा हवनकुण्ड के समीप उसे बैठाकर परिजन उसके निमित्त हवन करते हैं। हवनकुण्ड से उठती हुई यज्ञीयऊर्जा से रोगी का अंग-प्रत्यंग व रोम-रोम भर जाता है। कम से कम चौबीस आहुतियाँ अवश्य डाली जाती हैं। हवनोपचार का समय सुबह ६ से ७ बजे एवं शामको ५ से ७ बजे तक सर्वाधिक सक्रिय एवं प्रभावोत्पादक माना गया है।

अन्य आवश्यक उपाय-उपचार

(१) क्वाथ- स्वाइन फ्लू के मरीज को हवनोपचार के साथ-साथ नित्य नियमित रूप से निम्नलिखित बनौषधियों से तैयार क्वाथ (काढ़ा) पिलाते रहने से तत्काल लाभ मिलता है। क्वाथ में प्रयुक्त होने वाली वनौषधि याँ इस प्रकार हैं-

1. अपामार्ग-चिरचिटा 2. अश्वगंधा 3. कड़वी बच 4. कालमेघ 5. काली मिर्च 6. गिलोय 7. चिरायता 8. नागरमोथा 9. पिप्पली

10. बाकुची 11. भारंगी 12. लौंग 13. वासा 14. शरपुंखा 15. सारिवा 16.सोंठ 17. बादियान खताई-अनन्नासफल या बादाम फूल।

उक्त सभी चीजों का जौकुट पाउडर बनाकर रख लेते हैं और उसी में से 25 ग्राम पाउडर लेकर आधा लीटर पानी में क्वाथ बना लेते हैं। इसमें से आधी मात्रा सुबह हवन के पश्चात तथा आधी मात्रा शाम को रोगी को पिला देते हैं। पूर्ण नीरोग होने तक यह क्रम नित्य नियमित रूप से चलाते रहते हैं। जिन्हें क्वाथ न लेना हो, वे उक्त पाउडर को बारीक घोट-पीस कर सूक्ष्म पाउडर तैयार कर लें और उसमें से सुबह-शाम एक-एक चम्मच चूर्ण गोदुग्ध के साथ लेते रहें।

(२) इम्यूनसिस्टम को मजबूत बनाने तथा जीवाणु-विषाणु जन्य रोगों को दूर भगाने में अतीस चूर्ण अतीव लाभकारी सिद्ध होता है। स्वाइन फ्लू के रोगी को रोज सुबह व शाम को एक चौथाई रत्ती अर्थात 25 मिलीग्राम शोधित अतीस का चूर्ण पानी के साथ देते रहने से उसकी जीवनी शक्ति बढ़ती है और स्वाइन फ्लू के सभी घातक असर लक्षणों समेत विनष्ट हो जाते हैं।

आहार-विहार

शीघ्र स्वास्थ्य लाभ के लिए स्वाइन फ्लू के मरीज को हल्के-फुल्के योग-व्यायाम के साथ प्राणाकर्षण प्राणायाम करना चाहिए। आहार हल्का, सुपाच्य और आधा पेट ही करना चाहिए, विशेषकर सांयकालीन में। छुआरा, मुनक्का, केसर, अंजीर, गरम मसाले आदि का सेवन करने से पाचनशक्ति बढ़ती है, पेट साफ रहता है और शरीर में रक्ताणुओं की कमी नहीं होने पाती। इस रोग में सुबह उठकर आधे से एक गिलास कुनकुना जल अवश्य पीना चाहिए। इससे पेट साफ हो जाता है और व्यक्ति अपने को तरोताजा पाता है। कुनकुने जल में एक चुटकी नमक डालकर गरारे करने से गले में जड़ जमाकर बैठे हुए विषाणु बाहर आ जाते हैं और गले की सूजन में लाभ मिलता है। आइसक्रीम, ठंडा पानी, ठंडी एवं खट्टी चीजों से रोगी को अवश्य परहेज करना चाहिए। पर्याप्त नींद लेना रोगी के लिए नितांत आवश्यक है।

यज्ञीय ऊर्जा से कोरोना वायरस का उपचार (१)

वैश्विक महामारी बन चुका कोरोना वायरस-कोविड 19 का समग्र उपचार यज्ञीय ऊर्जा में सन्निहित है। यज्ञोपचार सूक्ष्मीकरण सिद्धांत पर आधारित चिकित्सा पद्धति है। इसकी विशेषता है कि इसमें रोगानुसार निर्धारित औषधियों के सेवन के साथ ही साकल्य के रूप में निर्धारित समिधाओं के साथ नित्य प्रति हवन किया जाता रहे, तो कम समय में अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। नियत समय में सस्वर सामूहिक मंत्रोच्चार पूर्वक किये गये हवन से एक विशिष्ठ प्रकार की प्रचंड यज्ञीय ऊर्जा का निर्माण होता है, जो नासिका छिद्रों एवं रोमकूपों द्वारा यजनकर्ता के शरीर के रस, रक्त सहित सूक्ष्म से सूक्ष्म अंग-अवयवों, संरचनाओं में प्रवेश कर जाती है और शरीर व मन में जड़ जमाकर बैठी हुई आधि-व्याधियों को समूल नष्ट करने में सक्षम होती है। रोगाणुओं, जीवाणुओं, विषाणुओं को विनष्ट करने, जीवनी शक्ति को संवर्धित करने एवं शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को सशक्त बनाने में यज्ञीय ऊर्जा से बढ़कर अन्य कोई सरल एवं सफल साधन नहीं है। पर्यावरण परिशोधन एवं प्राणपर्जन्य के परिपोषण से लेकर प्रकृति चक्र को संतुलित बनाने में यज्ञ की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

कोरोना वायरस से बचने के लिए हवनीय द्रव्य कौन से हो सकते हैं और कौन सी समिधा के ऊपर अग्न्याधान किया जाय। किन मंत्रों से कितनी बार आहुतियाँ प्रदान की जायँ और हवन करने का सही समय कौन सा हो सकता है, आदि बातों का विशेष रूप से ध्यान में रखते हुए विधि-विधान का निर्धारण किया गया है। इसमें प्रयुक्त होने वाली हवन सामग्री में जो वनौषधियाँ मिलाई जाती हैं, उनमें से अधिकांश अपने आसपास के बाग-बगीचों में, खेतों में, वन या जंगलों में अथवा फार्मेशी या वनौषधि विक्रेताओं के यहाँ आसानी से उपलब्ध हो जाती हैं। इन्हें कूट-पीसकर जौकुट रूप में हवन सामग्री बनायी जा सकती है।

"विषस्य विषमौषधम्" की लोकोक्ति के अनुसार विष से ही विष

को समाप्त किया जा सकता है। कोरोनावायरस के उपचार में भी यही सिद्धांत लागू होता है। इसमें प्रयुक्त हवनीय द्रव्य एवं समिधा में नीम, बबूल, बट-वरगद, शमी या शीशम, खदिर, आक आदि का प्रयोग होता है। अग्नि से जब इन हविर्द्रव्यों का मेल होता है तो उससे यज्ञाग्नि में ऐसे परमाणुओं का प्रादूर्भाव होता है जिससे वह बीमारी को समाप्त तो करते ही हैं, साथ ही वायरस को भी समूल नष्ट कर देते हैं। कोरोनावायरस-कोविड-19 को विनष्ट करने के लिए तैयार की जानेवाली हवन सामग्री में नीम, बबूल, बरगद, आँवला, तुलसी, गिलोय, शमी या शीशम, खदिर और मदार-ये नौ चीजें सम्मिलित होती हैं। इन्हें बराबर मात्रा में मिलाकर हवन सामग्री तैयार की जाती है।

इनमें से नीम के कीटाणु-विषाणु नाशक गुणों से सभी परिचित हैं। चेचक जैसी महामारी में नीम की पत्तियों का प्रयोग होता है। आयुर्वेद के अनुसार नीम एक घरेलू दवा है। कड़वी होने के साथ ही यह कृमिनाशक, जीवाणु-विषाणुनाशक, विषनाशक, कफ, पित्त और वातजन्य रोगों में उपयोगी, खाँसी, बुखार, रुधिरविकार, चर्मरोग एवं कुष्ट नाशक, नेत्र रोग, चेचक, क्षयरोग, उपदंश एवं सोजाक, प्लेग आदि रोगों में उपयोगी है।

इस धरती पर बहुत से पेड़-पौधे, वृक्ष-वनस्पतियाँ ऐसी हैं जिन पर सूर्य और चन्द्रमा की किरणों का विशेष प्रभाव पड़ता है। उपरोक्त वृक्ष-वनस्पतियाँ इसी श्रेणी में आती हैं। वट वृक्ष-बरगद को आयुर्वेद में मानव को ओजस्वी और तेजस्वी बनाने वाला माना गया है। यह मनुष्य का प्राण है। इसका प्रत्येक अंग-भाग मनुष्य के तेज को, जीवनी शक्ति को बढ़ाने वाला है। जो व्यक्ति इसके पंचांग का अर्थात पत्र, फल, दूध, छाल और जटा का सेवन करता है, वह देवताओं के सोम रस पान करने के समान ओजस्वी, तेजस्वी और वर्चस्वी बनता है। टी. बी., कुष्ट जैसे रोग इसके सवेन से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इसके पंचांग का सेवन करने वाला मनुष्य स्वस्थ एवं दीर्घजीवी होता है। इसका प्रयोग सैकड़ों बीमारियों में लाभदायक है। बरगद की छाल का काढ़ा इम्यूनिटी अर्थात रोगप्रतिरोधी क्षमता को बढ़ाता है। निष्णात आयुर्वेदाचार्यों के अनुसार वटवृक्ष में पुनर्यौवन प्रदान करने की क्षमता विद्यमान है। इनके

शाकल्य यज्ञीय प्रयोजनों में प्रयुक्त किये जाते हैं।

इसी तरह बबूल एवं खदिर के औषधीयगुणों से सभी परिचित हैं। यह रक्त शोधक है। आयुर्वेद में अनेक रोगों के उपचार में यह दोनों प्रयुक्त होते हैं। इनकी फलियाँ, तने की छाल तथा गोंद पाचन तंत्र एवं श्वसन तंत्र के रोगों में विशेष लाभ पहुँचाते हैं। आँवले-आमलकी को तो गुणों की खान कहा गया है। इसमें दाह एवं खाँसी को नष्ट करने की क्षमता प्रचुर मात्रा में विद्यमान होती है। आंवले का रस लाल रक्त कोशिकाओं का निर्माण कर रक्त की कमी को दूर करता है। इसमें गैलिक एसिड, टैनिकव एसिड, शर्करा, अल्ब्यूमिन, काष्टोज, विटामिन 'सी' आदि तत्व विद्यमान होते हैं जो अनेक रोगों के निदान में सहायक होते हैं।

तुलसी एक दिव्य औषधीय पौधा है, जो मुख्यरूप से श्वेत और श्याम रूप में अपने देश में सर्वत्र पायी जाती है। गुणों की दृष्टि से श्यामा तुलसी आधिक उपयोगी होती है। वैज्ञानिक दृष्टि से दोनों में समान रासायनिक तत्व पाये जाते हैं। औषधीय गुणों के कारण इसका सर्वत्र उपयोग होता है। सर्दी, जुकाम, खाँसी और श्वास संबंधी रोगों में प्रमुखता से इसका उपयोग किया जाता हैं। प्रतिदिन इसके सेवन से शरीर से हानिकारक तत्व एवं अवांछित तत्व बाहर निकल जाते हैं और शरीर के अंग-अवयवों की सफाई हो जाती है।

इसी तरह शमी का यद्यपि ज्योतिषीय महत्व अधिक है। शनि के लाभ के लिए इसे घरों में लगाया जाता है, जबकि यह एक मरुस्थलीय पौधा है। आयुर्वेद में शमी के तने की छाल, पत्ते व फलियों का प्रयोग गुणकारी औषधि के रूप में किया जाता है। रक्तपित्त, श्वास रोग आदि बीमारियों में इसका प्रयोग लाभकारी होता है। इसका यज्ञीय प्रयोग सर्वाधिक लाभकारी होता है। वैश्विक महामारी बनी कोरोना वायरस-क़ोविड-19 बीमारी शनिग्रह के प्रकोप के कारण उपजी है, ऐसा ज्योतिषाचार्यों एवं दिव्यद्रष्टाओं का मत है। इसलिए इसके शमन के लिए शनिमंत्र से 108 से लेकर 1008 बार आहुँतियाँ प्रदान करने से इस महामारी पर पूर्णतया नियंत्रण पाया जा सकता है। समिधा के रूप में इन्ही वृक्षों की लकड़ी एवं हवन सामग्री में संबंधित वृक्षों के फल, छाल आदि का मिश्रण तथा नीम के

तेल अभाव में सरसों के तेल का प्रयोग अनिवार्य रूप से अपेक्षित है।

गिलोय को अमृता भी कहते हैं। आयुर्वेद में इसे रसायन एवं स्वास्थ्य संवर्धक माना गया है। यह आयुवर्धक, विष एवं विषाणुनाशक तथा स्थितिस्थापक है। ज्वर, खाँसी, उलटी, रक्तदोष आदि रोगों के उपचार हेतु इसके पत्ते एवं तने-काण्ड का उपयोग होता है। जिन वृक्षों पर इसकी लता चढ़ती है, उसमें इसके गुण आजाते हैं। इसलिए नीम के पेड़ पर चढ़ी हुई गिलोय सबसे अच्छी मानी जाती है। पाचन तंत्र, यूरिनरी सिस्टम तथा पूरे शरीर को प्रभावित करने वाले रोगाणुओं-विषाणुओं को विनष्ट करती है। मानव के लिए यह एक संजीवनी है।

इसी तरह मदार-आक, आकड़ा या अर्क भी एक बहु उपयोगी औषधीय पौधा है, जिसे धरती पर सूर्य का प्रतीक-प्रतिनिधि माना जाता है। यह पारद को स्वर्ण में बदलने की क्षमता रखता है। स्वास्थ्य संवर्धन में इसके समतुल्य अन्य कोई वनौषधि नहीं ठहरती। आयुर्वेद की अनेक औषधियों में इसके दूध, मूल, श्वेत, लाल, नीले पुष्पों, का उपयोग कई रोगों के उपचार के लिए किया जाता है। इसके लाभ असंख्य हैं। विशेषतया इसका उपयोग अस्थमा या श्वसनतंत्र संबंधी रोगों में किया जाता है। इसके कीटाणु-विषाणु नाशक प्रभाव को आयुर्वेद विशेषज्ञों ने खूब जाँचा-परखा है। प्राणघातक सिफलिस जैसी बीमारियों में इसकी जड की छाल एवं राख को काली मिर्च के साथ दिया जाता है। यह पेनिसिलीन जैसी एंटीबायोटिक दवा की तरह काम करती हैं।

कोरोना वायरस-कोविड-19 की विशिष्ट हवन सामग्री

इस हवन सामग्री में निम्नलिखित वनौषधियाँ सम भाग में मिलाई जाती हैं-

1 नीम की सूखी हुई पत्ती, छाल, बीज अथवा जो भी भाग उपलब्ध हो

2 बबूल की छाल, पत्तियाँ, फलियाँ

3 बरगद की छाल, पत्तियाँ, फल

4 खदिर-कत्था की छाल, पत्तियाँ, फल

5 आँवला-फल

6 तुलसी-पंचांग

7 शमी-छाल, पत्ते अथवा शीशम की छाल, पत्ते आदि

8 गिलोय

9 आक-मदार के फूल, पत्ते व जड़

उपरोक्त सभी नौ चीजों को बराबर मात्रा में लेकर साफ-स्वच्छ करके कूट-पीस कर उनका दरदरा जौकुट पाउडर बना लेते हैं और एक स्वच्छ डिब्बें में सुरक्षित रख लेते हैं। हवन करते समय उसमें स्नेहन के लिए घी के स्थान पर नीम का तैल या कच्ची घानी का सरसो तैल मिला लेते हैं, तदुपरांत हवन करते हैं। समिधा के लिए नीम अथवा शमी या शीशम की सूखी लकड़ी का प्रयोग करते हैं। कोरोना वायरस भलेही चीन के वुहान प्रांत में पनपा हो, किंतु इसका प्रमुख कारण शनि ग्रह की प्रचंड प्रकुपिता है, जिसने सारे संसार को अपनी चपेट में ले लिया है। अतः इसके शमन के लिए तदनुरूप ही मंत्र का आश्रय लेना श्रेयस्कर है। कोरोना वायरश के हवन में प्रयुक्त शनि गायत्री मंत्र इस प्रकार है।

शनि गायत्री मंत्र:

ॐ कृष्णांगाय विद्महे रविपुत्राय धीमहि तन्नः सौरिः प्रचोदयात् स्वाहा।। इदं शनैश्चराय इदं न मम् ।।

अथवा

"ॐ शं शनैश्चराय नमः स्वाहा ।। इदं शनैश्चराय इदम् न मम्।।"

इस मंत्र से नित्य प्रातः सामूहिक रूप से 108 से 1008 बार आहुतियाँ प्रदान करनी होती है। सामूहिक रूप से चार-पाँच लोग मिलकर हवन करें तो आहुतियों की संख्या तदनुरूप विभाजित हो कर कम समय में ही यह यज्ञ पूर्ण हो जाता है।

हवन करने के साथ-साथ निम्नांकित वनौषधियों से निर्मित पाउडर-चूर्ण का सेवन करना भी अनिवार्य है।

कोरोनावायरस नाशक पाउडर

इनमें निम्नांकित वनौषधियाँ बराबर मात्रा में मिलाई जाती हैं-

(1) नीम की पत्ती व छाल

(2) बबूल की पत्ती एवं छाल

(3) शीशम की पत्ती एवं छाल

(4) बरगद की पत्ती, छाल एवं फल

(5) आँवला

(6) तुलसी पंचांग

(7) गिलोय।

उपरोक्त सभी सात चीजों को धूप में सुखाकर साफ-स्वच्छ कर लेते हैं। तदुपरान्त इन्हें कूट-पीसकर कपड़छन करके बारीक चूर्ण तैयार कर लेते हैं और एक डिब्बे में सुरक्षित रख लेते हैं। इसमें से एक चम्मच पाउडर सुबह एवं एक चम्मच शाम को कुनकुने जल से सेवन करते हैं। संक्रमणकाल में यह जीवन रक्षक का कार्य करता है। यज्ञोपचार एवं पाउडर सेवन न केवल मनुष्य के स्वास्थ्य का संरक्षण करेगा, प्राणशक्ति, जीवनीशक्ति को बढ़ायेगा, वरन् यज्ञ से समूचे वातावरण का परिशोधन होकर यह कीटाणु-विषाणु रहित हो जायेगा।

प्रतिरक्षा प्रणाली संवर्धक एवं कोरोनावायरस नाशक क्वाथ-(2)

कोरोना वायरस (कोविड-19) जिस तरह से समूचे विश्व में एक प्राणघातक महामारी बनकर फैलता जा रहा हैं, उससे बचाव के जितने भी भौतिक एवं चिकित्सकीय उपाय-उपचार हैं, बौने सिद्ध हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में आवश्यक है कि विशेषज्ञों द्वारा सुझाये गये उन समस्त उपाय-उपचारों को अपनाते हुए मनुष्य की जीवनीशक्ति एवं रोगप्रतिरोधी प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाया जाय। इससे संक्रमण का असर भी कम होगा और व्यक्ति यदि इस महामारी की चपेट में आ भी जाता है तो भी प्राणों की रक्षा हो सकती है। इसके लिए आयुर्वेद की प्राचीन चिकित्सा प्राणाली सर्वाधिक कारगर है। यहाँ उसी अनुसंधानित प्रणाली में से तीन तरह के क्वाथ (काढ़ा) का वर्णन किया जा रहा है, जिनके सेवन से इस महामारी से बचा जा सकता है।

क्वाथ नम्बर -(1)

(1) गिलोय - 10 ग्राम
(2) वासा - 10 ग्राम
(3) कालमेघ - 2 ग्राम
(4) गुलबनफ्सा - 5 ग्राम
(5) त्रिकटु - 3 ग्राम
(सोंठ, पीपल, कालीमिर्च बराबर मात्रा में)
(6) चिरायता - 1 ग्राम
(7) नीमपत्ती - 1 ग्राम
(8) दारुहरिद्रा - 4 ग्राम
(9) तुलसीपत्र - 5 ग्राम
(10) आक की पत्ती (हरी) - आधी पत्ती
(11) आर्टीमीसिया इन्डिका (दमनक)- 5 ग्राम

उक्त सभी चीजों का क्वाथ बनाकर प्रतिदिन सुबह खाली पेट 30 ml. एवं शाम को 30 ml. पीना है।

6.6

क्वाथ नम्बर - (2)

(1) वासा - 20 ग्राम
(2) कंटकारी - 20 ग्राम
(3) भारंगी - 20 ग्राम
(4) तेजपत्र - 20 ग्राम
(5) मुलहठी - 20 ग्राम
(6) तालीस पत्र - 20 ग्राम
(7) त्रिकटु (सोंठ, पीपल, काली मिर्च-समभाग)- 30 ग्राम
(8) छोटी पिप्पली - 25 ग्राम
(9) नौसादर - 5 ग्राम
(10) अतीस कड़वा - 10 ग्राम
(11) पुनर्नवा - 25 ग्राम
(12) रुदन्ती - 25 ग्राम
(13) काकड़ासिंगी - 25 ग्राम
(14) कूठ -25 ग्राम
(15) तुलसी पंचांग - 25 ग्राम
(16) गुलबनफ्शा - 25 ग्राम
(17) आक के सूखे पत्ते- 25 ग्राम
(18) हल्दी चूर्ण-दरदरा- 20 ग्राम
(19) दारुहल्दी - 2 ग्राम
(20) आर्टीमिसिया - 10 ग्राम

क्वाथ नम्बर- (3)

(1) कालमेघ - 25 ग्राम
(2) कुटकी - 25 ग्राम
(3) चिरायता - 25 ग्राम
(4) शरपुंखा - 25 ग्राम

(5)	पुनर्नवा –	25 ग्राम
(6)	कालीजीरी –	25 ग्राम
(7)	भृंगराज –	25 ग्राम
(8)	भुईआंवला –	25 ग्राम
(9)	गिलोय –	50 ग्राम
(10)	कायफल –	25 ग्राम
(11)	मंजीष्ठ –	25 ग्राम
(12)	कूठ या पुष्करमूल–	25 ग्राम
(13)	ईश्वरमूल –	25 ग्राम
(14)	पटोल पत्र –	25 ग्राम
(15)	मुलहठी –	25 ग्राम
(16)	नीम की छाल या पत्ती–	25 ग्राम
(17)	हल्दी चूर्ण दरदरा–	25 ग्राम
(18)	दारुहल्दी –	25 ग्राम
(19)	रुद्रवन्ती –	25 ग्राम
(20)	आर्टीमिसिया–	10 ग्राम

क्वाथ–नम्बर (1) में दर्शायी गयी सभी औषधियों को उनके आगे वर्णित मात्रा में लेकर साफ–स्वच्छ कर लें और धूप में सुखा लें। तदुपरान्त इन्हें खरल या ग्राइण्डर में दरदरा पीस लें और सभी को मिलाकर एयर टाइट डिब्बे में सुरक्षित रखलें। इसी तरह क्वाथ नम्बर (2) एवं (3) में वर्णित काष्ठ औषधियों को भी पीसकर अलग डिब्बे में सुरक्षित रख लें। क्वाथ नं. 2 में वर्णित 9 नम्बर की औषधि–नौसादर को अलग रखते हैं और क्वाथ बनाते समय अलग से मिलाते हैं। आवश्यकतानुसार उपरोक्त वनौषधियों की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। उदाहरण के लिए 20 ग्राम के स्थान पर 250 ग्राम और 30 ग्राम के स्थान पर 300 ग्राम ले सकतें हैं। जिससे यह पाउडर अधिक दिनों तक और अधिक लोगों को सेवन करने के काम आ सकता है। रोग की तीव्रता के अनुसार क्वाथ नं. 2 या 3 अधिक उपयुक्त रहेगा।

क्वाथ बनाने की विधि

20 जड़ी–बूटियों से तैयार जौकुट पाउडर में से एक व्यक्ति के लिए

पाँच चम्मच पाउडर पर्याप्त होगा। पाँच चम्मच पाउडर लेकर शाम को स्टील के भगोने में आधा लीटर पानी में भिगो दें और सुबह मंद आंच पर या सिम बर्नर पर काढ़ा बनने दें। जब पानी जलकर चौथाई रह जाय तो बर्नर बंद कर दें और उसे चूल्हे से उतार कर ठंडा होने तक छोड़ दें। हल्का कुनकुना रहने पर साफ-सुथरे पतले कपड़े से छान लें। इसमें से 30 मि.ली. क्वाथ सुबह और 30 मि.ली. शाम को 4-5 बजे तक पी लें। आधा घंटे तक कुछ न खायें। स्वस्थ व्यक्ति भी इसे पी सकते हैं। जीवनशक्ति एवं रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में यह क्वाथ पूर्णतया सक्षम व सुरक्षित है।

अध्याय-५

हृदय रोग की यज्ञोपचार प्रक्रिया

★★★★★★★★★★★★★★

शरीर में प्रधान वा सर्वश्रेष्ठ अंग हृदय को माना गया है। आयुर्वेद ग्रंथों में इसकी गणना शरीर के सबसे प्रमुख मर्म स्थान के रूप में की गई है। यों तो मानवी काया में कुल एक सौ सात मर्मस्थान हैं, जिसका वर्णन करते हुए चरकसंहिता चि.२६/३-४ में कहा गया हैं-

सप्तोत्तरं मर्मशतं यदुक्तं शरीरसंख्यामधिकृत्य तेभ्यः ।
मर्माणि बस्तिं हृदयं शिरश्च प्रधानभूतानि वदन्ति तज्ज्ञा ॥
प्राणाशयान्तान् परिपीडयन्ति वातादयोऽसूनपि पीडयन्ति ।
तत्संश्रितानामनुपालनार्थं महागदानां श्रृणु सौम्य रक्षाम् ॥

शरीर में एक सौ सात मर्मस्थान हैं, जिनमें तीन प्रमुख हैं-वस्ति, हृदय एवं शिर और उनमें भी हृदय सबसे प्रमुख है। हृदय जब तक लपडप-लपडप करता हुआ धड़कता रहता है, तभी तक जीवन माना जाता है। जैसे ही धड़कन बंद हुई कि व्यक्ति को मृतक घोषित कर दिया जाता है। इसीलिए हृदय को चेतना का केंद्र माना गया है और कहा गया है-

षडङ्गमङ्गं विज्ञानमिन्द्रियाण्यर्थ पञ्चकम् ।
आत्मा च सगुणेश्चेतश्चिन्त्यं च हृदि संश्रितम् ॥

छहों अंगों से युक्त शरीर, विज्ञान अर्थात बुद्धि, इंद्रियाँ, इंद्रियों के पाँचों विषय, सगुण आत्मा, मन और मन के विषय-ये सभी हृदय के आश्रित हैं। हृदय ही रस-रक्त एवं ओज का आश्रयस्थल है। अतः बुद्धिमान मनुष्य को उन सभी कारणों से अपने हृदय की रक्षा करनी चाहिए, जो हृदय रोग को जन्म देते हैं। विशेषकर मन को दुखी एवं बोझिल, तनावयुक्त बनाने वाले उन सभी कारणों का, आचरण एवं व्यवहार का परित्याग कर देना चाहिए और ऐसे आहार-विहार का सेवन करना चाहिए, जो हृदय के लिए लाभकारी हों तथा ओज की रक्षा एवं वृद्धि करने वाले हों।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान हृदय को रक्त परिवहन संस्थान का प्रमुख केंद्र मानता है। यह हृदय सहित शरीर के समस्त अंग-अवयवों को छोटी-बड़ी रक्तवाही धमनियों के द्वारा पोषक तत्त्वों से भरपूर ऑक्सीजनयुक्त रक्त की आपूर्ति निरंतर करता रहता है और उन अंगों से छोटी-बड़ी रक्तशिराओं द्वारा एकत्रित किए गए अशुद्ध रक्त को फेफड़ों में भेजकर शुद्ध करता और दुबारा परिसंचरण योग्य बनाता रहता है। यह प्रक्रिया सतत अविराम रूप से चलती रहती है। किन्हीं कारणों से जब हृदय एवं उससे जुड़े हुए अंग-अवयवों, रक्त नलिकाओं या उनकी क्रियाओं में विकार आ जाता है या अवरोध उत्पन्न हो जाता है, तब कहा जाता है कि हृदय रोग हो गया है। इनमें क्रिया संबंधी (फंक्शनल डिसआर्डर) विकारों का शमन उपचार से शीघ्र हो जाता है, जबकि अंग संबंधी विकारों (आर्गेनिक डिसआर्डर) को ठीक होने में समय लगता है और कभी-कभी वे ठीक न होकर प्राणघातक सिद्ध होते हैं।

सुश्रुत संहिता उत्तरतंत्र-४३ में हृदय रोग को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि-

दूषयित्वारसं दोषा विगुणा हृदयं गताः ।
कुर्वन्ति हृदये बाधां हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥

जब प्रकुपित वात, पित्त, कफ आदि दोष रस-रक्त को दूषित कर हृदय में पहुँचकर हृदय के कार्य में व्यवधान उत्पन्न करते हैं, तो उसे हृदय रोग कहते हैं।

कारण-जिन कारणों से यह रोग उत्पन्न होता है, उसका उल्लेख करते हुए चरक संहिता में कहा गया है-

अत्युष्ण गुर्वन्न कषाय तिक्त श्रमाभिघाताध्यसनप्रसङ्गैः।
सञ्चिन्तनैर्वेगाविधारणैश्च हृदामयः पञ्चविधः प्रदिष्टः॥

अत्यधिक उष्ण-गरम प्रकृति वाले पदार्थ, अत्यंत भारी पदार्थ, कषायरस प्रधान एवं तिक्तरसप्रधान भोज्य पदार्थों का निरंतर सेवन करने से, हृदयप्रदेश में आघात लगने से, अध्यसन अर्थात अजीर्ण रहने पर भी भोजन करने से, अधिक चिंता करने या तनावग्रस्त रहने से, भयभीत रहने से, मलमूत्रादि वेगों को रोकने से, पहले से उत्पन्न रोगों की चिकित्सा न करने आदि कारणों से पाँच प्रकार के हृदय रोग उत्पन्न होते हैं। इस तरह हृदय रोग के मूल में शारीरिक, मानसिक एवं आगंतुक कारण माने जाते हैं।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार हृदय रोग का सबसे प्रमुख कारण रक्तवाही धमनियों में कोलेस्ट्राल, वसा एवं कैल्सियम के जमा होने से उनका कठोर होना और सिकुड़ना है। इसके कारण हृदय की मांसपेशियों को पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन और रक्त नहीं मिल पाता, परिणामस्वरूप हृदय सही ढंग से काम नहीं कर पाता और उसकी कोशिकाएँ मरने लगती हैं। अधिक तनाव, अत्यधिक निम्न या उच्च रक्तचाप, डायबिटीज, उच्च कोलेस्ट्रॉल, धूम्रपान, मद्यपान आदि हृदय रोग उत्पन्न करने वाले प्रमुख कारण हैं। अधिक मात्रा में लिया गया कोलेस्ट्रॉल एवं उच्च वसायुक्त आहार, हैमबर्गर आदि जंक फूड, कोल्ड ड्रिंक, चाय व कॉफी आदि का अत्यधिक सेवन भी हृदय रोग उत्पन्न करते हैं। मोटापा एवं शारीरिक वजन की अभिवृद्धि हृदय रोग बढ़ाने में महती भूमिका निभाते हैं।

हृदयरोग के प्रकार

आयुर्वेद शास्त्रों में पाँच प्रकार के हृदय रोग बताए गए हैं-

१. वातजहृदय रोग २. पित्तज हृदय रोग ३. कफज हृदय रोग ४. त्रिदोषज हृदय रोग एवं ५. कृमिज हृदय रोग।

१. वातज हृदय रोग उत्पन्न होने के कारणों एवं लक्षणों का उल्लेख चरक संहिता में करते हुए कहा गया है-

शोकोपवासव्यायामशुष्करूक्षाल्पभोजनैः।
वायुराविश्य हृदयं जनयत्युत्तमां रुजम्॥
वेपथुवेष्टनं स्तम्भः प्रमोहः शून्यता द्रवः।
हृदिवातातुरे रूपं जीर्णे चात्यर्थवेदना ॥

खान-पान में असंयम यथा रूक्ष, शुष्क और अत्यल्प मात्रा में भोजन करना, अधिक उपवास करना, शोक करना, अधिक व्यायाम करना, आदि कारणों से प्रकुपित वायु हृदय-प्रदेश में जाकर अधिक वेदनापूर्वक वातज हृदय रोग को उत्पन्न करती है। इस प्रकार के हृदय रोग में पीड़ा अधिक रहती है। हृदय की धड़कन का तेज हो जाना, हृदय गति में रुकावट होना, ऐंठन होना, शरीर का शून्य-सा मालूम होना, मूर्च्छित होना, भय लगना, हृदय में सुई चुभोने या चीरा लगाने जैसी पीड़ा होना आदि लक्षण इस रोग में प्रकट होते हैं।

२. पित्तज हृदय रोग के कारण एवं लक्षण इस तरह बताए गए हैं-

उष्णाम्ललवणक्षार कटुकाजीर्णभोजनैः।
मद्यक्रोधातपश्चाशुहृदि पित्तंप्रकुप्यति ॥
हृद्दाहस्तिक्ततावक्रेक्लमपित्ताम्लकोद्गरः।
तृष्णामूर्च्छाभ्रमःस्वेदःपित्तहृद्रोगलक्षणम्॥

उष्ण, लवणरसप्रधान, क्षारीय एवं कटुरस वाले पदार्थों का सेवन

करने से, अजीर्ण रहने पर भी भोजन करने से, अधिक शराब पीने से, अधिक क्रोध करने से, देर तक अधिक तेज धूप में रहने से हृदय में जाकर पित्त अधिक प्रकुपित हो जाता है और पित्तज हृदय रोग उत्पन्न करता है। हृदय में दाह होना, मुख में तिक्तता एवं अम्लीय, खट्टा पानी आना, खट्टी डकार आना, खट्टा वमन होना, इंद्रियों में थकावट होना, तृष्णा, बेहोशी, चक्कर आना, पसीना होना, मुख का सूखना आदि लक्षण इस रोग में उत्पन्न होते हैं।

३. कफज हृदयरोग के कारण एवं लक्षण इस प्रकार बताए गए हैं-

अत्यादानंगुरुस्निग्धमचिन्तनमचेष्टनम्।
निद्रासुखं चाभ्यधिकं कफहृद्रोगलक्षणम्।।
हृदयं कफहृद्रोगे सुप्तं स्तिमितभारिकम्।
तन्द्रारुचिपरीतस्य भवत्यश्मावतं यथा।।

अधिक मात्रा में भोजन करना, भारी और चिकने पदार्थों का अधिक सेवन करना, चिंतारहित होना, अकर्मण्य अर्थात किसी प्रकार का परिश्रम न करना, ज्यादा से ज्यादा समय सोने में व्यतीत करना आदि कारणों से कफज हृदय रोग उत्पन्न होता है। इस रोग की चपेट में आने वाले को ऐसा मालूम पड़ता है कि जैसे उसका हृदय प्रसुप्त-सा हो गया है, सिकुड़ गया है या भीग गया है, हृदय के ऊपर बोझ रखा हुआ है अथवा हृदय किसी पत्थर से दब गया है। तंद्रा, भोजन में अरुचि आदि अन्यान्य लक्षण प्रकट होते हैं।

४. त्रिदोषज हृदय रोग-इसे सान्निपातिक हृदय रोग कहते हैं। इसके कारणों एवं लक्षणों का वर्णन करते हुए कहा गया है- **'हेतुलक्षणसंसर्गादुच्यते सान्निपातिकः'** अर्थात वात, पित्त एवं कफ के प्रकुपित होने से होने वाले हृदय रोगों के जो कारण एवं लक्षण कहे गए हैं, वे सब संयुक्त रूप से जहाँ इकट्ठे दिखाई पड़ें, समझना चाहिए कि सान्निपातिक हृदय रोग है। यह कष्टसाध्य माना गया है।

५. कृमिज हृदय रोग-यह त्रिदोषज हृदय रोग का उपचार न करने एवं खान-पान में असंयम बरतने, तिल, दूध, गुड़ आदि मीठे पदार्थों का अधिक सेवन करने से उत्पन्न विकार के कारण पैदा होता है। इसके कारण हृदयप्रदेश में एक ग्रंथि बन जाती है, जिसमें आयुर्वेद विशेषज्ञों के अनुसार कृमि उत्पन्न होते और संख्या में अभिवृद्धि करके हृदय को खोखला करने लगते हैं। इससे हृदयप्रदेश में सुई चुभाने या शस्त्र से काटने जैसी भयंकर पीड़ा होती है। यह रोग असाध्य माना जाता है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान-एलोपैथी के अनुसार हृदय रोग के कितने ही भेद-उपभेद हैं और वे सभी कष्टदायी हैं तथा इनमें से कितने ही 'सडन डैथ' असमय मृत्यु का कारण बनते हैं। इनमें से प्रमुख हैं-

१. इस्चीमिक हार्ट डिजीज या एंजाइना पेक्टोरिस अर्थात हृद्शूल,
२. मायोकार्डियल इन्फार्क्शन या हार्ट अटैक अर्थात दिल का दौरा
३. हार्ट फेल्योर अर्थात हृदयनिपात
४. हाइपरटेंशन या उच्च रक्तचाप
5. हाइपोटेंशन या निम्न रक्तचाप
६. एथीरोस्कलेरोसिस या एथीरोमा
७. एरीथीमिया अर्थात हृदय की धड़कन में अनियमितता एवं हार्ट ब्लॉक
८. रिह्यूमेटिक हार्ट डिजीज
९. पेरीकोर्डाइटिस
१०. इंडोकोर्डाइटिस
११. मायोकोर्डाइटिस
१२. वेनस थ्रोम्बोसिस
१३. टैकीकार्डिया (हृदय की गति ६० से कम)
१४. एओर्टिक हार्टडिजीज (हृदय की गति १२५ से अधिक) आदि।

उपर्युक्त सभी प्रकार के हृदय रोग असंयम एवं असावधानी बरतने तथा समय पर चिकित्सा न करने से बढते जाते हैं और अंततः जानलेवा सिद्ध होते हैं। इनसे बचने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि आहार-विहार में संयम बरता जाए और रोग के अनुरूप चिकित्सा अपनाई जाए। इसके लिए सबसे सरल एवं निरापद चिकित्सा है-यज्ञोपचार। इस प्रक्रिया को अपनाकर हृदय रोगों से छुटकारा पाया और स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन का लाभ उठाया जा सकता है।

१. हृदय रोग की विशिष्ट हवन सामग्री (सभी तरह के हृदय रोगों के लिए)

इसमें निम्नलिखित बनौषधियाँ बराबर मात्रा में मिलाई जाती हैं-

1. अर्जुन छाल	2. अपामार्ग	3. पुष्करमूल
4. ब्राह्मी	5. अगर	6. तगर
7. जटामांसी	8. शालपर्णी	9. दारुहलदी
10. हरड़	11. द्राक्ष (दाख)	12. सोंठ
13. तिलपुष्पी (डिजिटेलिस) के पत्ते		14. कुटकी
15. मुंडी(गोरखमुंडी)	16. कूठ	17. पुनर्नवा
18. चित्रक	19. मीठी बच	20. नागबला (गंगेरन)
21. रास्ना	22. अंबर (कहरुवा)	
23. बला (खिरैंटी)की जड़।		

उपर्युक्त सभी तेईस चीजों को समभाग में लेकर कूट-पीसकर जौकुट पाउडर बना लेना चाहिए। उसे एक डिब्बे में सुरक्षि रखकर उस पर 'हृदय रोग की विशेष हवन सामग्री-नं.(२)' का लेबल लगा देना चाहिए। हवन करते समय उसमें बराबर मात्रा में पहले से तैयार की गई 'कॉमन हवन सामग्री-नं. (१)' को मिलाकर हवन करना चाहिए। हवन के लिए समिधा आम या पलाश की सूखी हुई लकड़ी प्रयुक्त करनी चाहिए। हवन नित्य प्रातः-सायं गायत्री महामंत्र या सूर्य गायत्री मंत्र से करना चाहिए।

उपर्युक्त २३ चीजों से तैयार 'हृदय रोग की विशेष हवन सामग्री नं. (२)' के सम्मिश्रित जौकुट पाउडर की कुछ मात्रा को अधिक बारीक घोट-पीसकर कपड़छन चूर्ण तैयार कर लेना चाहिए और इसे एक अलग कार्क बंद शीशी में रख लेना चाहिए। इसमें से प्रतिदिन हवन के पश्चात् सुबह एवं शाम को एक-एक चम्मच पाउडर दूध अथवा घी अथवा शक्कर के साथ पूर्ण स्वस्थ होने तक खिलाते रहना चाहिए। बाद में खाने वाले

पाउडर में-क्र.१२ में वर्णित वनौषधि-तिलपुष्पी (डिजिटेलिस) के सूखे पत्ते की मात्रा अन्यान्य औषधियों से आधी कर देनी चाहिए अर्थात द्राक्ष या सोंठ यदि १०-१० ग्राम लिए गए हैं, तो तिलपुष्पी के पत्ते ५ ग्राम ही लेने चाहिए। इस पाउडर को क्वाथ रूप में भी लिया जा सकता है।

(अ) उच्च रक्तचाप एवं एन्जाइना नाशक चूर्ण

मस्तिष्कीय तनाव आदि कारणों से उत्पन्न होने वाले हाई बी. पी. अर्थात् उच्च रक्तचाप एवं एन्जाइना पेक्टोरिस या हृद्शूल में निम्नांकित औषधियों से बने चूर्ण का सेवन रोगी को लाभ पहुचाता है-

1. अर्जुन 2. पुनर्नवा 3. जटामांसी
4. नागरमोथा 5. मुलहठी 6. हरड़
7. कुटकी 8. तेजपत्र 9. कालमेघ
10. सोंठ 11. पुष्करमूल 12. कूठ
13. शरपुंखा 14. ब्राह्मी 15. तिलपुष्पी पत्र
16. सुरंजान-मीठा 17. सर्पगंधा।

इन सभी १७ चीजों को लेकर कूट-पीसकर कपड़छन पाउडर तैयार कर लेना चाहिए और रोज सुबह-शाम एक-एक चम्मच पाउडर दूध या घी अथवा शक्कर के साथ रोगी व्यक्ति को खिलाना चाहिए।

(ब) लो बी.पी. (निम्न रक्तचाप) नाशक पाउडर

निम्न रक्तचाप में निम्नलिखित चीजों से बने पाउडर को खिलाना चाहिए-

1. अश्वगंधा 2. शतावर 3. मुलहठी
4. विधारा 5. पिप्पलामूल।

इन सभी पाँचों चीजों को समभाग लेकर कूट-पीस करके कपड़छन

पाउडर बना लेना चाहिए। इसमें से सुबह एक चम्मच तथा शाम को एक चम्मच पाउडर शुद्ध घी एवं शक्कर के साथ खिलाना चाहिए। इसके साथ ही सुबह-शाम आधा-आधा ग्राम शुद्ध शिलाजीत थोड़े से दूध में घोलकर पिलाना चाहिए एवं चौथाई रत्ती सुबह एवं चौथाई रत्ती शाम को घी में भुना हुआ शुद्ध कुचला उक्त पाउडर के साथ रोगी व्यक्ति को सेवन कराना चाहिए। इससे निम्न रक्तचाप निवारण में महत्त्वपूर्ण सफलता मिलती है। यज्ञोपचार की हवन-प्रक्रिया तीनों में एक समान ही रहती है।

हृदय को स्वस्थ रखने के लिए अपने दैनिक आहार में विटामिन 'बी,' 'सी' एवं 'ई' युक्त खाद्य पदार्थों की पर्याप्त मात्रा सम्मिलित रखनी चाहिए। इनकी कमी से रक्तवाही नलिकाएँ कठोर पड़ती हैं, कोलेस्ट्रॉल जमा होने लगता है, रक्त का थक्का जमने लगता है और हृदयाघात जैसी व्यथा का सामना करना पड़ता है। इससे बचने के लिए यीस्ट, अंकुरित गेहूँ, अंकुरित दालें यथा सोयाबीन, मसूर, मूँग, आदि, कच्चा केला, हरे पत्ते वाली सब्जियाँ, बंदगोभी, पत्तागोभी, लौकी, तोरई, कच्चा पपीता, गाजर, टिंडा, करेला, परवल, पालक, हरी मेथी, सहजन की फली, सेमल के कच्चे फूल, शीघ्र पचने वाले फल, सेव, पपीता, आँवला, अमरूद, नीबू, नारंगी आदि तथा फलों का रस, मक्का, चोकर युक्त आटे की रोटी आदि लेना चाहिए। गाय का दूध, दूध में अल्प मात्रा में कभी-कभी ईसबगोल आदि का प्रयोग उपयोगी है। दूध में अर्जुन की छाल पकाकर पीना हृदयरोग में अति लाभप्रद है। हृदय रोग में पानी खूब पीना चाहिए, इससे रक्त की सांद्रता कम होती है और खून का थक्का जमने की संभावना नहीं रहती।

अध्याय-६

मोटापा, हाइपोथाइरॉयडिज्म, प्रमेह एवं मधुमेह की यज्ञ चिकित्सा

★★★★★★★★★★

१. यज्ञ चिकित्सा द्वारा मोटापा निवारण

इन दिनों विश्वभर में करोड़ों लोग मोटापे या स्थूलता से त्रस्त हैं। यह एक ऐसा महारोग है, जो शरीर को बेडौल व थुलथुला तो बनाता ही है, साथ ही इसके कारण उच्च रक्तचाप, डायबिटीज, हृदयरोग, अनिद्रा, दमा, हड्डियों की बीमारी, हॉर्मोन असंतुलन, शारीरिक अपंगता, पुरुषत्वहीनता जैसी कितनी ही बीमारियाँ पैदा होती चली जाती हैं। इसके कारण अधिकांश व्यक्ति असमय ही काल-कवलित होते देखे जाते हैं।

मेदवृद्धि या मोटापा क्या है और क्यों होता है?

आयुर्वेदशास्त्रों में मोटापे को मेदरोग या स्थौल्य रोग (स्थूलता) कहते हैं। चरक संहिता, सूत्रस्थानम् २१/९ के अनुसार-"जिस रोग में मेद और मांस धातु की अतिवृद्धि होकर नितंब, उदर एवं वक्षप्रदेश मोटे हो जाते हैं और लटक जाते हैं तथा चलने-फिरने पर हिलते-डुलते रहते हैं, अंग-प्रत्यंगों में मेद या वसा-संचय के कारण उनकी वृद्धि समुचित रूप से नहीं होती है तथा कार्यक्षमता में कमी आ जाती है, ऐसे व्यक्ति को अतिस्थूल या मोटा व्यक्ति कहते हैं। खान-पान में असंयम एवं अनियमितता के कारण शरीर में जब अनावश्यक रूप से अत्यधिक मात्रा में मेद या वसा जमा हो जाती है, तब आदमी मोटा हो जाता है।"

जो व्यक्ति रोज आवश्यकता से अधिक मात्रा में एवं बार-बार उच्च कैलोरीयुक्त आहार ग्रहण करते हैं, जिसमें ग्लूकोज या कार्बोहाइड्रेट तथा चिकनाई युक्त पदार्थ सम्मिलित हैं। तो यह अतिरिक्त चरबी त्वचा एवं शरीर के अन्य अंग-अवयवों के अंदरूनी भाग, पेट और मांसपेशियों के बीच में जमा होती जाती है और हमारा शरीर मोटा और बेडौल बन जाता है। इसे ही मोटापा या मेद या स्थौल्य कहते हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञानी इसे ही 'Obesity' कहते हैं। यह लैटिन शब्द 'Obesus' से बना है, जिसका अर्थ है-अधिक खाना। अपने शब्दार्थ में ही यह बीमारी इस रहस्य को समाहित किए हुए है कि जरूरत से ज्यादा खाने से मोटापा बढ़ता है। चिकित्सा विज्ञान की भाषा में यह वह अवस्था है, जिसमें शरीर में अत्यधिक वसा का संचय हो जाता है।

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के अनुसार स्थूलता या मोटापा उसे कहते हैं, जिसमें आयु एवं ऊँचाई के हिसाब से शरीर में जितना भार होना चाहिए, उससे दस प्रतिशत अथवा उससे अधिक हो। वस्तुतः मोटापे की शुरुआत पेट से होती है, क्योंकि मेद सभी प्राणियों के पेट और अस्थि में रहता है। मेद वृद्धि में सबसे पहले तोंद बढ़ती है, तत्पश्चात् कूल्हे, गरदन, कपोल, बाँहें, जंघा आदि में वसा की मोटी परत जमा होती जाती है और मनुष्य को स्थूल एवं बेडौल बना देती है। आयुर्वेदशास्त्र के अनुसार मेद या चरबी बढ़ने के कारण सब धातुओं के मार्ग बंद हो जाते हैं, जिससे शरीर स्थित दूसरी धातुओं-अस्थि, मज्जा, वीर्य आदि का पोषण नहीं हो पाता, केवल मेद या चरबी ही बढ़ती रहती है। इसके बढ़ने से व्यक्ति सभी कार्यों को करने में अशक्त हो जाता है।

मोटापा मनुष्य के स्वस्थ जीवन के लिए एक भारी अभिशाप है। आयुर्वेदशास्त्रों में जिन आठ प्रकार के शरीर वाले व्यक्तियों को निंदनीय माना गया है, उनमें अति कृशकाय एवं अति स्थूल व्यक्तियों की गणना प्रमुख रूप से की गई है। चरक संहिता, सूत्रस्थान-२१/१-२ में कहा गया है-'**तत्रातिस्थूल कृशयोर्भूयएवापरे निंदितविशेषा भवंति।**' अर्थात इन आठ प्रकारों में अधिक मोटा एवं अधिक दुबला-कृशकाय व्यक्ति विशेष निंदा के पात्र हैं। इतने पर भी तुलनात्मक दृष्टि से इन दोनों में कृशकाय व्यक्ति को फिर भी अच्छा मानते हुए इसी ग्रंथ में आगे कहा गया है-

स्थौल्यकार्श्ये वरं कार्श्ये समोपकरणौ हितौ।
यद्युभौ व्याधिरागच्छेत्स्थूलमेवातिपीड्येत ॥

अर्थात अधिक मोटे और अधिक कृशकाय व्यक्तियों में मोटापे की अपेक्षा कृशता-दुबलापन फिर भी अच्छा है, क्योंकि दोनों के उपकरण समान होने पर भी स्थूलकाय मनुष्य को रोगग्रस्त होने पर अधिक कष्ट सहन करना पड़ता है। मोटे व्यक्तियों की जीवनावधि भी घट जाती है। जन समुदाय में सम्मान की दृष्टि से भी वे तुलनात्मक दृष्टि से पिछड़े ही माने जाते हैं। सुश्रुत सहिंता में उल्लेख है-**'कृशः स्थूलात् पूजितः'** अर्थात स्थूल की अपेक्षा दुबला-पतला आदमी अधिक सम्मान के योग्य है। वस्तुतः मनुष्य अपने उत्तम स्वास्थ, प्रबल पराक्रम, प्रखर प्रतिभा एवं उज्ज्वल चरित्र के कारण समाज में सम्माननीय स्थान पाता है। केवल मोटेपन पर भरोसा नहीं किया जा सकता।

मेदबृद्धि से हानियाँ

मोटापे की अकारण ही निंदा नहीं की गई है। स्वास्थ्य का सर्वनाश करने में मोटापा सबसे प्रमुख कारण है। इसके कारण अधिकांश व्यक्तियों को हृदय रोग, उच्चरक्तचाप, डायबिटीज, पेट व साँस की अनेक बीमारियाँ धर दबोचती हैं। शरीर स्थूल व थुलथुला हो जाने से अधिकतर व्यक्ति आत्महीनता का शिकार बन जाते हैं। वैज्ञानिक परीक्षण बताते हैं कि मोटे एवं तोंदू व्यक्ति में उदर एवं पाचन संबंधी गड़बड़ी के साथ ही उसके रक्त में अच्छे कोलेस्ट्राल (एच. डी. एल.) की मात्रा कम व बुरे कोलेस्ट्राल की मात्रा बढ़ी हुई होती है। बढ़ी हुई यही खराब कोलेस्ट्राल (एल.डी.एल.) हाई ब्लड प्रेशर, हार्ट अटैक एवं ब्रेन स्ट्रोक आदि का कारण बनती है। इसके अतिरिक्त इंसुलिन का स्राव कम होने से डायबिटीज का खतरा भी बना रहता है। जिन व्यक्तियों में वसा की मोटी परत जमने के कारण शरीर भारी होता है, उन्हें प्रायः कब्ज की शिकायत, गैस, पीठ का दरद, छोटी साँस, खर्राटे, स्लीप एप्निया (श्वास-प्रश्वास में रुकावट) आदि रोग होने की संभावना अधिक रहती है। लीवर एवं किडनी भी ऐसे व्यक्तियों में प्रायः ठीक ढंग से काम नहीं करते। अति स्थूलता से शरीर की मेटाबॉलिक प्रक्रिया दुष्प्रभावित होती है, जिसके कारण प्रजनन हॉर्मोन में असंतुलन उत्पन्न होता है और व्यक्ति नपुंसकता का शिकार बनता है। मोटापे के कारण वात-व्याधि, जोड़ों का दरद,

आर्थ्राइटिस, सायटिका, पक्षाघात, रीढ़ का दरद, हार्निया, ओस्टियोपोरोसिस, वेरिकोस वेन्स, रक्त वाहिनियों में रक्त संचरण में बाधा, पथरी आदि बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं।

मोटापे के लक्षण

यों तो मोटापे की सरल पहचान यह है कि यदि व्यक्ति की तोंद वक्षस्थल से ज्यादा उभरी हुई है, तो माना जाना चाहिए कि हम स्थूलता की ओर बढ़ रहे हैं। गर्भवती महिलाएँ इसकी अपवाद हैं। उदरवृद्धि के अतिरिक्त शिथिलता, गुरुता, स्वेदाधिक्य, क्षुधाधिक्य, अधिक प्यास, निद्राधिक्य, जड़ता, पीड़ा, मुखमाधुर्य, मुख, तालु-कंठ शोथ, अनुत्साह, आलस्य, तंद्रा एवं शरीर से दुर्गंध आना आदि लक्षण इसमें धीरे-धीरे प्रकट होने लगते हैं। शरीर का वजन अधिक बढ़ जाने से कूल्हे, घुटनों एवं टखनों आदि पर सर्वाधिक भार पड़ता है, जिससे जोड़ वाले इन स्थानों पर दरद शुरू हो जाता है। अति स्थूलता के कारण व्यक्ति अपनी कार्यक्षमता, सक्रियता और कई बार तो अपना आत्मविश्वास तक खो बैठते हैं। स्थूलता वृद्धावस्था के शीघ्र आमंत्रण का कारण बनती है।

मोटापा बढ़ने का कारण

स्थूलता या मोटापा बढ़ाने में जीवन शैली की प्रमुख भूमिका होती है। इस रोग के बढ़ने के कई कारण होते हैं। चरक संहिता, सूत्रस्थान-२१/३ के अनुसार अधिक तृप्तिकारक, भारी, मीठे, शीतल, चिकनाईयुक्त पदार्थों का सेवन करने से, व्यायाम या परिश्रम न करने से, दिन में सोने से-विशेषकर दोपहर में भोजन करने के तुरंत बाद तथा आनुवांशिक कारणों से व्यक्ति मोटापे का शिकार बनता है। इससे शरीर में अनावश्यक रूप से वसा इकट्ठी हो जाती है और शरीर थुलथुला बनकर अनेकानेक रोगों का शिकार बन जाता है। आज की इस सर्वाधिक भयावह एवं नूतन व्याधि-मेदोवृद्धि अर्थात मोटापे की समस्या का समाधान खोज रहे पोषणविज्ञानियों एवं चिकित्साशास्त्रियों ने इसके तीन प्रमुख कारण बताए हैं-(१) सहज या आनुवांशिक कारण (२) आहार-विहारजन्य और (३) हॉर्मोन-असंतुलन। सहज कारण वह है जो जाति विशेष के अनुसार अथवा आनुवंशिक गुणों के आधार पर पीढ़ी-दर पीढ़ी पाया जाता है। ऐसे लोगों की संख्या अँगुलियों पर गिनने लायक ही होती है।

मोटापे का प्रमुख कारण वस्तुतः आधुनिक आरामदायक जीवनशैली का खान-पान (जंकफूड वाला) व रहन-सहन है। अत्यधिक पौष्टिक आहार का सेवन, कुछ न कुछ सदैव खाते-पीते रहने की आदत, दिन में सोना एवं शारीरिक श्रम या व्यायाम का अभाव मोटापे के प्रधान कारण हैं। अधिक मात्रा में मक्खन, मलाई, दूध, घी, पनीर का सेवन, मद्यपान, मांसाहार, कोल्ड ड्रिंक्स, फास्टफूड, बर्गर, पीजा, आइसक्रीम, पेट्रीज, सेंडविच, कॉफी, बिस्किट्स, चॉकलेट, केक, मेवा एवं मिठाइयाँ आदि के अधिक एवं बार-बार सेवन करने से शरीर में धीरे-धीरे अतिरिक्त चरबी जमा होने लगती है। आज की टी. वी. संस्कृति ने इस रोग में और भी वृद्धि की है। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति शारीरिक श्रम नहीं करते, व्यायाम आदि से बचते हैं और गरिष्ट आहार ग्रहण करते हैं, उनका शरीर भी अतिरिक्त ऊर्जा का संचय वसा के रूप में करता है। फलस्वरूप यही वसा या मेद पेट, कमर, गरदन, गाल आदि में जमा होकर उन्हें भारी व बेडौल बना देती है।

हॉर्मोन-असंतुलन भी मोटापा बढ़ाता है। अंतःस्त्रावी ग्रंथियों जैसे-थाइराइड ंथि, पिच्यूटरी ग्रंथि, एड्रीनल ग्रंथि आदि से उत्सर्जित होने वाले हॉर्मोन सायनों की विकृति भी एक ऐसी जटिल समस्या है, जो स्थूलता उत्पन्न करती है। इसके अतिरिक्त अनेक मानसिक एवं भावनात्मक कारण भी ऐसे हैं, जो व्यक्ति के हॉर्मोनल एवं चयापचयी संतुलन को बिगाड़ देते हैं। बाल्यावस्था अथवा युवावस्था में मानसिक गड़बड़ी, अकेलापन, निराशा, अतृप्त आकांक्षाएँ आदि भावनात्मक कारणों से भी व्यक्ति इसका शिकार बनता है। मानसिक तनाव मोटापा बढ़ाने में अहम् भूमिका निभाता है। कई बार स्टीरॉयड प्रकृति की औषधियाँ भी शरीर को स्थूल बना देती हैं।

मोटापा कम करने की प्रचलित विधियाँ

स्थूलता मिटाने, मोटापा घटाने और शरीर को छरहरा एवं सुडौल बनाने के लिए योग, व्यायाम एवं जिम से लेकर आहार-शास्त्रियों एवं चिकित्सा-विज्ञानियों द्वारा कितने ही नुस्खे एवं औषधि-उपचार प्रचलित-प्रसारित हैं। लोग इन्हें आजमाते भी हैं और कुछ दिनों में वजन भी कम कर लेते हैं, लेकिन थोड़े दिनों बाद जरा-सी ढील देते ही वही पुरानी स्थिति फिर से आ

जाती है। कभी-कभी तो स्थिति और भी अधिक भयावह हो जाती है, जब व्यक्ति पहले की अपेक्षा अधिक मोटा हो जाता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि हम कृत्रिम साधनों से अपने शारीरिक वजन को, स्थूलता को नियंत्रित करने का प्रयत्न करते हैं। यदि उचित एवं संतुलित खान-पान, रहन-सहन की आदतों और शारीरिक श्रम, व्यायाम आदि का दैनिक जीवन में समावेश कर लिया जाए, तो कोई कारण नहीं कि मोटापे से आसानी से न बचा जा सके।

मोटापा घटाने एवं वजन कम करने के लिए प्रायः डायटिंग या उपवास का सहारा लिया जाता है। महिलाओं में यह प्रचलन विशेष रूप से देखने को मिलता है। लेकिन इस संदर्भ में पोषण विज्ञानियों एवं चिकित्साशास्त्रियों द्वारा किए गए शोध-निष्कर्ष बताते हैं कि छरहरा बनने की इस विधा को अपनाने से प्रायः लाभ कम, हानि ज्यादा होती है। लंबे समय तक डाइटिंग करते रहने से ओस्टियोपोरोसिस जैसी स्वास्थ्य समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में अतिस्थूलता अथवा मोटापा दूर करने के लिए 'लिपोसक्शन' नामक उपचार प्रक्रिया का आश्रय लिया जाता है। इस विधि में डायथर्मी प्रक्रिया द्वारा अथवा एक मशीन विशेष द्वारा पेट के नीचे जमा हुई वसा की मोटी परत को चूस या सोख लिया जाता है। इसके अलावा सेलोथर्म उपचार, डीप हीट उपचार या गरम वाष्प स्नान आदि का भी प्रयोग किया जाता है, पर इन सबके रिबाउंड प्रभाव ज्यादा ही होते हैं व फिर से मोटापा आ घेरता है।

यज्ञोपचार

भारतीय आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली में इस महारोग से पिंड छुड़ाने और पूर्ण स्वस्थ जीवन जीने के कितने ही उपाय-उपचारों का वर्णन है। इसमें आहार-विहार के संयमन के साथ-साथ क्वाथ एवं चूर्ण से लेकर रसायन योगों के सेवन तक का विधान सम्मिलित है। नूतन अनुसंधानों में यज्ञ चिकित्सा एवं क्वाथ चिकित्सा सर्वाधिक सफल उपचार सिद्ध हुए हैं। सबसे पहले यहाँ पर मोटापानाशक विशिष्ट हवन सामग्री का वर्णन किया जा रहा है।

मोटापानाशक विशिष्ट हवन सामग्री

इसमें निम्नलिखिति चीजें समभाग में मिलाई जाती हैं-

1. गिलोय	2. बायविडंग	3. नागरमोथा
4. चव्य	5. चित्रक	6. अरणी (अग्निमंथ)
7. त्रिफला (आँवला, हरड़, बहेड़ा-बराबर मात्रा में)		
8. त्रिकटु (सोंठ, पिप्पली, कालीमिर्च-बराबर मात्रा में)		
9. विजयसार	10. कालीजीरी	11. लोध्र
12. अगर	13. नीम की पत्ती	14. आम की छाल
15. अनार की छाल	16. पुनर्नवा	17. बाकुची के बीज
18. गुग्गुल	19. लोबान	20. मोचरस
21. जामुन के पत्ते व बीज	22. अर्जुन के फल व छाल	
23. कूठ	24. प्रियंगु	25. चंदन
26. नागकेसर	27. दोनों तरह की तुलसी (रामा व श्यामा)	
28. एरंड मूल	29. अपामार्ग (चिरचिटा या ओंगा)	
30. तेजपत्र	31. मालकांगनी (ज्योतिष्मती) के बीज	
32. सर्पगंधा	33. जटामांसी	34. ब्राह्मी
35. मुलहठी	36. बच	37. शंखपुष्पी
38. पिप्पलामूल	39. पटोलपत्र	40. देवदार
41. निर्गुंडी	42. जौ	43. कपूर
44. सुगंधबाला	45. बिल्व	46. दालाचीनी।

उपरोक्त सभी ४६ चीजों को बराबर मात्रा में लेकर साफ-स्वच्छ करके कूट-पीसकर उनका दरदरा जौकुट पाउडर बना लेते हैं और उसे एक डिब्बे में सुरक्षित रख लेते हैं। इस डिब्बे पर 'मोटापानाशक विशिष्ट हवन सामग्री-नम्बर (२)' का लेबल चिपका देते हैं। इसी तरह पूर्व वर्णित 'कॉमन हवन सामिग्री-नम्बर (१)' पहले से तैयार रखते हैं। इसमें खाँडसारी गुड़, गोघृत, जौ आदि भी मिले होते हैं। इसे अलग डिब्बे में रखा जाता है और उस पर 'कॉमन हवन सामग्री-नम्बर (१)' का लेबल लगा दिया जाता है।

हवन करते समय ५० ग्राम कॉमन हवन सामग्री-नम्बर (१) तथा ५० ग्राम 'विशिष्ट हवन सामग्री-नम्बर (२)' को लेकर आपस में अच्छी तरह मिला लेते हैं, तदुपरांत सूर्य गायत्री मंत्र से कम से कम चौबीस आहुतियाँ अवश्य देते हैं। एक सौ आठ आहुतियाँ दे सकें, तो और भी अच्छा है। इस क्रम को नित्य प्रातः काल नियमित रूप से कुछ महीनों तक योग-व्यायाम के साथ करते रहने से शरीर की चरबी घटने लगती है। शरीर की मांसपेशियाँ, तंत्रिका तंतु, हृदय, फेफड़े आदि अंग-अवयव सक्रिय हो उठते हैं और अपनी पूर्ण क्षमता से कार्य करने लगते हैं।

हवनोपचार के साथ-साथ निम्नलिखित 'मेदनाशक क्वाथ' का भी सेवन करना चाहिए। इस क्वाथ का सेवन करने से अतिस्थूलकाय व्यक्ति भी सामान्य अवस्था में आ जाता है। जिनकी तोंद बढ़ी हुई है, उनके लिए तो यह सर्वोत्तम उपचार है।

मेंदनाशक क्वाथ

इसमें निम्नलिखित चीजें बराबर मात्रा में मिलाई जाती हैं-

1. आँवला 2. हरड़ 3. बहेड़ा 4. गिलोय 5. नागरमोथा 6. तेजपत्र 7. चित्रक 8. विजयसार 9. हलदी 10. अपामार्ग-चिरचिटा के बीज।

उपरोक्त सभी १० चीजों को समभाग में लेकर कूट-पीसकर उनका जौकुट पाउडर बना लेते हैं और उसे सुरक्षित डिब्बे में रख लेते हैं। क्वाथ बनाने की सरल विधि यह है कि इस पाउडर में से पाँच चम्मच (१५ ग्राम) पाउडर निकालकर आधा लीटर पानी में स्टील के एक भगोने में डालकर रात में रख देते हैं। सुबह इसे चूल्हे या गैस बर्नर पर मंदाग्नि पर चढ़ाकर क्वाथ बनने के लिए रख देते हैं। उबलते-उबलते जब चौथाई अंश पानी शेष बचता है, तब उसे उतारकर ठंडा होने पर महीन कपड़े में निचोड़कर छान लेते हैं। क्वाथ का आधा भाग सुबह ८ से १० बजे के बीच खाली पेट एवं आधा भाग शाम को ४ से ६ बजे के बीच सेवन करते हैं। क्वाथ पीते सयम उसमें एक चम्मच शहद अवश्य मिला लेना चाहिए। पथ्य-परहेज के साथ नित्य नियमित रूप से इस क्वाथ को शहद के साथ सेवन करने से महीने भर में यह अपना प्रभाव दिखाने लगता है। अनावश्यक स्थूलता घटने लगती है और व्यक्ति कुछ ही दिनों में दुबला हो जाता है। क्वाथ का सेवन भोजन करने से कम से कम एक घंटे पूर्व करना चाहिए।

स्थूलता-मोटापा या बढ़ी हुई तोंद से त्रस्त जो लोग पथ्य-परहेज का अक्षरशः पालन नहीं कर सकते, उनके लिए निम्नांकित चूर्ण या पाउडर बहुत ही लाभकारी सिद्ध होता है। क्वाथ के साथ या अकेले ही इसका सेवन करने से भोजन करने के बाद जो पोषक तत्त्व पहले वसा या चरबी में बदलकर मोटापा बढ़ा रहे थे, वह प्रक्रिया रुक जाती है और उनके स्थान पर रस-रक्त की अभिवृद्धि होने लगती है।

स्थौल्यहर पाउडर

इसमें निम्नलिखित चीजें मिलाई जाती हैं-

1. सोंठ	- 10 ग्राम	2. पीपल	-10 ग्राम
3. काली मिर्च	- 10 ग्राम	4. पिप्पलामूल	-10 ग्राम
5. आँवला	- 10 ग्राम	6. हरड़	-10 ग्राम
7. बहेड़ा	- 10 ग्राम	8. चव्य	-10 ग्राम
9. चित्रकमूल	- 10 ग्राम	10. कालीजीरी	-10 ग्राम
11. बाकुची-बीज	- 10 ग्राम	12. अपामार्ग के बीज	-10 ग्राम
13. बायविडंग	- 10 ग्राम	14. सेंधा नामक	-10 ग्राम
15. काला नामक	- 10 ग्राम	16. सादा नामक	-10 ग्राम
17. यवक्षार	- 10 ग्राम	18. कांतलौह भस्म	-100 ग्राम

उपरोत्त सभी १८ चीजों को एक साथ घोट-पीसकर कपड़छन करके एयर टाइट शीशे के बरतन या प्लास्टिक के डिब्बे में सुरक्षित रख लेना चाहिए। इसमें से नित्य नियमित रूप से आधा ग्राम से एक ग्राम चूर्ण सुबह व आधा ग्राम से एक ग्राम (आधा चम्मच) शाम को, दो चम्मच शहद में अच्छी तरह मिलाकर चाट लें। शहद के अभाव में थोड़े जल के साथ भी ले सकते हैं। कम से कम ६ माह तक सेवन करने से उपर्युक्त प्रतिफल सामने आने लगते हैं।

तोंद घटाने एवं मोटापा दूर करने के लिए योगासन, व्यायाम, खेलकूद, टहलना, बागवानी आदि का क्रम दैनिक जीवन में अवश्य सम्मिलित रहना चाहिए। वहीं दूसरी ओर पथ्य-परहेज का भी पालन करना चाहिए, विशेषकर तब, जब उपरोक्त हवनोपचार एवं क्वाथ सेवन चल रहा

हो। उन दिनों जौ की रोटी, दलिया, पुराना बाँसी चावल, कोदों, साँवां, नीवार, प्रियंगु, कुलथी, चना, मसूर, मूँग, अरहर दाल, खील, शहद, मक्खन निकला हुआ मट्ठा, बैंगन का भुरता, कच्चा केला, परवल, तोरई, लौकी, पत्तागोभी, चौलाई, पालक, मेथी, अदरक, खीरा, ककड़ी, मूलीपत्ता का सलाद, उबली सब्जियाँ, हलका सेंधा नमक, अंगूर, नारंगी आदि लिए जा सकते हैं। भारी, गरिष्ट, मीठे, चिकनाईयुक्त एवं तले-भुने पदार्थ अपथ्य हैं। इनके सेवन से बचना चाहिए। भोजन करने से आधा घंटा पहले पानी पीना, भोजन के दौरान न पीकर आधा घंटे बाद पीना मोटापे में बहुत लाभकारी है।

२. हाइपोथाइरॉयडिज्म की यज्ञ चिकित्सा

आधुनिक जीवनशैली, बढ़ते तनाव, गलत खानपान एवं एलोपैथिक औषधियों के कुप्रभाव से कई बार गले में स्थित अंतःस्रावी थाइरॉयड ग्लैंड प्रभावित हो जाती है और थाइरॉक्सिन एवं ट्राइआयडोथाइरोनिन नामक हार्मोनों का स्राव पर्याप्त मात्रा में नहीं हो पाता। इसके कारण हाइपोथाइरॉयडिज्म एवं गलगंड जैसी बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसके कारण भी मोटापा बढ़ता है। पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ अधिकतर इस रोग की शिकार बनती हैं। इससे गले की सूजन, शारीरिक शोथ, स्थूलता, आलस्य, सुस्ती, किसी काम में मन न लगना, खीज, चिड़चिड़ापन जैसी कितनी ही शारीरिक, मानसिक बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में पथ्य-परहेज के साथ निम्नोक्त हवन सामग्री के साथ प्रतिदिन नियमित रूप से हवन करते रहने से न केवल उक्त परेशानियों से छुटकारा मिलता है, वरन् हाइपोथाइरॉयडिज्म को भी पूरी तरह निर्मूल किया जा सकता है, जो अन्यान्य चिकित्सा पद्धतियों से संभव नहीं हो पाता है।

हाइपोथाइरॉयडिज्म की विशिष्ट हवन सामग्री

इसमें निम्नलिखित वनौषधियाँ मिलाई जाती हैं-

1. काँचनार छाल -200 ग्राम
2. शरपुंखा -100 ग्राम
3. गिलोय - 100 ग्राम
4. पुनर्नवा -100 ग्राम
5. भारंगी -100 ग्राम
6. सारिवा -100 ग्राम
7. शतावर -100 ग्राम
8. अश्वगंधा -100 ग्राम

9. कायफल -100 ग्राम 10. बरुण -100 ग्राम
11. अर्जुन -100 ग्राम 12. अशोक -100 ग्राम।

उपरोक्त वनौषधियों को निर्धारित मात्रा में लेकर उनका जौकुट पाउडर बना लेते हैं और नित्य सुबह-शाम नियमित रूप से सूर्य गायत्री मंत्र से हवन करते हैं। हवन करते समय पूर्व वर्णित 'कॉमन हवन सामग्री-नं॰१' को भी बराबर मात्रा में मिलाकर तब हवनोपचार करते हैं। हवन के साथ ही उपरोक्त विशिष्ट हवन सामग्री में वर्णित बारहों औषधियों से निर्मित पाउडर को क्वाथ रूप में भी रोगी को सेवन कराया जाना जरूरी है। काढ़ा बनाने के लिए पाँच चम्मच उक्त पाउडर को आधा लीटर पानी में शाम को स्टील के भगोने में भिगो देते हैं और सुबह उसे मंद आंच पर क्वाथ बना लेते हैं। क्वाथ की आधी मात्रा सुबह एवं आधी मात्रा शाम को रोगी को सेवन कराते हैं। हवनोपचार एवं क्वाथ सेवन से हाइपोथाइरॉयडिज्म को न केवल नियंत्रित किया जा सकता है, वरन् इसे पूरी तरह से जड़ से मिटाया जा सकता है। काँचनार पेड़ की ताजी छाल को टुकड़े-टुकड़े करके उसे पान की तरह चबाते और चूसते रहने से भी यह रोग ठीक हो जाता है। मुँह में बनने वाले लार को घुटकते रहना चाहिए।

३. प्रमेह रोग की यज्ञोपचार प्रक्रिया

प्रमेह रोग प्रायः जिन कारणों से होता है उनमें प्रमुख हैं-एक स्थान पर सुख से बैठे रहना, आवश्यकता से अधिक सोना, मांसाहार, नवीन अन्न तथा नया पान खाना, गुड़-शक्कर से बने मीठे पदार्थ अधिक खाना तथा कफकारक पदार्थों का सेवन करना। इसका सामान्य लक्षण पेशाब की अधिकता तथा उसका गंदलापन होना अर्थात् पेशाब के साथ चिकना पदार्थ-एल्ब्यूमिन (प्रोटीन) का निकलना है। यही प्रमेह चिकित्सा न होने पर कालांतर में एक दूसरे रूप मधुमेह में परिवर्तित हो जाता है, जिसे 'डायबिटीज' कहते हैं। आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ 'बंगसेन' में उल्लेख है-

सर्व एव प्रमेहास्तु कालेना प्रकारिणः।
मधुमेहत्वमायान्ती तदाऽसाध्याभवन्ति हि॥

आयुर्वेद ग्रंथों में बीस प्रकार के प्रमेह बताए गए हैं। खान-पान, आहार-विहार संतुलित रखने एवं संयमित जीवन जीने से तथा यज्ञोपचार करने से सभी प्रकार के प्रमेह रोगों एवं मधुमेह से पूरी तरह छुटकारा पाया जा सकता है और स्वस्थ एवं दीर्घजीवन का लाभ उठाया जा सकता है। यहाँ पर प्रमेह अर्थात् पेशाब के साथ चिकने पदार्थ का स्वत: निकलना एवं डायबिटीज या शुगर (मधुमेह) के लिए अलग-अलग यज्ञ चिकित्सा का वर्णन किया जा रहा है।

प्रमेह रोग की विशेष हवन सामग्री

इसके लिए निम्नलिखति औषधियों को बराबर मात्रा में लेकर उनका जौकुट पाउडर बनाया जाता है-

1. तालमखाना
2. मूसली-सफेद
3. मूसली-काली
4. गोक्षरू-बड़ा
5. कौंच बीज
6. सुपारी
7. बबूल के बीज या फूल
8. शतावर
9. छोटी इलायची
10. इमली के बीज
11. अश्वगंधा
12. सालममिश्री
13. बला के बीज अर्थात् बीजबंद
14. गोरखमुंडी
15. दारुहलदी
16. देवदार
17. आँवला
18. हरड़
19. बहेड़ा
20. नागरमोथा
21. बरगद की छाल
22. जामुन के बीज की मींगी
23. हलदी
24. खदिर
25. अग्निमंथ
26. भुईआमला।

इन सभी २६ चीजों को बराबर मात्रा में एकत्र करके हवन सामग्री बनाई जाती है। हवन करते समय उक्त २६ चीजों से निर्मित हवन सामग्री में पहले से तैयार की गई 'कॉमन हवन सामग्री नम्बर-१' को भी बराबर मात्रा में मिला लेना चाहिए। इसी में जौ, तिल, शक्कर एवं घृत मिलाकर नित्यप्रति हवन करना चाहिए। हवन करने का मंत्र-सूर्य गायत्री मंत्र ही रहेगा।

उपरोक्त २६ चीजों से निर्मित हवन सामग्री के जौकुट पाउडर की कुछ मात्रा को घोट-पीस करके कपड़छन कर लिया जाता है और एक अलग डिब्बे में रख लिया जाता है। हवन करने के पश्चात् इस पाउडर में से सुबह-शाम एक-एक चम्मच चूर्ण मलाई या घी तथा शक्कर के साथ प्रमेह पीड़ित व्यक्ति को नियमित रूप से खिलाते रहने से वह स्वस्थ हो जाता है।

पाउडर के स्थान पर यदि इस चूर्ण की गोली बनाना चाहें, तो इसे और अधिक सूक्ष्म रूप में कपड़छन कर लें तथा घृतकुमारी का रस मिलाकर चने के बराबर छोटी-छोटी गोलियाँ बना कर सुखा लें। सुबह और शाम भोजन से पहले दो से चार गोली तक जल के साथ निगल जाएँ। थोड़े दिनों में ही प्रमेह से छुटकारा मिल जाएगा। यह गोली सभी प्रकार के प्रमेह रोगों में लाभप्रद सिद्ध हुई है।

समिधा-जहाँ तक हो सके, हवन के लिए समिधा आम, पाकर, बरगद, पीपल आदि की लेनी चाहिए। यदि उदुंबर अर्थात् गूलर की समिधा ली जा सके, तो अत्युत्तम है। इस संदर्भ में देवी भागवत् महापुराण के एकादश स्कंध के चौबीसवें अध्याय के २८-२९ वें श्लोक में स्पष्ट उल्लेख है-

औदुंबर समिद्धोमादतिमेहः क्षयं व्रजेत्।
प्रमेहं शमयेद्धुत्वा मधुनेक्षुरसेनवा ॥

अर्थात् औदुंबर या गूलर की समिधाओं से हवन किया जाए, तो प्रमेह नष्ट होता है। इसी तरह मधु-शहद अथवा ईख के रस या शर्बत से हवन करने पर भी प्रमेह की शांति होती है।

प्रमेह रोगी को पथ्य-परहेज का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। मिर्च, मसाला, खटाई, अत्यंत मीठे पदार्थ, भारी पदार्थ खाने से बचना चाहिए, साथ ही औषधि सेवनकाल में यथासंभव ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

४. डायबिटीज या शुगर अर्थात् मधुमेह की यज्ञ चिकित्सा

जिस रोग में मूत्र विसर्जन शर्करायुक्त मधुर या शहद के समान मीठा हो, वह 'मधुमेह' रोग कहलाता है। आयुर्वेद ग्रंथों में सभी प्रकार के प्रमेहों को कालांतार में मधुमेह में परिणत हो जाने की बात लिखी है, यथा-"**कालेनोपोसेता सर्वे मद्यन्ति मधुमेहिनाम्।**" आधुनिक चिकित्सा विज्ञानी इसे 'डायबिटीज' या शुगर की बीमारी' कहते हैं। इसका प्रमुख कारण अनियमित आहार-विहार, खान-पान में गड़बड़ी माना जाता है। दूध, दही, घी, मक्खन, चीज, गुड़, शक्कर आदि पदार्थ एवं इनसे बनी हुई मिठाइयों का अधिक सेवन, व्यायाम आदि शारिरिक श्रम का अभाव, आरामतलबी, दिन में शयन, मल-मूत्र, एवं

वायु आदि वेगों को रोकना, अत्यधिक उपवास करना, रात्रि जागरण, चिंता, भय, शोक, उद्विग्नता, अत्यधिक मानसिक तनाव आदि डायबिटीज अर्थात् मधुमेह का कारण बनते हैं। शक्ति से अधिक परिश्रम करना, प्रमेह की समय रहते चिकित्सा न कराना भी मधुमेह की उत्पत्ति अथवा वृद्धि का कारण बनता है। कइयों में आनुवंशिकता भी रोगवृद्धि का एक मूल कारण होती है।

यों तो एलोपैथी चिकित्सा में डायबिटीज में खाने-पीने की अनेक औषधियों से लेकर कृत्रिम इन्सुलिन के इंजेक्शन तक प्रचलित हैं, परंतु प्रायः देखा यही जाता है कि इनसे चिरस्थायी समाधान नहीं मिलता। दवा बंद करने एवं परहेज बिगड़ने पर रोग पुनः उभर आता है और अनेकानेक जटिलताएँ पैदा हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में यज्ञ चिकित्सा एक ऐसी निरापद एवं प्रभावी उपचार प्रक्रिया है, जिसके द्वारा डायबिटीज को पूरी तरह निर्मूल किया जा सकता है।

डायबिटीज की विशिष्ट हवन सामग्री

इसके लिए जो हवन सामग्री तैयार की जाती है, उसमें निम्न औषधियाँ बराबर मात्रा में मिलाई जाती हैं-

1. हलदी
2. निर्मली बीज
3. कालमेघ
4. सप्तरंगी
5. गिलोय
6. खस
7. लाजवंती (छुईमुई) के बीज
8. पुनर्नवा
9. शिलाजीत
10. कूठ-कड़वी
12. कुटज
13. मेथीदाना
14. आम के गुठली की मींगी
15. अतीस-कड़वी
16. दारुहलदी
17. रसौत
18. हरड़
19. कैथ का गूदा
20. खुरासानी अजवायन
21. कुटकी
22. विजया (भाँग)
23. जामुन की गुठली
24. विजयसार (बिजासार)
25. करेला का फल एवं पत्र
26. गुड़मार
27. मेढ़ासिंगी
28. उलटकंबल
29. गूलर के फल
30. गूमा या द्रोणपुष्पी
31. कुन्दरू।

उक्त सभी ३१ औषधियों को कूट-पीसकर जौकुट कर लिया जाता है और उन्हें विशिष्ट हवन सामग्री क्र.-२ का लेबल लगे एक डिब्बे में

सुरक्षित रख लिया जाता है। हवन करते समय पहले से तैयार 'कॉमन हवन सामग्री नम्बर-१' को भी बराबर मात्रा में मिलाकर तब सूर्य गायत्री मंत्र से हवन करते हैं।

समिधाएँ-डायबिटीज में समिधाएँ वही रहेंगी जो प्रमेह के लिए निर्धारित हैं अर्थात गूलर, पाकर, बरगद, पीपल या आम की सूखी समिधाएँ सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती हैं।

उपरोक्त यज्ञ चिकित्सा के साथ ही साथ निम्नांकित बटी या गोली बना कर ली जाय, तो रोग जल्दी ठीक होता है।

डायबिटीज नाशक बटी

इसमें निम्नांकित चीजें मिलाई जाती हैं-

1. हलदी	- 100 ग्राम	2. निर्मली बीज	- 100 ग्राम
3. कालमेघ	- 100 ग्राम	4. सप्तरंगी	- 100 ग्राम
5. गिलोय	- 100 ग्राम	6. खस	- 100 ग्राम
7. लाजवंती-बीज	- 100 ग्राम	8. पुनर्नवा	- 100 ग्राम
9. शिलाजीत	- 100 ग्राम	10. बिल्व	- 100 ग्राम
11. कूठ (कडुई)	- 100 ग्राम	12. कुटज	-100 ग्राम
13. मेथी	- 100 ग्राम	14. अतीस	-100 ग्राम
15. आमगिरी गुठली.	- 50 ग्राम	16. जामुन गुठली	-50 ग्राम
17. दारुहलदी या रसोत	- 100 ग्राम	18.कैथ का गूदा (फल)	-50 ग्राम
19. कुटकी	- 100 ग्राम	20. विजया (भाँग पत्ती)	-50 ग्राम
21. खुरासानी अजवायन	- 25 ग्राम	22. ब्राह्मी	-100 ग्राम
23. शंखपुष्पी	- 100 ग्राम	24. शतवार	-100 ग्राम
25. गोरखमुंडी	- 100 ग्राम	26. मीठी बच	-100 ग्राम
27. गूमा	- 100 ग्राम	28. कुन्दरू	-100ग्राम।

बटी बनाने की विधि

उपर्युक्त सभी २८ औषधियों को निर्धारित मात्रा में लेकर कूट-पीसकर कपड़छन पाउडर तैयार कर लेते हैं। इसके बाद सभी को एक साथ मिलाकर अच्छी तरह खरल करके एकरस कर लेते हैं। तदुपरांत घृतकुमारी के रस में आटे की तरह गूँदकर चने के बराबर गोलियाँ बनाकर सुखा लेते हैं। डायबिटीज से पीड़ित व्यक्ति को सुबह-शाम एक-एक गोली जल के साथ नित्य खिलाते हैं। पथ्य-परहेज के साथ इसे लेते रहने से रोग क्रमशः घटता हुआ चला जाता है। पैंक्रियाज (अग्नाशय) को सक्रिय करने में यह गोली महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शरीर का यही वह अंग है, जहाँ इंसुलिन बनता है। इस तरह हवन और औषधि सेवन दोनों मिलाकर रोगी को रोगमुक्त बना देते हैं।

पथ्य-परहेज-डायबिटीज में परहेज करना आवश्यक है। इसमें मीठा, मिठाई, अधिक मीठे फल, चावल, आलू नहीं खाना चाहिए। हलके मीठे फल-जैसे सेव, मौसमी, अनार, पपीता, अमरूद आदि खा सकते हैं, किंतु यदि रक्त में शुगर की मात्रा अधिक बढ़ी हो, तो इन्हें भी नहीं खाना चाहिए। करेला, कुन्दरू, जामुन, मेथी, नीम तथा गेहूँ व चने से मिश्रित आटे की रोटी खाना चाहिए। इस तरह उपर्युक्त उपचार उपक्रम अपनाते हुए आहार-विहार के संयम द्वारा मधुमेह से पूरी तरह छुटकारा पाया व स्वस्थ जीवन जिया जा सकता है।

अध्याय-७

वातव्याधि-निवारण की यज्ञोपचार प्रक्रिया

★★★★★★★★★★

वातव्याधिः सामान्य विवरण

चरक संहिता के अनुसार-"**अशीतिर्वात विकारः**" अर्थात वात विकार अस्सी प्रकार के होते हैं। यह सभी वातव्याधियाँ शरीरस्थ पाँच प्राणों अर्थात् प्राण, उदान, समान, व्यान तथा अपान के कुपित होने, अपने मार्ग से हटकर विपरीत मार्ग में गमन करने, क्षीण या वृद्ध होकर विकृत रूप धारण करने आदि कारणों से उत्पन्न होती हैं। प्राणों में अर्थात् वायु में विकृति पैदा करने के मूल कारणों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि अत्यंत रूखे और शीतल पदार्थ खाने से, हलके अन्न, कड़वे, कसैले और चटपटे पदार्थ अत्यधिक खाने से, कम खाने से, अत्यधिक उपवास करने से, रात्रि में अधिक जागने से, अत्यधिक वमन-विरेचन करने से, विषम उपचार करने से, अत्यधिक रक्तस्राव होने से, अधिक कूदने-तैरने से, अधिक पैदल चलने से, अत्यधिक व्यायाम करने से, अधिक परिश्रम करने से, शरीरगत रस, रक्त आदि धातुओं के क्षीण होने से, अधिक चिंता या शोक करने से, किसी रोग के अधिक दिनों तक बने रहने के कारण कृशकाय होने से, मर्म स्थान में चोट लगने से, कष्टदायक शैय्या पर सोने से, अत्यधिक क्रोध करने से, भयभीत होने से, आमदोष उत्पन्न होने से, मल-मूत्र आदि वेगों को रोकने से वायु प्रकुपित होकर शरीर के खाली स्रोतों या छिद्रों में भर जाती है और सर्वांगव्यापी अथवा एकांगव्यापी अनेक प्रकार के वात विकार उत्पन्न करती है।

आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार सर्वांगवात उसे कहते हैं, जब प्रकुपित वात सारे शरीर की शिराओं एवं स्नायुओं को सुखाकर पूरे शरीर को चेष्टारहित अर्थात् शून्य बना देता है और सभी अंग-प्रत्यंगों में पीड़ा होती है। इसके विपरीत जब प्रकुपित वायु शरीर के दायें या बायें किसी एक भाग पर आक्रमण करके उस भाग की शिराओं तथा स्नायुओं को सुखाकर एक हाथ या पैर को संकुचित कर देती है और पीड़ित अंग में सुई चुभाने जैसा दरद और शूल होता है, तो उसे एकांग वात, पक्षाघात या अर्द्धांग कहते हैं। इसमें एक तरफ का आधा शरीर शून्य हो जाता है। इसे फॉलिज भी कहते हैं। 'अर्दितवात' या लकवा इससे भिन्न होता है।

मूर्द्धन्य आयुर्वेदाचार्यों के अनुसार वातव्याधि का आक्रमण प्राय: वर्षा ऋतु में, दिन और रात्रि के तीसरे प्रहर में तथा अन्न पचने पर एवं शिशिर ऋतु में और ठंडी के दिनों में अधिक होता है। कारण और स्थान भेद के कारण वात रोगों की भिन्नता होती है।

प्रमुख वात व्याधियाँ

यों तो वात व्याधियाँ कई तरह की होती हैं, किंतु यहाँ पर उन्हीं वात व्याधियों की यज्ञ चिकित्सा का वर्णन किया जा रहा है, जिनसे सर्वाधिक संख्या में लोग प्रभावित एवं पीड़ित रहते हैं। ये हैं-

१. कटि स्नायुशूल या गृध्रसी, जिसे आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में 'साइटिका' के नाम से जाना जाता है। २. आमवात या संधिशोथ-'रिह्यूमेटाइड आर्थ्राइटिस' ३. संधिवात या जोड़ों का दरद-'ओस्टिओ आर्थ्राइटिस' ४. घुटने का शोथ एवं दरद-'सनोवाइटिस आफनी।' आयुर्वेद में इसे क्रोष्टुशीर्ष कहते हैं। ५. गठियावात या वातरक्त-'गाउट' ६. चेहरे का लकवा या अर्दित वात-'फेशियल पैरालिसिस' ७. पक्षाघात, अर्द्धांग या फॉलिज-'हेमिप्लेजिआ' ८. अधरांगघात-'पैराप्लेजिआ' जिसमें दोनों पैर लकवाग्रस्त हो जाते हैं।

१. साइटिका का यज्ञोपचार-

आयुर्वेद में वर्णित 'गृध्रसी' रोग को ही एलोपैथी में 'साइटिका, कहते हैं। बोलचाल की भाषा में यह कमर, कूल्हे, जाँघ व पंजे का वात रोग, लँगड़ी का दरद, वायुपीड़ा, कुलंग का दरद आदि नामों से जाना जाता है।

इस रोग का प्रमुख कारण रीढ़ की हड्डियों के बीच की कशेरुकाओं के मध्य की डिस्क का खिसक जाना माना जाता है, जिसे 'स्लिप डिस्क' कहते हैं। इसके कारण स्पाइनल कॉर्ड-मेरुरज्जु से निकलकर पैर तक जाने वाली 'सियाटिका नर्व' पर आस-पास की अस्थियों का अधिक दबाव पड़ता है, जिससे कमर, कूल्हे व पैर का दरद होता है। रीढ़ की हड्डी में संक्रमण, हड्डियों की अभिवृद्धि, शोथ आदि कारणों से भी साइटिका रोग हो जाता है।

यह व्याधि कमर से लेकर जाँघ, घुटने तथा पैर के टखने तक फैली होती है। इसमें कूल्हे की संधि, कमर, पीठ, उरु, जंघा एवं पैर में अर्थात कमर से लेकर एड़ी तक के अंगों में जकड़न तथा सुई चुभाने जैसी पीड़ा होती है। दरद कभी हलका तो कभी तेज होता है, जिससे रोगी को खड़ा होना तक मुश्किल हो जाता है। दरद किसी समय पैर में और घुटने के पिछले तरफ से होता हुआ टखने तक जाता है, जिसके कारण चलने में लँगड़ापन होता है और जानुसंधि के पीछे एवं जाँघ की पेशियों को छूने तक में असह्य दरद अनुभव होता है। झुकने, छींकने, खाँसने आदि के समय दरद बढ़कर और तीव्र हो जाता है। इस रोग में दरद के साथ-साथ अंगों में बार-बार स्पंदन होता रहता है। साइटिका रोग प्रायः चालीस-पचास वर्ष की आयु वालों को होता है और प्रायः एक ही ओर होता है, दोनों ओर कभी-कभी ही देखा जाता है।

साइटिका की विशिष्ट हवन सामग्री

साइटिका के उपचार के लिए जो हवन सामग्री तैयार की जाती है, उसमें निम्नलिखित वनौषधियाँ मिलाई जाती हैं-

1. ग्वारपाठे की जड़ 2. सलई की गोंद 3. सलई की छाल
4. निर्गुंडी 5. पुनर्नवा 6. अश्वगंधा
7. चित्रक 8. नागरमोथा 9. मुलहठी
10. दशमूल अर्थात् सरिवन, पिठवन, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोक्षरू, बेल, सोनापाठा, अग्निमंथ, गंभारी और पाढ़ल की छाल
11. हारसिंगार (पारिजात) के पत्ते 12. रास्ना 13. मेथी के बीज
14. बालछड़ (जटामांसी) 15. सहजन (मुनगा) की छाल

16. तेजपत्रक 17. धमासा 18. गुग्गुल
19. विदारीकंद 20. केवाकंद 21. सोंठ
22. अखरोट की छाल, फल या मींगी 23. देवदार 24. एरंड की जड़
25. सुरंजान-मीठी 26. विधारा 27. काली हलदी
28. गिलोय 29. खिरेंटी 30. मेढ़ासिंगी
31. अमलतास (फल का गूदा) 32. बकायन की आंतरिक छाल
33. ऊँटकटारा की जड़ 34. पुष्करमूल 35. पिप्पलामूल
36. तगर 37. कायफल।

उपर्युक्त सभी चीजों को बराबर मात्रा में लेकर कूट-पीस कर जौकुट पाउडर बना लिया जाता है। हवन करते समय इसी सामग्री में पहले से तैयार की गई कॉमन-हवन सामग्री नम्बर-१ को भी समान मात्रा में मिला लेते हैं।

अन्य प्रयोग

१. चूर्ण

यहाँ एक बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि शीघ्र लाभ के लिए हवन के साथ-साथ उपर्युक्त ३७ चीजों से बने जौकुट पाउडर को खाना भी अनिवार्य है। इसके लिए इन ३७ चीजों से बने जौकुट पाउडर की कुछ मात्रा को अधिक बारीक पीसकर कपड़छन कर लेना चाहिए और एक काँच के बर्तन या प्लास्टिक के डिब्बे में अलग रख लेना चाहिए। हवन के पश्चात् इस पाउडर को सुबह-शाम एक-एक चम्मच शहद के साथ रोगी व्यक्ति को नित्य नियमित रूप से खिलाना चाहिए। कुछ लोगों को पाउडर खाने में प्रायः अरुचिकर लगता है, अतः ऐसी स्थिति में उक्त पाउडर का क्वाथ बनाकर पीना चाहिए।

२. क्वाथ

क्वाथ बनाने के लिए उक्त ३७ चीजों से बने जौकुट पाउडर की ३० ग्राम से ५० ग्राम तक की मात्रा लेकर शाम को स्टील के एक बर्तन में लगभग आधा लीटर पानी में भिगो देना चाहिए और सुबह उसे गैसचूल्हे, स्टोव या सामान्य चूल्हे पर चढ़ाकर मंद आँच में उबलने देना चाहिए। जब एक चौथाई पानी शेष रह जाए, तो काढ़े को उतारकर ठंडा होने तक छोड़

देना चाहिए। इसके बाद महीन कपड़े से अच्छी तरह दबाकर छान लेना चाहिए। इसकी आधी मात्रा सुबह एवं आधी मात्रा शाम को एक चुटकी भर पिप्पली चूर्ण मिलाकर पी लेना चाहिए।

साइटिका रोग प्राय: कब्ज बने रहने, अमीबायसिस होने अर्थात् पेट में आँव बनते रहने के कारण अधिक कष्टप्रद होता है। अत: अच्छा होगा कि हवन करने और चूर्ण या क्वाथ लेने से पूर्व सबसे पहले पेट की सफाई कर ली जाए। इसके लिए रात्रि में सोते समय कैस्टर ऑयल अर्थात् एरंड तैल-१० मि. ली. (२ छोटे चम्मच) एक गिलास कुनकुने जल में अच्छी तरह मिलाकर रोगग्रस्त व्यक्ति को पिला देना चाहिए। पेट साफ हो जाने पर दवा का प्रभाव शीघ्र होता है। भोजनोपरांत कोई पाचक द्रव्य जैसे महाशंख बटी आदि ली जा सकती है। कमर, जंघा, घुटना आदि में तीव्र साइटिका का दरद होने की स्थिति में दरदनाशक तैल की मालिश भी की जा सकती है।

प्राय: ठंड के दिनों में कितने ही लोगों को साइटिका के अतिरिक्त जोड़ों के दरद, मांसपेशियों के दरद, आर्थ्राइटिस, गठिया वात, मोच, दरद आदि की शिकायत रहती है। दरद से छुटकारा पाने के लिए अँगरेजी दवाइयों का सहारा लेने पर भी इस व्यथा से छुटकारा नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में यज्ञोपचार के साथ-साथ निम्नांकित दर्दविनाशक तैल के उपयोग से उक्त सभी प्रकार के कष्टों से छुटकारा पाया जा सकता है।

३. दर्दविनाशक तैल

इसमें निम्नलिखित औषधि-द्रव्य मिलाए जाते हैं-

1. सरसों तैल -100मि.ली. 2. मेथी बीज -10ग्राम
3. धतूरा बीज - 10 ग्राम 4. कनेर मूल(पीली कनेर)-10 ग्राम
5. कुचला बीज - 10 ग्राम 6. आकमूल या पत्ते का रस- 10 ग्राम
7. भाँग पत्ती - 4 ग्राम 8. लहसुन - 4 ग्राम
9. अतीस - 3 ग्राम 10. लाल मिरच के बीज -2 ग्राम
11. अजवायन - 3 ग्राम 12. भिलावा - 5 ग्राम
13. कंटकारी(भटकटैया)मूल-10 ग्राम 14. कलिहारी मूल - 3 ग्राम
15. प्रियंगु बीज - 5 ग्राम 16. तंबाकू - 2 ग्राम

17. शंखिया-2 ग्राम (आवश्यकता पड़ने पर) 18. बच-कडुई - 5 ग्राम
19. हलदी - 5 ग्राम 20. नागफनी - 10 ग्राम
21. पिपरमेंट सत् - 5 ग्राम 22. अजवायन सत् - 2 ग्राम
23. कपूर (भीमसेनी) सत् - 2 ग्राम 24. मिथाइल सेलिसिलेट-20मि.ली.
25. तारपीन तैल - 3 मि.ली. 26. नीलगिरी तैल - 3 मि.ली.।

तैल बनाने की विधि-इस प्रकार है-

सर्वप्रथम क्रमांक-२ से २० तक की औषधियों को गेहूँ के दाने के बराबर टुकड़े कर लें। फिर इन टुकड़ों को सरसों के तैल में डालकर धीमी आँच में पकाएँ। बीच-बीच में चम्मच (झारा) से चलाते रहें, ताकि वे जलने न पाएँ। जब सभी औषधियाँ पककर काली होने लगें और तैल जलने की गंध आने लगे, तब तैल उतार लें। हलका कुनकुना रहने पर औषधियाँ झारे से निकाल लें और ठंडी होने पर कपड़े से तैल को छान लें। तत्पश्चात् क्रमांक-२१ से २३ तक की चीजों को स्टील या काँच के बरतन में मिला लें, जिससे यह मिश्रण पानी बन जाएगा। अब इसे छाने गए तैल में मिला दें, फिर इसके बाद इसी तैल में क्रमांक-२४ से २६ तक की चीजें उपरोक्त मात्रा के अनुसार मिला दें। इस प्रकार दर्दविनाशक तैल तैयार हो जाता है।

इस तैल को बनाने एवं छानने के बाद कड़ाही में नीचे जो तलछट या अवशेष कीट अर्थात जला हुआ पदार्थ बचता है, उसे भी सुरक्षित रख लिया जाता है। इसे तैल मालिश के बाद पीड़ित स्थान पर हलका कुनकुना-गरम करके बाँध देने से गठिया एवं साइटिका जैसे वात रोग जल्दी ठीक हो जाते हैं।

४. विशेष गुणकारी तैल

विशेष गुणकारी तैल बनाने हेतु-१०० ग्राम तैल में ५० ग्राम से १०० ग्राम तक गौमूत्र और ५० ग्राम गोबर का रस लेते हैं। १०० ग्राम तैल की जगह १२५ ग्राम तैल लेना चाहिए। सबसे पहले तैल में गौमूत्र और गोबर का रस मिलाकर उबालते हैं। उबालते समय जब किट्ट या तलछट जमने लगे, तो उसको पलटे से या चम्मच से निकाल लें। जब गौमूत्र और गोबर रस जल जाए या उड़ जाए और मात्र तैल शेष रहे, तब उपरोक्त विधि से क्रमांक-२

से २० तक की औषधियाँ तैल में डालकर धीमी आँच में पकाएँ। पकने की स्थिति में जड़ी-बूटी काली होने लगेगी, तब तैल को उतारकर छान लें। फिर क्रमांक २१ से २६ तक की औषधियाँ उपर्युक्त विधि के अनुसार मिलायें। यह तैल सामान्य की अपेक्षा अधिक लाभाकारी होता है।

तैल मालिश की विधि

इस तैल की मालिश करते समय हाथ को बार-बार अँगीठी में गरम करके पीड़ित स्थानं पर फेरते रहना चाहिए। इससे तुरंत लाभ मिलता है। मालिश करने के बाद सुरक्षित अवशेष हलका कुनकुना करके पीड़ित अंग पर फैलाकर ऊपर से कपड़ा बाँध देना चाहिए। यह क्रम साइटिका के दरद मिटने तक रोज करते रहना चाहिए। यह तैल सभी प्रकार की वातव्याधियों में लाभकारी है।

यहाँ इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए कि यह तैल विषैला होता है। अत: इसे पीने, आंतरिक भाग में या कटे-फटे स्थान में लगाने में प्रयुक्त नहीं करना चाहिए तथा गरदन के ऊपरी भाग में भी नहीं लगाना चाहिए। गर्भवती महिलाओं को भी इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। जब दरद अधिक हो, ठीक न हो रहा हो, तब तैल में शंखिया का प्रयोग करना चाहिए, अन्यथा नहीं करना चाहिए। खट्टी एवं ठंडी चीजें, दही, अचार, छाछ, उड़द की दाल, कार्बाइड से पके फल आदि का सेवन नहीं करना वातव्याधि से छुटकारा पाने का सर्वोत्तम उपाय है।

५. अन्य उपाय-उपचार

वात-व्याधि, साइटिका, कमर दरद आदि में कैस्टर ऑयल का प्रयोग अत्यंत लाभकारी होता है। इसे एक चम्मच से आरंभ करना चाहिए। अगर पतले दस्त होने लगें तो ठीक है, अन्यथा दूसरे दिन दो चम्मच कैस्टर ऑयल एक गिलास कुनकुने दूध या पानी में मिलाकर लेना चाहिए। इस प्रकार इसकी मात्रा तब तक बढ़ाते रहें, जब तक पतले दस्त न लगने लगें। ऐसा होने पर कैस्टर ऑयल बंद कर दें। एक सप्ताह बाद दोबारा यही क्रम दोहराएँ। इसके साथ महारास्नादि क्वाथ एवं दशमूल क्वाथ बनाकर लेते रहने पर वातव्याधि में शीघ्र लाभ मिलता है।

२. आमवात की यज्ञ चिकित्सा

आमवात को समस्त वातविकारों का जनक कहा जा सकता है। आरंभ होने के साथ ही यदि सही ढंग से इसका उपचार न किया जाए, तो आगे चलकर विविध प्रकार के कष्टसाध्य वातविकार जैसे संधिवात, संधिशोथ-जिन्हें चिकित्सा विज्ञानी 'आर्थ्राइटिस' कहते हैं, पैदा हो जाते हैं। गठिया, जोड़ों का दरद, पंगुता आदि वात विकृतियाँ इसी की देन हैं।

आमवात-सामान्य परिचय

आमवात की निरुक्ति दो प्रकार से की जाती है, **'आमेन सहितः वातः'** तथा **'आमश्च वातश्च आमवातः।'** अतः स्पष्ट है कि यह दो शब्दों के मेल से बना है-आम+वात। वस्तुतः जो खाद्यपदार्थ हम आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, यदि वह ठीक तरह से पचता नहीं है, जठराग्नि कमजोर है, तो उससे जो कच्चा अपक्व रस बनता है, वह आँत के ऊपरी भाग-आमाशय में इकट्ठा होता रहता है। आयुर्वेद में इसे ही 'आम कहते हैं। जब शरीर में संचरण करने वाली वायु प्रकुपित होकर आम से मिल जाती है और दूषित वायु के साथ पूरे शरीर में परिभ्रमण करने लगती है, तब इसे 'आमवात' कहते हैं। शरीर के त्रिकस्थानों, संधिस्थलों, जोड़ों आदि में प्रवेश करके यह उन स्थानों को जकड़ लेती है, लॉक कर देती है, तब अंगों में सूजन आ जाती है और हड्डी टूटने, बिच्छू के डंक मारने जैसी पीड़ा होती है। इसके साथ ही भूख न लगना, अरुचि, प्यास, आलस्य, ज्वर, हृदय में भारीपन, पैर, पिंडली, जंघा, घुटना, कमर, ग्रीवा आदि में शोथ, अनिद्रा, पेशाब की अधिकता, आँतों में गुड़गुड़ाहट एवं शरीर में दाह जैसे लक्षण उभर आते हैं। सही ढंग से उपचार न होने पर आमाशय में जमा हुआ यही आमरस जब कफ और पित्त से मिल जाता है, तो यह उक्त संधि स्थानों में एकत्र होकर सूजन और असह्य दरद पैदा करता है। ऐसी स्थिति में चलना-फिरना दुष्कर हो जाता है, तब कहा जाता है कि आमवात ने जकड़ लिया है। पित्ताधिक्य आमवात में दाह और लाली होती है, वाताधिक्य आमवात में शूल होता है। कफ की अधिकता वाले आमवात में शरीर में जड़ता, भारीपन और खुजली अधिक होती है।

कारण

आमवात को साधारणतया वृद्धावस्था का रोग माना जाता है, परंतु पेट की खराबी, आवश्यकता से अधिक खाने, अधिक शराब पीने, वासी भोजन करने आदि कारणों से यह किसी भी उम्र में हो सकता है। वंशानुगत कारणों से भी यह रोग हो जाता है। आमवात के कारणों का उल्लेख करते हुए 'बंगसेन' में कहा गया है-

विरुद्धाहार चेष्टस्य मंदाग्नेर्शिचलस्यच ।
स्निग्धंभुक्तवतोह्यन्नं व्यायामञ्चाथ कुर्वतः॥

अर्थात् विरुद्ध आहार-विहार, प्रकृति विरुद्ध, समय विरुद्ध, संयोग विरुद्ध जैसे दूध-मछली आदि खाने और विरुद्ध चेष्टा करने, स्निग्ध आहार जैसे-दूध, घी, मिठाई आदि गरिष्ट पदार्थ लेने के पश्चात् बैठे रहने, शारीरिक श्रम न करने, जिह्वा पर नियंत्रण न रखने तथा भोजन करने के पश्चात् तुरंत व्यायाम करने या कठिन परिश्रम करने, नमी या सीलनयुक्त कमरों में निवास करने, धूप से आकर तुरंत ठंडे जल से स्नान करने या ठंडा जल पीने, ठंडी हवा में रात में खुले बदन सोने, पसीना रोकने, आम एवं वात को कुपित करने वाले वातावरण में रहने आदि कारणों से आमवात पैदा होता है। यदि यही आम पित्त स्थान में पहुँच जाए तो उसका पाचन हो जाता है, किंतु जब उपर्युक्त कारणों से यह वायु से संयुक्त होकर आमाशय, वक्षस्थल, कंठ, मस्तिष्क एवं संधिस्थलों आदि कफ वाले स्थानों में पहुँच जाता है, तो अपक्व रह जाता है एवं धमनियों के मार्ग से चलने लगता है। प्रवाहित होता हुआ आमवात पित्त या कफ से संयुक्त होने पर दूषित हो जाता है और स्रोतों में रहने वाले रस को वहन करने वाली शिराओं को रोककर भारी कर देता है। यही आमवात की शुरुआत है, जो आगे चलकर विविध प्रकार की दारुण वात-व्याधियों को जन्म देती है।

यज्ञोपचार

आयुर्वेद चिकित्सा में आमवात दूर करने वाले अनेकों औषधीय योग उपलब्ध हैं। अनेक विशिष्ट एवं बहुमूल्य रस-भस्मादि मिश्रित योग, क्वाथ, वातनाशक-दरदनाशक तैल आदि के प्रयोग से नए एवं पुराने आमवात को समूल नष्ट किया जा सकता है। इतने पर भी अनुभवी चिकित्सक एवं महँगी

दवाओं की सहज उपलब्धता न होने के कारण जनसामान्य प्रायः इस दारुण कष्ट को झेलने के लिए विवश बने रहते हैं। ऐसी स्थिति में यज्ञ चिकित्सा को अपनाकर हर कोई अपने आहार-विहार में परिवर्तन करते हुए सहज ही सभी प्रकार की वात-व्याधियों से छुटकारा पा सकते हैं और नीरोग एवं दीर्घायुष्य जीवन का आनंद उठा सकते हैं।

आमवात की विशेष हवन सामग्री

आमवात दूर करने के लिए जो हवन सामग्री बनाई जाती है, उसमें निम्नलिखित वस्तुएँ मिलाई जाती हैं–

1. रास्ना 2. गिलोय 3. अमलतास की पत्ती एवं फल का गूदा
4. देवदार 5. गोक्षरू 6. एरंड की जड़ 7. पुनर्नवा (सांठी)
8. सोंठ 9. बिल्वगिरी 10. गंभारी छाल 11. पाढ़ल छाल
12. अरणी छाल 13. अरलू 14. शालिपर्णीपंचांग 15. पृश्निपर्णी
16. छोटी एवं बड़ी कटेरी 17. कचूर 18. बड़ी हरड़
19. बच 20. अतीस 21. वासा 22. गुग्गुल
23. पीपर 24. पिप्पलामूल 25. शतावर 26. अश्वगंधा
27. विधारा 28. प्रसारिणी 29. पुष्करमूल 30. अजवायन
31. अजमोद 32. बायविडंग 33. चव्य 34. चित्रक
35. जीवंती 36. इंद्रायण की जड़ व फलों का बीज 37. कूठ
38. ज़ायफल 39. कालीमिर्च 40. सफेद जीरा 41. गोरखमुंडी
42. कुटकी 43. निशोथ 44. तेजपत्र 45. दालचीनी
46. कटसरैया 47. मेथी 48. मकोय 49. इंद्रजौ
50. बला 51. सर्ज (सफेद डामर)।

उपर्युक्त सभी ५१ चीजों को समान मात्रा में लेकर जौकुट पाउडर बना लेना चाहिए। यदि कुछ औषधियाँ न मिलें तो भी जितनी उपलब्ध हो सकें, उनसे ही निर्मित जौकुट पाउडर में समभाग में कॉमन हवन सामग्री-नं. (१) को मिला कर यज्ञोपचार आरंभ कर देना चाहिए।

अन्य प्रयोग

अ. चूर्ण एवं क्वाथ

हवन करने के साथ ही उपर्युक्त सभी ५१ चीजों को अलग से बारीक पीसकर उनका कपड़छन चूर्ण तैयार कर लिया जाता है और सुबह-शाम एक-एक चम्मच पाउडर कुनकुने जल के साथ आमवात के रोगी को खिलाया जाता है। चूर्ण निगलने में प्राय: अरुचिकर लगता है, अत: इसका क्वाथ बनाकर पीने से समस्या का समाधान भी हो जाता है और लाभ भी जल्दी मिलता है।

क्वाथ बनाने का सबसे सरल तरीका यह है कि रात्रि में ५० ग्राम अर्थात् दस चम्मच उक्त इक्यावन चीजों के सम्मिलित पाउडर को लगभग आधा लीटर शुद्ध जल में भिगो दिया जाए और सुबह उसे मंद आँच पर उबाला जाए। जब उबलकर क्वाथ का जलांश चौथाई रह जाए, तो उसे ठंडा होने पर महीन कपड़े से छान लें और उसे ही सुबह-शाम दो बार में रोगी को पिलाएँ। अच्छा हो यदि अनुकूल पड़े, तो पीते समय काढ़े में एक चुटकी सोंठ का चूर्ण और काला नमक मिला लिया जाए। इससे पाचनशक्ति को बल मिलता है और सूजन भी मिटती है। कभी-कभी क्वाथ में एरंड तैल (कैस्टर ऑयल-१० मि.ली.) मिलाकर भी पिलाना चाहिए, जिससे आमशय में एकत्र हुआ आम बाहर निकल जाता है।

ब. सिकाई

आमवात-गठिया में जोड़ों में सूजन एवं असह्य दरद मुख्य रूप से रुग्ण व्यक्ति को व्यथित करते हैं। इससे छुटकारा पाने का सबसे सरल तरीका यह है कि कपड़े में बालू की पोटली बाँधकर या यज्ञभस्म को आग में या तवे पर बार-बार गरम करके सारे शरीर को कपड़े से ढककर सिकाई की जाए। इससे पसीना निकलता है और शोथ तथा दरद में राहत मिलती है। तदुपरांत निम्नांकित दरदनाशक तैल की हलकी मालिश करनी चाहिए।

स. आमवात नाशक तैल

आमवात के लिए दरदनाशक तैल इस प्रकार बनाया जाता है-

1. मेदा	2. महामेदा	3. सोंठ	4. मंजीष्ठ
5. कूठ	6. रास्ना	7. लालचंदन	8. ज़ीवक

9. ऋषभक 10. काकोली 11. क्षीरकाकोली 12. कंटकारी 13. एरंड जड़ 14. कटसरैया 15. सर्जरस के बीज 16. प्रसारिणी क्वाथ 17. तिल तैल।

क्रमांक-१ से १५ तक की सभी चीजों को ५०-५० ग्राम लेकर कूटपीस कर बारीक पाउडर बना लें। प्रसारिणी क्वाथ ५०० ग्राम एवं तिल तेल एक किलोग्राम लेकर उसमें उक्त सभी चौदह चीजों का पाउडर डालकर तैल सिद्ध कर लें। जब सभी चीजें जल जाएँ, केवल तैल शेष रहे, तो उसे ठंडा होने पर छान लें। यह तैल आमवात सहित सभी प्रकार के वात रोगों पर लाभदयक सिद्ध होता है।

पथ्य-परहेज-आमवात पाचन तंत्र की गड़बड़ी के कारण उत्पन्न होता है, अत: रोगी के खान-पान में पथ्य-परहेज का अवश्य ध्यान रखना चाहिए। दूध, दही, गुड़, मांस, मछली, उड़द, बैंगन आदि एवं बादी करने वाली शीतल वस्तुएँ आमवात के रोगी को नहीं खानी चाहिए। रात्रि जागरण, वेगों को रोकना, पुरवैया वायु, चिंता, शोक, आलस्य आदि इस महारोग के लिए अपथ्य हैं। परबल, करेला, बथुआ, कुलथी, लहसुन, सोंठ, मरिच, अजवायन, अदरक, एरंड तैल, कोदों, सांवा, मूँग, पुराना साठी चावल, चना की दाल का यूष आदि पथ्य हैं। पीने के पानी में ५-५ ग्राम चव्य, चित्रक, पीपर, पिप्पलामूल एवं सोंठ डालकर उबाल लें। ४ लीटर पानी उबलकर जब आधा रह जाए, तो छानकर ठंडा होने पर पीने को देते रहना चाहिए। आमवात रोगी के लिए यह जल अमृत के समान लाभकारी होता है।

३. आर्थ्राइटिस या गठिया वात की यज्ञ चिकित्सा

वातव्याधियों में गठिया वात या जोड़ों का दरद सबसे अधिक पीड़ादायक होता है। इस रोग में शरीर के विविध जोड़ जैसे-अँगुलियों के जोड़, कलाई, कोहनी, कंधे, टखने, पंजे, घुटने, पिंडलियाँ, कूल्हे, कमर, गरदन आदि प्रभावित होते हैं। मेडिकल साइंस में इसे 'आर्थ्राइटिस' कहते हैं। आर्थ्राइटिस का अर्थ है, जोड़ों की सूजन या क्षति। यह किन कारणों से उत्पन्न होता है, इसकी पूर्ण जानकारी मेडिकल साइंस के पास नहीं हैं। माना जाता है कि यह एक वायरस-जन्य रोग है। ये वायरस जोड़ों की किन्ही विशेष

कोशिकाओं को संक्रमित कर उनमें विकृतियाँ उत्पन्न कर देते हैं। इससे कालांतर में हड्डियाँ एवं उपस्थि मुड़ने व घिसने लगती हैं। जोड़ों की बाह्य सुरक्षा कवच-साइनोवियल झिल्ली में सूजन आ जाती है और वह अधिक मात्रा में साइनोवियल द्रव्य का स्राव करने लगती है। इससे शोथ बढ़ जाता है और जोड़ क्षतिग्रस्त होने लगते हैं। इससे रोगी को चलने-फिरने में कठिनाई होती है। खान-पान, रहन-सहन एवं आनुवंशिकता भी इसके लिए उत्तरदायी माने गए हैं।

आर्थ्राइटिस के प्रकार

आर्थ्राइटिस रोग कई प्रकार का होता है। इनमें से प्रमुख हैं-

1. रिह्यूमेटॉइड आर्थ्राइटिस अर्थात् संधिवात, 2. ऑस्टियो आर्थ्राइटिस या संधिशोथ, 3. गाउट या गाँठदार गठिया, 4. जुवेनाइल रिह्यूमेटॉइड आर्थ्राइटिस, 5. एंकाइलोजिंग स्पॉन्डिलाइटिस, 6. सोरियाटिक आर्थ्राइटिस आदि।

रिह्यूमेटॉइड आर्थ्राइटिस अर्थात् संधिवात को आमवातीय जोड़ों का दरद भी कहते हैं। यह 'ऑटोइम्यून' रोग माना जाता है, जिसमें शरीर की रोग प्रतिरोधी क्षमता (इम्यून सिस्टम) गड़बड़ा जाने के कारण जोड़ों में विकृति उत्पन्न हो जाती है और वे सूज जाते हैं। यह सूजन जोड़ों की झिल्ली, जिसे 'साइनोवियल मेम्ब्रेन' कहते हैं, से आरंभ होती है, जिसके कारण साइनोवियल फ्लूइड अधिक मात्रा में बनने लगता है और जोड़ों के रिक्त स्थानों में भर जाता है। आगे चलकर इससे कोमल अस्थियों-'कार्टिलेज' को भारी क्षति पहुँचती है। कभी-कभी ये गल तक जाती हैं, जिससे जोड़ों में जकड़न व दरद बढ़ जाता है।

रिह्यूमेटॉइड आर्थ्राइटिस हाथ-पैर के छोटे जोड़ों में दरद व सूजन से आरंभ होता है। सर्वप्रथम यह हाथ-पैर के बीच की दोनों अँगुलियों के जोड़ों से शुरू होता है और धीरे-धीरे पूरे हाथ, पंजे, कलाई, कोहनी, कंधे, टखने, घुटने और कभी-कभी गरदन की हड्डियों के जोड़ तक फैल जाता है। समय पर उपचार न होने से यह रोग धीर-धीरे असाध्य बन जाता है। जोड़ों की संधियाँ संकुचित होने लगती हैं और हाथ-पैर टेढ़े होने लगते हैं। जोड़ों

में दरद के साथ-साथ शोथ भी रहता है। यह रोग किसी भी आयु के नर-नारी को हो सकता है, पर अधिकतर चालीस वर्ष के बाद इसका प्रकोप अधिक होता है। पुरुषों की तुलना में महिलाएँ इसकी चपेट में अधिक आती हैं। जोड़ों का दरद सर्दियों में तथा सुबह के समय अधिक होता है। शरीर में जकड़न, थकान, बुखार, वजन में कमी, रक्ताल्पता, आँखों में सूजन, फेफड़ों में सूजन आदि लक्षण भी आगे चलकर प्रकट होने लगते हैं,जो इस बीमारी की गंभीरता को दर्शाते हैं। इन्हें रिह्यूमेटिक बीमारियाँ भी कहते हैं।

ऑस्टियो आर्थ्राइटिस अर्थात अस्थि संधिशोथ को बढ़ती आयु अथवा बुढ़ापे का रोग भी कहते हैं। पुरुषों में यह पैंतालीस वर्ष से पूर्व एवं महिलाओं में पचास-पचपन वर्ष के बाद होता है। उन जोड़ों पर इसका आक्रमण अधिक होता है, जिन पर शरीर का भार अधिक होता है अथवा जिनका प्रयोग अधिक होता है, जैसे घुटना, कूल्हा, गरदन, कमर का निचला हिस्सा तथा हाथों के जोड़। प्राय: देखा जाता है कि मोटापे से ग्रस्त व्यक्तियों को ऑस्टियो आर्थ्राइटिस अधिक होता है, विशेषकर घुटने के एवं कूल्हे के जोड़ों का। इसका प्रमुख कारण यह है कि शरीर का वजन अधिक होने के कारण पूरे वजन का सीधा असर घुटनों एवं कूल्हे पर पड़ता है, जिससे ये अंग रोगग्रस्त हो जाते हैं। ऑस्टियो आर्थ्राइटिस जहाँ शरीर के बड़े जोड़ों जैसे-घुटने, कूल्हे आदि पर प्रभाव डालता है, वहीं रिह्यूमेटॉइड आर्थ्राइटिस छोटे जोड़ों यथा-अँगुलियों, हाथ, पंजे, कलाई, कोहनी आदि पर असर करता है। अधिक देर तक घुटने मोड़कर बैठना, पालथी मारकर बैठना, व्यायाम न करना, शरीर का वजन बढ़ना, मोटापा आदि कई कारण ऐसे हैं, जो इस महाव्याधि को पैदा करते हैं। इसके अतिरिक्त पुरानी गंभीर चोट या ऑपरेशन के कारण भी कई बार यह रोग पनप जाता है। उम्र बढ़ने के साथ जोड़ वाले हिस्से की मांसपेशियाँ, तंतु, लिगामेन्ट आदि कमजोर होने लगते हैं, जिससे उनमें आई विकृति भी संधिशोथ का कारण बनती है।

आर्थ्राइटिस से बचने के उपाय

उक्त सभी प्रकार के जोड़ों के दरद व सूजन की समय पर चिकित्सा उपचार न करने व रोग पुराना होने पर वे कठोर पड़ने लगते हैं और जोड़ों पर लॉकिंग-सी हो जाती है, जिससे उठना-बैठना, चलना-फिरना

कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में कई बार शल्यक्रिया और जोड़ प्रत्यारोपण का सहारा लेना पड़ता है। सभी प्रकार के आर्थ्राइटिस रोग जीवनीशक्ति की कमी, रोग प्रतिरोधी क्षमता का ह्रास व उपापचय प्रक्रिया में गड़बड़ी के कारण उत्पन्न होते हैं। इससे बचने के लिए आवश्यक है कि संतुलित आहार लें, घी, चीनी, चिकनाई, कम खाएँ, भोजन में कैल्शियम की मात्रा पर्याप्त लें, दूध, हरी शाक-सब्जी, गरम मसाले, मेथी, राई, फलियों वाली सब्जी खूब खाएँ, व्यायाम करें, मेहनत करें और मोटापे से बचें। देर तक व लेटकर टी. वी. न देखें। कार्बाइड से पके फल, ठंडी चीजें, जूस, खट्टी वातवर्द्धक चीजें, टमाटर, नीबू, दही, अचार, इमली, साइट्रिक एसिड मिश्रित चीजें, ठंडी हवा आदि के सेवन से बचना चाहिए।

सभी प्रकार के जोड़ों के दरद, गठिया आदि से छुटकारा दिलाने में सबसे अधिक प्रभावी, सुरक्षित एवं निरापद चिकित्सा यज्ञोपचार सिद्ध हुई है। इसे प्रत्येक आयु-वर्ग का हर कोई व्यक्ति अपना सकता है और इस कष्टकारी महाव्याधि से छुटकारा पा सकता है। इसकी विशेष हवन सामग्री इस प्रकार तैयार की जाती है-

आर्थ्राइटिस या जोड़ों के दरद की विशिष्ट हवन सामग्री

1. महारास्नादि क्वाथ (26 औषधियाँ) 2. दशमूल (10 औषधियाँ)

3. निर्गुंडी	4. नागरमोथा	5. पाढ़ा	6. भारंगी
7. मूर्वा	8. एरंड मूल	9. गिलोय	10. हरड़
11. बायविडंग	12. कुटकी	13. गुग्गुल	14. सर्पगंधा
15. पिप्पलीमूल	16. मुलहठी	17. अश्वगंधा	18. त्रिकटु
19. हींग	20. अजमोद	21. बच	22. चित्रक
23. इंद्रायण	24. अकरकरा	25. सलई गोंद	26. ज्योतिष्मती
(मालकंगनी) के बीज		27. वासा	

इनमें से क्रमांक-१ से १० तक की औषधियाँ बराबर मात्रा में, क्रमांक-११ से १८ तक उसकी आधी मात्रा में, क्रमांक-१९ से २६ तक की औषधियाँ चौथाई मात्रा में एवं क्रं.-२७ की (वासा) को दोगुनी मात्रा में लिया जाता है।

उपर्युक्त सभी सत्ताइस चीजों को जौकुट करके 'आर्थ्राइटिस की विशिष्ट हवन सामग्री नम्बर-२' के रूप में अलग डिब्बे में रख लेते हैं। इसी सम्मिश्रित पाउडर की कुछ मात्रा को बारीक पीसकर कपड़छन करके खाने के लिए रख लेते हैं और हवन के पश्चात् सुबह-शाम एक-एक चम्मच चूर्ण शहद के साथ नित्य नियमित रूप से खिलाते हैं।

हवन करते समय पहले से तैयार की गई, 'कॉमन हवन सामग्री-नम्बर-१' को बराबर मात्रा में लेकर उपर्युक्त नम्बर-२ की विशेष हवन सामग्री में मिलाकर तब हवन करते हैं। हवन सूर्य गायत्री मंत्र से किया जाता है। कम से कम २४ बार मंत्रोच्चार करते हुए आहुति अवश्य डालनी चाहिए।

आर्थ्राइटिस या गठिया वातनाशक तैल

जोड़ों के दरद में या गठिया पीड़ित अंगों पर वातनाशक तैल की मालिश अवश्य करनी चाहिए। वातनाशक तैल में प्रयुक्त होने वाली सामग्री इस प्रकार है-

1. सरसों तेल	-500 ग्राम	2. काली हलदी	-8 ग्राम
3. मेथी बीज	-8 ग्राम	4. धतूरा बीज	-8 ग्राम
5. पीले कनेर की जड़	-8 ग्राम	6. कुचला	-8 ग्राम
7. आकमूल	-8 ग्राम	8. शतावर	-8 ग्राम
9. विधारा	-8 ग्राम	10. चोपचीनी	-8 ग्राम
11. निर्गुंडी	-8 ग्राम	12. केवाकंद	-8 ग्राम
13. हारसिंगार के पत्ते	-8 ग्राम	14. भाँग पत्ती	-4 ग्राम
15. लहसुन	-4 ग्राम	16. पिप्पली	-4 ग्राम
17. लालमिर्च के बीज	-3 ग्राम	18. अजवायन	-2 ग्राम
19. भिलावा	-2 ग्राम	20. कंटकारी (भटकटैया)मूल	-2 ग्राम
21. कलिहारी मूल	-1 ग्राम	22. प्रियंगु बीज	-5 ग्राम
23. तंबाकू	-1/4 ग्राम	24. शंखिया	-2 ग्राम
25. अफीम	-2 ग्राम	26. पिपरमेंट सत्	-4 ग्राम
27. अजवायन सत्	-4 ग्राम	28. कपूर (भीमसेनी) सत्	-8 ग्राम
29. मिथाइल सेलिसिलेट	-3 मि.ली.।		

तैल बनाने की सरल विधि-इस प्रकार है-

क्रमांक-२ से २५ तक की उपरोक्त सभी औषधियों को गेहूँ के दाने के बराबर टुकड़े-टुकड़े (जौकुट) करके उसे सरसों के तेल में डालकर धीमी आँच में पकाएँ। बीच-बीच में बड़े चम्मच से चलाते रहें, ताकि जलने न पाए। जब सभी औषधियाँ पककर काली होने लगें और तेल जलने की सुगंध आने लगे, तब उतार लें। ठंडा होने पर कपड़े से छान लें। तत्पश्चात् क्रमांक-२६ से २८ तक की वस्तुओं को स्टील या काँच के बरतन में मिला लें, जिससे यह मिश्रण पानी बन जाएगा। फिर इस घोल में ३ मि.ली. मेथाइल सेलिसिलेट मिला दें। फिर इस मिले हुए घोल को छने हुए तेल में मिला दें। वातनाशक तैल तैयार है। सभी प्रकार के आर्थ्राइटिस, जोड़ों का दरद, गठियावात, साइटिका, मांसपेशियों का दरद, चोट, मोच, आदि सभी में यह तैल अत्यंत लाभकारी है।

४. गाउट या वातरक्त की सरल यज्ञ चिकित्सा

संधिवात एवं संधिशोथ नामक वातव्याधियों की यज्ञ चिकित्सा का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। ये दोनों ही जोड़ों से संबंधित आर्थ्राइटिस रोग हैं। यहाँ पर इसके तीसरे प्रकार 'गाउट' अर्थात् वातरक्त एवं घुटने के शोथ के संबंध में बताया जा रहा है कि किन कारणों से यह उत्पन्न होते हैं और यज्ञोपचार द्वारा इन कष्टकारी व्याधियों से छुटकारा किस तरह से पाया जा सकता है।

गाउट-वातरक्त को बीमारियों का राजा कहा जाता है। सुकुमार प्रकृति के व्यक्तियों एवं संपन्नों को इस व्याधि से सर्वाधिक ग्रस्त पाया जाता है। चालीस-पचास वर्ष की उम्र के पश्चात् इसका आक्रमण महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों में ज्यादा देखने को मिलता है। यह बच्चों एवं युवाओं में बहुत कम पया जाता है। वातशोणित, आढ्यवात, वातबलास, खुड़वात आदि नामों से भी यह जाना जाता है। इसका मुख्य कारण मद्य-मांस का अत्यधिक सेवन, मिथ्या आहार-विहार, प्रतिकूल जलवायु, व्यायाम एवं परिश्रम का अभाव, मोटापा, शोक, क्रोध, चिंता, तनाव आदि मानसिक विकार माने जाते हैं। आनुवंशिक कारण भी इसके लिए एक जिम्मेदार कारक माना जाता है।

घोड़ा, ऊँट, हाथी आदि की सवारी करने, शीत, रूक्षादि कारणों से शरीर की वायु प्रकुपित हो जाती है और अधिक तीखे, चरपरे, गरम, नमकीन, खट्टे, चिकने, खारे पदार्थ, सूखे मटर, बींस, लोबिया, अदरक, पत्तों एवं बैंगन आदि के शाक अधिक मात्रा में खाने से, समुद्री भोजन, खमीर (यीस्ट) आदि खाने से रक्त दूषित हो जाता है। यही दूषित रक्त प्रकुपित वायु से मिलकर वातरक्त को उत्पन्न करता है। सबसे पहले यह हाथ-पैर में उत्पन्न होता है, पीछे सारे शरीर में फैल जाता है।

आधुनिक चिकित्साविज्ञानी वातरक्त को 'गाउट' नाम से संबोधित करते हैं। वृद्धावस्था में उभरने वाली यह एक बहुत ही पीड़ादायक रिह्यूमेटिक बीमारी है, जो चयापचयी प्रक्रिया द्वारा रक्त के दूषित होने से उत्पन्न होती है। रक्त में जब यूरिक एसिड एवं सोडियम यूरेट्स की मात्रा अधिक बढ़ जाती है और शरीर से इनका निष्कासन पूरी तरह नहीं हो पाता, तब ये तत्त्व जोड़ों के खाली स्थानों में, कोमल ऊतकों में क्रिस्टल के रूप में जमने लगते हैं। इस जमाव के कारण जोड़ों, संधियों, संधिकला आदि में सूजन, लालिमा, दाह, दरद एवं जकड़न होने लगती है। गाउट का आरंभ मुख्य रूप से छोटी अस्थि-संधियों से तथा विशेष रूप से पैर के अँगूठे की संधि से होता है। जोड़ों में पाए जाने वाले द्रव-साइनोवियल फ्लूइड में यूरिक एसिड के रवे-क्रिस्टल जमने लगते हैं, जिससे सूजन आती है और दूषित रासायनिक तत्त्वों के मुक्त होने से जोड़ों के तंतुओं में शोथ के साथ दरद उभरने लगता है। आगे चलकर यही तत्त्व त्वचा के नीचे, गुरदे में, जोड़ों के आस-पास भी बनने लगते हैं और संबंधित अंगों को विकारग्रस्त बना देते हैं। सही समय पर उपचार न होने पर जोड़ खराब हो जाते हैं और व्यक्ति अपंगता का शिकार हो जाता है। पैर के अँगूठे से आरंभ होने वाला यह रोग धीरे-धीरे एँड़ी, घुटने, हथेलियों, अँगुलियों तथा कुहनियों तक को अपनी चपेट में ले लेता है।

गाउटी आर्थ्राइटिस के लक्षण-इस प्रकार हैं-

गाउटी आर्थ्राइटिस अर्थात वातरक्त या गाँठदार गठिया का आक्रमण प्राय: धीर-धीरे होता है। इसके लक्षणों को देखकर आसानी से पहचाना जा सकता है। प्राय: प्रारंभ में रोग से प्रभावित व्यक्ति को पसीना ज्यादा आता है,

किसी-किसी को बिलकुल नहीं आता है। हलके बुखार के साथ बेचैनी का अनुभव होता है। इसके बाद शीघ्र ही पैर के अँगूठे अथवा किसी अन्य जोड़ में प्राय: रात्रि के समय तेज दरद के साथ सूजन उभर आती है। प्रभावित स्थान की त्वचा लाल या जामुनी रंग की हो जाती है। जोड़ को छूना या हिलाना-डुलाना मुश्किल हो जाता है। एक बार आक्रमण होने के बाद सप्ताह-दो सप्ताह बाद रोग या तो स्वयं या उपचार के बाद दब जाता है, किंतु कुछ समय पश्चात् यह दुबारा उभर आता है। दो-चार बार यही क्रम चलता रहता है, और पीछे स्थायी बन जाता है। ऐसी स्थिति में गुर्दे खराब हो सकते हैं, घुटने की हड्डियाँ बेकार हो सकती हैं, जोड़ उखड़ सकते हैं। हृदय में सूजन आ सकती है। उल्टी, दस्त जैसे अनेक उपद्रव होने लगते हैं। रोग पुराना हो जाने पर अशक्तता एवं विकलांगता तथा कुरूपता आ जाती है। पसीने से खटास जैसी गंध, स्वभाव चिड़चिड़ा, पेशाब की न्यूयता एवं उसमें यूरिक एसिड तथा यूरेट की बढ़ोत्तरी जैसे लक्षण स्पष्ट परिलक्षित होने लगते हैं।

गठिया वात के प्रकार

गाउटी-गठिया या वातरक्त तीन तरह का होता है। पहले प्रकार में वायु और रक्त की विषाक्तता से उत्पन्न गठिया आता है। इससे प्रभावित पैरों में छूने से असह्य पीड़ा, सुई चुभाने, त्वचा फटने जैसी वेदना का अनुभव होता है। शुष्कता, भारीपन, संज्ञाशून्यता जैसी प्रतीति होती है। दूसरे प्रकार के वातरक्त में पित्त और रक्त की विषाक्तता अधिक होने से प्रभावित पैर तीव्र दाहयुक्त, अधिक गरम, लाल रंग, शोथ एवं पिलपिलापन लिए होता है। तीसरे में कफ एवं रक्त की अत्यधिक विषाक्तता होने के कारण पैरों में खुजली अधिक होती है। वे सफेद, ठंडे, सूजन से युक्त मोटे तथा कठोर हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त तीनों दोषों से युक्त वातरक्त में सभी दोष अपने-अपने लक्षण पैरों में प्रकट करते हैं। इन लक्षणों के अलावा भी अन्य अनेक शारीरिक लक्षण प्रकट होते हैं-जैसे शरीर का ताप १०१-१०२ डिग्री तक बने रहना, तीव्र बुखार, प्यास, जी मिचलाना आदि। रोग की अभिवृद्धि होने पर पैर के अँगूठे की संधियों के अतिरिक्त गुल्फसंधि, जानुसंधि, कलाई की संधियाँ भी प्रभावित-संक्रमित हो जाती हैं। समुचित उपचार न होने पर यह रोग पूरे शरीर

में फैल जाता है और अंततः रोगी पंगुता का शिकार हो जाता है, अँगुलियाँ गठीली एवं टेढ़ी हो जाती हैं।

यज्ञोपचार

गाउटी आर्थ्राइटिस अर्थात् वातरक्त को दूर करने के लिए आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में अनेकों दरद निवारक एवं शोथ-नाशक औषधियाँ विद्यमान हैं, किंतु इन्हें प्रयुक्त करने पर रोग-शमन के साथ-साथ इनके साइड इफेक्ट्स भी रोगी को भुगतने पड़ते हैं। यज्ञोपचार में यह दुविधा नहीं रहती। यह सर्वाधिक सुरक्षित-निरापद होने के साथ ही रोग को समूल नष्ट करने में समर्थ है। हर कोई इसे सरलतापूर्वक स्वयं कर सकता है और दूसरों को भी इससे लाभान्वित करा सकता है। वातरक्त की यज्ञोपचार प्रक्रिया इस प्रकार है-

गाउटी आर्थ्राइटिस की विशिष्ट हवन सामग्री-

इस हवन सामग्री में निम्नलिखित चीजें समान मात्रा में मिलाई जाती हैं-

1. मंजीष्ठ	2. हरड़	3. बहेड़ा	4. गिलोय
5. कुटकी	6. बच	7. दारुहलदी	8. नीम छाल
9. नागरमोथा	10. धनिया	11. सोंठ	12. भारंगी
13. कटेरी पंचाग	14. मूर्वा	15. बायविडंग	16. बिजासार
17. चित्रक की छाल	18. शतावर	19. त्रायमाण	20. छोटी पिप्पली
21. वासा पत्र	22. भांगरा	23. देवदार	24. लाल चंदन
25. निशोथ	26. बरुण छाल	27. बावची	28. करंज
29. इंद्रायण की जड़	30. अतीस	31. सारिवा	32. पित्तपापड़ा
33. काँचनार की छाल	34. शरपुंखा	35. गुग्गुल	36. एरंड मूल
37. बबूल की छाल	38. गोक्षुरू	39. गोरखमुंडी	40. निर्गुंडी
41. रास्ना	42. चोपचीनी	43. अरणी	
44. सहजन की छाल		45. शीशम की छाल।	

उपर्युक्त पैंतालिस चीजों को बराबर मात्रा में लेकर उनका जौकुट पाउडर बना लेते हैं और इसे विशेष रोग की 'हवन सामग्री-नम्बर-२ का लेबल लगाकर एक डिब्बे में सुरक्षित रख लेते हैं। हवन करते समय पहले

से तैयार की गई 'कॉमन हवन सामग्री-नम्बर-१' की बराबर मात्रा मिलाकर तब सूर्य गायत्री मंत्र से हवन करते हैं।

अन्य उपाय-उपचार

अ. चूर्ण एवं क्वाथ

हवन करने के साथ ही उक्त पैंतालिस चीजों से निर्मित जौकुट पाउडर की कुछ मात्रा को बारीक पीसकर कपड़छन करके एक अलग डिब्बे में रख लेना चाहिए। उसमें से हर रोज सुबह-शाम एक-एक चम्मच पाउडर शहद के साथ खाते रहना चाहिए। पाउडर खाने में यदि अरुचिकर लगे, तो उसे क्वाथ बनाकर भी पिया जा सकता है। क्वाथ बनाने के लिए चार चम्मच पाउडर लेकर आधा लीटर पानी में रात्रि को स्टील के भगोने में भिगो देना चाहिए और सुबह मंद आँच पर उबालकर क्वाथ बना लेना चाहिए। क्वाथ उबलकर जब चौथाई रह जाए, तो उसे ठंडा कर बारीक कपड़े से छान लेना चाहिए। इसकी दो मात्रा बनाकर आधी मात्रा सुबह एवं आधी मात्रा शाम को एक चम्मच शहद मिलाकर रोगी को पिलाते रहना चाहिए। यह दोनों क्रम-हवन और क्वाथ तब तक चलाते रहना चाहिए, जब तक रोग निर्मूल न हो जाए।

ब. वातरक्त नाशक तैल

यज्ञ चिकित्सा के साथ ही पीड़ित अंग पर वातरक्तनाशक तैल की मालिश भी करनी चाहिए। तैल निर्माण में प्रयुक्त होने वाली सामग्री इस प्रकार है-

1. सरसों तैल -100 मि.ली. 2. तिल तैल -100 मि.ली.
3. एरंड तैल -50 मि.ली. 4. मालकांगनी के बीज -25 ग्राम
5. कायफल -12 ग्राम 6. जायफल -12 ग्राम
7. शतवार -12 ग्राम 8. बकायन -12 ग्राम
9. सोंठ -12 ग्राम 10. कतीरा -12 ग्राम
11. अकरकरा -12 ग्राम 12. करंज - 12 ग्राम
13. नारियल गिरी -12 ग्राम 14. इलायची -12 ग्राम
15. लौंग - 12 ग्राम 16. हलदी -12 ग्राम

17. समुद्रखार लवण	–12 ग्राम	18. कुचला	–12 ग्राम
19. बादाम	–12 ग्राम	20. कुलंजन	–12 ग्राम
21. समीर (छोटी शमी)	–12 ग्राम	22. काला धतूरा	–2 ग्राम
23. आक	–2 ग्राम	24. भिलावा	–2 ग्राम
25. तंबाकू	–2 ग्राम	26. सहजन	–2 ग्राम
27. मकोय	–2 ग्राम	28. मोम	–2 ग्राम

29. आक के पत्ते, थूहर के पत्ते एवं एरंड के पत्ते(प्रत्येक के पाँच-पाँच पत्ते)

30. भारंगी –2 ग्राम।

मोम को छोड़कर उपर्युक्त सभी चीजों को तीन लीटर पानी में डालकर मंद आँच पर क्वाथ बना लेना चाहिए और जब पानी आधा रह जाए तो, उसे ठंडा करके छान लेना चाहिए। अब इस छने हुए क्वाथ में तीनों तैल एवं मोम डालकर तब तक मंद आँच पर पकाना चाहिए, जब तक सारा पानी जल न जाए। तैल मात्र शेष रहने पर उसे उतार कर ठंडा होने पर छान लेना चाहिए। निरंतर इस तैल की मालिश से गाउटी आर्थ्राइटिस, घुटने का शोथ एवं जोड़ों का दरद बिलकुल ठीक हो जाता है।

५. यज्ञ द्वारा पक्षाघात की चिकित्सा

वात-व्यधियों में सर्वाधिक कष्टप्रद एवं चिकित्सा की दृष्टि से कष्टसाध्य 'पक्षघात' होता है। अस्सी प्रकार की वात-व्यधियों में यह सबसे अधिक दुःसाध्य माना जाता है। यह एक चिरकालिक रोग है, जो अचानक उत्पन्न होता है और इसके कारण रोगी को असह्य कष्ट उठाने पड़ते हैं। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि पक्षाघात दो शब्दों से मिलकर बना है-पक्ष+आघात।

पक्ष का अर्थ होता है-अंग या शरीरार्द्ध एवं आघात का अर्थ होता है-नाश या नष्ट होना अर्थात् शरीर के किसी अंग का घात होना या उसकी प्राकृतिक क्रिया का नष्ट होना। आयुर्वेद ग्रंथों में एकांग वात, पक्षवध, सर्वांगघात, अधरांगघात, अर्दित आदि नामों से इसके विविध रूपों का वर्णन किया गया है। उसके अनुसार शरीर के आधे या पूरे भाग अथवा किसी अंग विशेष की चेतना व सक्रियता का ह्रास होना ही पक्षाघात कहलाता है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान-एलोपैथी पक्षाघात को 'पैरालिसिस' कहता है। यह भी दो शब्दों-'पारा+लिसिस' से मिलकर बना है। 'पारा' का अर्थ है-आभ्यंतर और 'लिसिस' का अर्थ है-शिथिलता अर्थात् किसी अंग-अवयव की शिथिलता या निष्क्रियता। यह निष्क्रियता या शिथिलता चाहे मांसपेशियों की विकृति के कारण उत्पन्न हुई हो अथवा किसी अन्य कारणों से, किसी अंग विशेष या समूचे शरीर की निष्क्रियता, संज्ञाशून्यता पैरालिसिस के अंतर्गत ही मानी जाती है। इसके अनुसार पक्षाघात स्वंतत्र व्याधि न होकर अन्य व्याधियों के लक्षण स्वरूप उत्पन्न होता है। यह शरीर के किसी भी अंग में, आधे शरीर में या सर्वांग में हो सकता है। यह अस्थायी भी हो सकता है और स्थायी भी। ५०-६० वर्ष के बाद मनुष्य में पक्षाघात का खतरा ज्यादा रहता है। महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों में इस व्याधि की संभावना अधिक रहती है।

पक्षाघात के कारण

अन्यान्य वात व्याधियों की भाँति ही पक्षाघात भी दूषित वायु प्रकोप के कारण ही उत्पन्न होता है। आयुर्वेद के अनुसार जब प्रकुपित वायु शरीर की वातवाहिनी शिराओं एवं स्नायुओं को सुखाकर शरीर के संधिबंधनों को शिथिल कर शरीर के एक भाग या पूरे शरीर को निष्क्रिय कर देता है, तो कहा जाता है कि उस भाग को लकवा मार गया है। आयुर्वेद शास्त्रों में उल्लेख है-

गृहीत्वार्धन्तनो वायुः शिरास्नायुर्विशोष्य च ।
पक्षमन्यतमं हन्ति साधिबन्धान्विमोक्षयन् ॥
कृत्स्नोर्धकायं तस्य स्यादकर्म्मणयो विचेतनः ।
एकांगरोगन्तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः ॥

अर्थात् जिस रोग में वायु आधे शरीर को पकड़कर शिरा और स्नायु को सुखाकर संधिबंधन को ढीला कर शरीर के एक ओर के अंग को निष्क्रिय कर देती है, जिससे शरीर का आधा भाग कार्य करने में असमर्थ हो जाता है, उसे पक्षाघात कहते हैं। जब सारे अंग शिथिल या चेष्टारहित हो जाते हैं, तब उसे सर्वांगघात कहा जाता है। अतः स्पष्ट है कि वात की विकृति ही पैरालिसिस का प्रमुख कारण है। यह वात-विकृति दो प्रकार से होती

है-१. धातुक्षयजनित और २. आवरणजनित वातविकृति। चरक संहिता चिकित्सा स्थान में कहा भी गया है-"**वायोर्धातुक्षयात् मार्गस्यावरणेन च वा ।**"

पक्षाघात की उत्पत्ति के अनेकों कारण हैं। उनमें से प्रमुख हैं-आहार जन्य, विहारजन्य, मानसिक एवं अन्य हेतु। आहारजन्य कारणों में खान-पान में गड़बड़ी प्रमुख है। इसमें अति रूक्ष, शीत, लघु, अल्प, गुरु, ठंडा, वासी अन्न, शुष्क, विषमाशन, विरुद्ध आहार, अनशन या अधिक उपवास आते हैं, जिनके कारण वायु प्रकुपित होती है। विहारजन्य हेतुओं में आते हैं-अपने से अधिक बलवान व्यक्ति से लड़ना, अतिव्यायाम, अत्यधिक परिश्रम, पैदल चलना, देर तक नदी-तालाब में तैरना, उलटी-सीधी कसरत करना, रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, शुक्र आदि धातुओं में से किसी एक अथवा कई धातुओं का क्षीण हो जाना आदि। मानसिक कारणों में-अधिक तनाव, क्रोध, चिंता, भय, शोक आदि आते हैं। अन्य कारणों में क्षय आदि रोगों के कारण उत्पन्न दुर्बलता, कष्टदायक बिस्तर पर सोना, कष्टदायक आसन पर देर तक बैठना, मल-मूत्रादि वेगों को रोकना, चोट लगना, मस्तिष्क, हृदय आदि मर्मस्थानों पर आघात लगना, कष्टकारी सवारी पर लगातार यात्रा करना आदि आते हैं। इन सभी कारणों से वायु प्रकुपित होती है और शरीर के रिक्त स्थानों को भरती हुई एकांगवात से लेकर सर्वांगघात तक विभिन्न प्रकार के पक्षाघात रोग उत्पन्न करती है।

आधुनिक चिकित्साविज्ञानी पैरालिसिस अर्थात पक्षाघात को स्वतंत्र बीमारी नहीं मानते, वरन् उसे अन्य रोगों के लक्षण स्वरूप मानते हैं। उसके अनुसार पक्षाघात उत्पन्न होने के प्रमुख कारण हैं-मस्तिष्कगत रक्तस्राव (ब्रेन हैमरेज), थ्रोम्बोसिस, ब्रेन ट्यूमर, मेनिन्जाइटिस, एंसेफेलाइटिस, सेप्टीसीमिया आदि। इसके अतिरिक्त डायबिटीज, हृदय रोग, गर्भनिरोधक गोलियों का लंबे समय तक सेवन करते रहने से भी पक्षाघात हो जाता है। पक्षाघात की प्रायः अधिकांश घटनाएँ उच्च रक्तचाप के कारण मस्तिष्कीय धमनियों के फटने तथा मस्तिष्क पर चोट लगने के कारण उत्पन्न ब्रेन हैमरेज के कारण होती हैं। दुर्घटनावश उच्च वोल्टेज की विद्युत करंट लग जाने के कारण भी अंग विशेष में लकवा मार सकता है।

पक्षाघात के प्रकार

आयुर्वेद ग्रंथों के अनुसार पैरालिसिस अर्थात् पक्षाघात चार प्रकार का होता हैं-१. मोनोप्लेजिया या एकांगघात २. हेमिप्लेजिया या अर्द्धांगघात या फॉलिज ३. क्वाड्रीप्लेजिया या सर्वांगघात और ४. पैराप्लेजिया अर्थात् अधरांगघात। चेहरे के लकवे को, जिसे अर्दित या आननघात कहते हैं, आयुर्वेद शास्त्रों में पक्षाघात से अलग माना गया है, किंतु मेडिकल साइंस में यह पैरालिसिस या पक्षाघात के अंदर ही गिना जाता है और 'बेल्स पाल्सी' कहलाता है। इस तरह 'फेसियल पैरालिसिस' (बेल्स पाल्सी) को मिलाकर पाँच प्रकार के पक्षाघात हो जाते हैं।

१. मोनोप्लेजिया अर्थात् एकांगघात

जिस पक्षाघात में प्रकुपित वायु शरीर के दायें या बायें भाग में से किसी एक भाग पर आक्रमण करके उसकी शिराओं एवं स्नायुओं को सुखाकर एक हाथ या पैर को संकुचित कर देता है और प्रभावित अंग में सुई चुभाने जैसी पीड़ा होती है, मोनोप्लेजिया या एकांगघात कहलाता है। इसमें हाथ या पैर में से किसी एक में लकवा होता है।

२. हेमिप्लेजिया या पक्षवध

इसे ही एकांग रोग, अर्धांग या फॉलिज कहते हैं। इससे शरीर के एक ओर का आधा भाग सिर से लेकर पैर तक लंबाई में प्रभावित होता है। इस कारण दाहिने या बायें में से एक ओर के प्रत्येक अंग, जैसे-एक हाथ, एक पैर, एक आँख, एक ओर की आधी जीभ, आधा चेहरा आदि सभी अंग पक्षाघातग्रस्त होकर अपनी स्वाभाविक शक्ति को खो बैठते हैं और निष्क्रिय-निश्चेष्ट हो जाते हैं। इसका मुख्य कारण ब्रेन हैमरेज, रक्त का थक्का जमना, ब्रेन ट्यूमर, हृदय रोग, वृक्क रोग, वातरक्त, उपदंश तथा अतिशय मद्यपान आदि होते हैं।

शरीरक्रियाविज्ञान के अनुसार मस्तिष्क के दाहिने भाग का संबंध काया के बायें भाग से होता है तथा बायें मस्तिष्क का संबंध शरीर के दाहिने भाग से होता है। उक्त कारणों से उत्पन्न अबरोध के कारण जब मस्तिष्क के कुछ हिस्सों को ठीक से रक्त व ऑक्सीजन की आपूर्ति नहीं हो पाती, तो

वह भाग क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। इन अवरोधों के फलस्वरूप मस्तिष्क एवं शरीर के अंग-अवयवों के मध्य चलने वाला सूचना-संवेदनाओं का आदान-प्रदान रुक जाता है और वे अपनी स्वाभाविक क्षमता को खो बैठते हैं। विकृति मस्तिष्क के जिस भाग में होती है, ठीक उसके विपरीत हिस्से में शारीरिक अपंगता आती है।

३. क्वाड्रीप्लेजिया अर्थात् सर्वांगघात

जब प्रकुपित वायु संपूर्ण शरीर में व्याप्त होकर सारे शरीर की क्रियाशीलता को समाप्त कर देता है, तो उसे सर्वांगघात या सर्वांग रोग कहते हैं। इसके प्रभाव से दोनों ओर के सभी अंग शिथिल और निष्क्रिय हो जाते हैं तथा सर्वांग में पीड़ा होती है।

४. पैराप्लेजिया अर्थात् अधरांगघात

इसे पादाघात, उरुस्तंभ, पैरों का लकवा, निचली देह शाखा एवं निचले धड़ का पक्षाघात कहते हैं। इसमें शरीर का आधा भाग, कमर से ऊपर का अथवा कमर से नीचे का भाग ही निष्क्रिय होता है। अधिकतर शरीर का निचला भाग ही निष्क्रिय होता है, जिससे दोनों टाँगें बेकार हो जाती हैं और व्यक्ति अपंग हो जाता है, इसीलिए इसे दोनों टाँगों का लकवा कहते हैं। यह प्रायः मेरुदंड या मेरुरंज-पुच्छ के चोट लगने, स्पाइनल कॉर्ड में सूजन आने, स्पॉण्डीलाइटिस, हिस्टीरिया, पेरीफेरल न्यूराइटिस एवं तंत्रिका तंत्र के पोषण संबंधी विकार आदि के कारण उत्पन्न होता है। यह व्याधि धीरे-धीरे प्रकट होती है। यदि सही समय पर चिकित्सा उपचार न किया जाए, तो प्रभावित अंग क्रमशः सूखने और सिकुड़ने लगते हैं और तब रोग असाध्य हो जाता है।

५. फेसियल पैरालिसिस अर्थात् अर्दित

इसे चेहरे का लकवा, मुँह का लकवा, आननघात आदि नामों से भी पुकारा जाता है। चिकित्साविज्ञानी इसे ही 'बेल्स पाल्सी' नाम से संबोधित करते हैं। यह मस्तिष्क की चेहरे की सातवीं फेसियल नर्व के क्षतिग्रस्त होने या उसमें चोट आदि लगने के कारण होता है। इसका भी प्रमुख कारण मस्तिष्कगत रक्तस्राव या मस्तिष्कगत धमनी अवरोध माना जाता है।

यों तो पक्षाघात या लकवा का आक्रमण होने पर रोगी को तुरंत अस्पताल पहुँचाना चाहिए, क्योंकि पक्षाघात के आक्रमण के पश्चात् के २४ घंटे रोगी के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। समय पर चिकित्सा-सहायता आदि मिल जाने से ब्रेन हैमरेज या हृदयाघात आदि कारणों से उत्पन्न जटिलताओं से पक्षाघातग्रस्त रोगी की जीवनरक्षा हो जाती है। इतने पर भी प्राय: देखा जाता है कि अधिकांश लकवाग्रस्त मरीजों को अपनी पूर्व स्वाभाविक स्थिति में आने या पूर्ण स्वस्थ होने में बहुत समय लग जाता है। कई बार तो वे ठीक भी नहीं होते और अपंग-अपाहिज-सा जीवन जीने को बाध्य होते हैं। पारिवारिक सदस्यों की उपेक्षा सहने, पराश्रित जीवन जीने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं सूझता। आर्थिक स्थिति गड़बड़ाने या विपन्नता के चलते वे महँगी दवाएँ, रसायन-भस्में भी नहीं खरीद पाते।

ऐसी स्थिति में यदि उन्हें यज्ञोपचार प्रक्रिया अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके और उसके लिए आवश्यक हवन सामग्री आदि जुटाई जा सके, जो सहज ही सर्वत्र उपलब्ध हो जाती है, तो न केवल पक्षाघात से मुक्ति पाई जा सकती है, वरन् स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन का पूरा आंनद उठाया जा सकता है।

पक्षाघात की विशिष्ट हवन सामग्री

सभी प्रकार के पक्षाघात या लकवों के लिए एक विशिष्ट प्रकार की हवन सामग्री बनाई जाती है, जिसमें निम्नलिखित सामग्री मिलाई जाती है-

1. एरंड मूल 2. कौंच बीज 3. उड़द 4. सोंठ
5. खिरैंटी (बला)मूल 6. रास्ना 7. अश्वगंधा 8. शतावर
6. सुगंधितृण(आज्ञाघास) 10. पिप्पली 11. पिप्पलामूल 12. चित्रक
13. ज्योतिष्मती (मालकांगनी) के बीज 14. सौंफ 15. बिल्व छाल
16. मीठी बच अथवा इसकी चौथाई कड़वी बच-उग्रगंधा 17. धमासा
18. अड़ूसा(वासा) 19. नागबला 20. देवदार 21. कचूर
22. हरड़ 23. चव्य 24. नागरमोथा 25. पुनर्नवा
26. गिलोय 27. विधारा 28. गोक्षुरू 29. चोपचीनी

30. अमलतास का गूदा 31. गोरखमुंडी 32. कटसरैया 33. धनिया
34. छोटी कटेरी 35. बड़ी कटेरी 36. ब्राह्मी 37.

उपरोक्त सभी 36 चीजें बराबर मात्रा में लें अर्थात् 100-100 ग्राम लें एवं 37वें-अतीस को 5 ग्राम ही लें।

उपर्युक्त सभी सैंतीस चीजों को लेकर उनका जौकुट पाउडर बना लेते हैं और इसे 'पक्षाघात रोग की विशिष्ट हवन सामग्री-नम्बर-२' का लेबल लगाकर एक डिब्बे में सुरक्षित रख लेते हैं। हवन करते समय पहले से तैयार की गई 'कॉमन हवन सामग्री-नम्बर-१' की बराबर मात्रा मिलाकर तब सूर्य गायत्री मंत्र से हवन करते हैं।

अन्य उपाय-उपचार

अ. क्वाथ

हवन करने के साथ ही उपर्युक्त सैंतीस चीजें, जो पक्षाघात की विशिष्ट हवन सामग्री नम्बर-२ में प्रयुक्त की गई हैं, उन सभी की सम्मिश्रित कुछ मात्रा लेकर अधिक बारीक कूट-पीसकर एक अलग पात्र में रख लेना चाहिए। इसी पाउडर में से प्रतिदिन ४० ग्राम (आठ चम्मच) पाउडर लेकर रात्रि को पौन लीटर (तीन पाव) पानी में स्टील के एक भगोने में भिगो देना चाहिए। सुबह इसी को बर्नर या चूल्हे पर चढ़ाकर मंद आँच में क्वाथ बनाना चाहिए। जब पानी उबलकर चौथाई रह जाए, तो उतारकर ठंडा होने पर बारीक कपड़े से छान लेना चाहिए।

तैयार क्वाथ की आधी मात्रा सुबह एवं आधी मात्रा शाम को पक्षाघात पीड़ित व्यक्ति को नित्य-नियमित रूप से पिलाते रहना चाहिए।

क्वाथ पिलाते समय उसमें एक चुटकी सोंठ चूर्ण या पिप्पली चूर्ण डाल देना चाहिए। कभी-कभी सप्ताह में एक बार चूर्ण के स्थान पर १० मि. ली. एरंड तैल (कैस्टर आयल) मिलाकर पिलाना चाहिए। फेसियल पैरालिसिस अर्थात् चेहरे के लकवे या अर्दित से पीड़ित व्यक्ति के क्वाथ में उक्त चूर्ण के स्थान पर भुना जीरा-१ ग्राम, सेंधा नमक-२ ग्राम, एवं घी से भुनी हुई हींग-२.५ ग्राम-तीनों का महीन पिसा हुआ चूर्ण मिलाकर ऊपर से १० मि.

ली. एरंड तैल मिलाकर तब पिलाना चाहिए। इससे अर्दित रोग जल्दी ठीक होता है।

(ब) पक्षाघातनाशक तैल

यज्ञ चिकित्सा एवं क्वाथ सेवन के साथ ही पक्षाघात पीड़ित अंग पर पक्षाघात नाशक तैल की मालिश करनी चाहिए। आयुर्वेद चिकित्सा में अभ्यंग-मालिश के लिए माषादि तैल, महानारायण तैल, बला तैल, ज्योतिष्मती तैल, (मालकांगनी तैल) आदि प्रभावकारी बताए गए हैं। लेकिन यहाँ पर एक सर्वाधिक प्रभावी व बनाने में सरल पक्षाघातनाशक तैल की विधि बताई जा रही है, जिसे हर कोई आसानी से बना सकता है और लकवे या पक्षाघात सहित सभी प्रकार के वातव्याधियों के अभिशाप से मुक्ति पा सकता है। तैल बनाने में प्रयुक्त होने वाली सामग्री इस प्रकार है-

1. आक के हरे पत्ते 2. सेहुँड़ के पत्ते 3. काले धतूरे के हरे पत्ते
4. एरंड के हरे पत्ते 5. बकायन या निर्गुंडी के हरे पत्ते 6. सहदेई
7. सँभालू के हरे पत्ते 8. सहजन के पत्ते 9. भृंगराज के पत्ते
10. महुए के पत्ते 11. भाँग के पत्ते 12. अश्वगंधा के पत्ते
13. मालकांगनी के पत्ते या बीज 14. अकरकरा 15. सफेद कनेर के पत्ते।

तैल बनाने की विधि

उपरोक्त सभी चीजों को समभाग में लेकर कूट-पीसकर इनका रस निकाल लें। रस के वजन के बराबर मात्रा में काले तिल का तैल मिलाकर उसे एक कड़ाही में मंद आँच पर पकने के लिए चढ़ा दें। तैल पकाते समय उपरोक्त सभी पन्द्रह वनस्पतियों की पत्तियों की चौथाई मात्रा लेकर अलग से सिल पर पीस लें और उसकी लुगदी बना लें। साथ में निम्न चीजें और मिला लें-

१,बच २. आमाहलदी ३. मैदा ४. सज्जीखार ५. राई और ६. सोंठ

इन्हे १०-१० ग्राम लेकर पानी के साथ पीसकर लुगदी में मिला लें। तैल बनाते समय इसे बीच कड़ाही में डाल दें और मंद आँच में तैल पकने दें। जब मात्र तैल शेष बच रहे, तब ठंडा होने पर उसे छानकर बोतल में भर लें। इसके बाद इसमें निम्नांकित चीजें और मिला लें-

१. वत्सनाभ- ३ ग्राम २. अफीम- ३ ग्राम, ३. कपूर चूर्ण- ३ ग्राम

अब इन्हे अच्छी तरह हिला दें। तैल उपयोग के लिए तैयार है। इस तैल से पीड़ित अंग पर दो-तीन बार मालिश करते समय तैल में थोड़ा-सा पिप्पली एवं कालीमिर्च का चूर्ण मिला लें। लकवा, फॉलिज एवं संधिवात आदि सभी वात-व्याधियों में यह अतीव लाभकारी सिद्ध होता है। पक्षाघात पीड़ित भागपर हरे मोथा को पीस कर मंद आँच पर गरम करके तीन-चार बार थोपते रहने से थोड़े ही दिनों में रोग मिट जाता है।

अध्याय-८

स्त्री एवं पुरुष रोगों की सरल यज्ञ चिकित्सा

★★★★★★★★★★

स्त्रियों में प्रदर एवं बाँझपन तथा पुरुषों में क्लैव्यता या नपुंसकता ऐसी बीमारियाँ हैं, जो जीवन को अंदर ही अंदर खोखला बना देती हैं। महिलाओं में प्रदर रोग को तो सर्वाधिक कष्टप्रद माना गया है। अधिसंख्य महिलाएँ इस महाव्याधि से पीड़ित पाई जाती हैं, जिसके कारण उनका स्वास्थ और सौंदर्य, दोनों ही दिन-प्रतिदिन गिरते जाते हैं। समय पर चिकित्सा न होने और रोग पुराना होने पर अनेकानेक व्याधियाँ घेर लेती हैं और अंततः जानलेवा साबित होती हैं।

१. प्रदर रोग का यज्ञोपचार-

रोगोत्पत्ति का कारण

मिथ्या आहार-विहार, अस्वच्छता एवं असंयम के कारण प्रदर रोग उत्पन्न होता है। प्रदर रोग उत्पन्न होने के कारणों का उल्लेख करते हुए आयुर्वेद के चिकित्सा ग्रंथ 'भावप्रकाश' के ६८वें अध्याय 'स्त्रीरोगाधिकारः' में कहा गया है-

> **विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद् गर्भप्रपातादतिमैथुनाच्च ।**
> **यानाध्वशोकादतिकर्षणाच्च भाराभिघाताच्छयनादि्दवा ॥**

विरुद्ध आहार करने से, शराब पीने से, भोजन पर भोजन करने से, अजीर्ण होने से, गर्भपात हो जाने से, अत्यधिक कामसेवन से, घोड़ा-गाड़ी आदि की अधिक सवारी करने से या इन पर चढ़कर अधिक तेज दैड़ने से,

बहुत शोक करने से, अधिक मार्ग चलने से, अधिक उपवास करने से, अधिक भार ढोने से, चोट लगने से तथा दिन में अधिक सोने से महिलाओं को यह कष्टप्रद प्रदर नामक रोग होता है।

चरक संहिता के अनुसार प्रायः उन महिलाओं को प्रदर रोग अधिक होता है, जो अत्यधिक उत्तेजक आहार, नमकीन, चरपरे, खट्टे, प्रदाही, चिकने पदार्थ, मांस-मदिरा, खिचड़ी, खीर, दही, सिरका जैसे पदार्थों का सदा या ज्यादा सेवन करती हैं। वैद्यविनोद में भी उल्लेख है-**'मद्यातिपानम् अतिमैथुन गर्भपाताज्जीर्णध्वशोकगयोगदिवातिनिद्रा। स्त्रीणामसृग्दरो भवतीति..।'** अर्थात अत्यधिक मद्यपान करने, अत्यंत काम सेवन करने, गर्भपात होने या बार-बार गर्भपात कराने, अजीर्ण-अपच होने, अधिक राह चलने, शोक करने, कृत्रिम विष का योग होने और दिन में अधिक सोने आदि कारणों से महिलाओं को असृग्दर अर्थात प्रदर रोग होता है।

अन्यान्य आयुर्वेद ग्रंथों में भी प्रदर रोग की उत्पत्ति के संबंध में इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है। उनके अनुसार विरुद्ध आहार-विहार, उपवास, दाह उत्पन्न करने वाले एवं उत्तेजक पदार्थ, भारी, कड़वे, अधिक खट्टे, नमकीन पदार्थ, मांसाहार, मद्यपान आदि प्रदर रोग को बढ़ाते हैं। अश्लील साहित्य, अश्लील वार्त्तालाप, उत्तेजक दृश्यावलोकन, अत्यधिक रति, अंगों की अस्वच्छता आदि कितने ही कारण ऐसे हैं, जो इस रोग की अभिवृद्धि करते हैं।

प्रदर रोग के स्वरूप का निर्धारण करते हुए शास्त्र कहते हैं-**'रजः प्रदीयते यस्मात्प्रदरस्तेन स्मृतः'** अर्थात रज को प्रक्षुब्ध करके दाह उत्पन्न करने वाले रोग को प्रदर कहते हैं। वस्तुतः यह गर्भाशय का रोग है, जिसमें उपर्युक्त कारणों से दूषित रज आर्तवकाल या उसके बाद भी अनियमित रूप से अल्प या अत्यधिक मात्रा में स्रवित होता रहता है। इसके चपेट में प्रायः हर आयु-वर्ग की स्त्रियाँ आ जाती हैं। बारह से बीस तक एवं पच्चीस से तीस वर्ष की अवस्था में यह रोग अधिक होता है। उपचार न हेने पर बढ़ती आयु के साथ-साथ यह गंभीर रूप धारण कर लेता है। ऐसी स्थिति में जो शारीरिक-मानसिक लक्षण प्रकट होते हैं, उनमें से प्रमुख हैं-शारीरिक कमजोरी, थकान, बेहोशी, रक्ताल्पता, हाथ-पैरों में जलन, दरद, तंद्रा, भ्रम,

व्यथा, संताप, बकवाद, तृष्णा, प्यास, मोह एवं बहुबिधि वातव्याधि। कमर दरद, अंगों का टूटना, शूल जैसी पीड़ा तो इस रोग में आम बात है।

प्रदर रोग के प्रकार

आयुर्वेशास्त्र के अनुसार प्रदर रोग चार तरह का होता है-**'तं श्लेष्मा-पित्तानिल सन्निपातैश्चतुष्प्रकारं प्रदरं वदन्ति।'** अर्थात यह रोग कफज, पित्तज, वातज, एवं सन्निपातज या त्रिदोषज-इस तरह चार प्रकार का होता है।

१. कफज प्रदर

यह प्राय: भारी एवं गरिष्ठ पदार्थों का अत्यधिक सेवन करने, दूध, मैदा, ठंडा पानी, वासी भोजन, कुपोषण एवं तनाव आदि कारणों से कफ के कुपित होने पर उत्पन्न होता है। इसमें गाढ़ा, श्वेत, किंचित पीले रंग का चिपचिपा, भारी, चिकना, शीतल तथा श्लेष्ममिश्रित रक्तस्राव प्राय: हर समय होता रहता है, किंतु ऋतुकाल के पूर्व एवं बाद में अधिक मात्रा में होता है। इसे ही 'श्वेत प्रदर' कहते हैं। इसमें पीड़ा कम होती है। रोग पुराना होने पर वमन, अरुचि, श्वास-कास, तलपेट में भार, जंघाओं का भारीपन तथा खिंचाव, दुर्बलता, कब्ज, सिरदरद एवं शिरोभ्रम आदि उपद्रव उठ खड़े होते हैं। पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान-एलोपैथी में कफज प्रदर को 'ल्यूकोरिया' कहते हैं। गर्भाशय की श्लैष्मिक झिल्ली में शोथ उत्पन्न होने या संक्रमण होने के कारण यह रोग उत्पन्न होता है। विवाहित-अविवाहित एवं सभी आयु-वर्ग की महिलाओं में यह रोग पाया जा सकता है।

२. पित्तज प्रदर

इसे रक्त प्रदर भी कहते हैं। यह रोग अधिकतर उन महिलाओं को होता है, जो नमकीन, खट्टे, खारे और गरम पदार्थों का अत्यधिक सेवन करती हैं। इससे पित्त प्रकुपित होता है और गर्भाशय की सूक्ष्म नलिकाओं में रक्त की अधिकता पैदा कर पित्तज या रक्त प्रदर उत्पन्न करता है। इसमें पीला, नीला, काला, लाल और गरम खून अनियमित रूप से पीड़ा के साथ निकलता रहता है। रक्त प्रदर के कारण रोगिणी की हथेलियों और पैर के तलवों में जलन, आँखों में जलन, कब्ज, रक्ताल्पता, शरीर में पीलापन, दुर्बलता, चक्कर आना, आँखों के आगे अँधेरा छा जाना, अधिक प्यास लगना, कमर दरद, स्वभाव में चिड़चिड़ापन, बुखार आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

पाश्चात्य चिकित्साविज्ञानी पित्तज प्रदर को 'मेट्रोरेजिया' और 'मेनोरेजिया' नाम से संबोधित करते हैं। ऋतुकाल में प्रथम चार-पाँच दिन में आर्तव स्राव के साथ अधिक रक्त निकलना 'मेनोरेजिया' एवं आर्तवकाल के बाद भी निरंतर या रुक-रुककर अधिक मात्रा में रक्त का निकलते रहना 'मेट्रोरेजिया' कहलाता है। वस्तुतः यही रक्त प्रदर है। इसके कई कारण माने जाते हैं, जैसे-गर्भाशय तंत्र का संक्रमण, ट्यूमर या शोथ, गर्भाशय स्थानभ्रंश, रक्तसंवहन तंत्र का दोष, हृदय या गुरदे की बीमारी, ब्रौंकाइटिस, तंत्रिका तंत्र के विकार, अंतःस्त्रावी ग्रंथियों का अधिक रसस्त्राव आदि। 'मेनोरेजिया' बहुधा अधिक विषय सेवन से या अधिक गरम जल से स्नान करने से अथवा अधिक मानसिक श्रम करने आदि कारणों से उत्पन्न होता है, जबकि मेट्रोरेजिया गर्भाशय की आंतरिक गड़बड़ियों के कारण उत्पन्न होता है। यह रोग अधिकतर तीस वर्ष की आयु के बाद होता है।

३. वातज प्रदर या कष्टार्तव

एलोपैथी चिकित्सा विज्ञान में इसे 'डिसमेनोरिया' कहते हैं। इसमें आर्तवकाल के समय रूखा, कालिमा लिए हुए लाल, झागदार एवं मांस के धोवन के रंग का थोड़ी-थीड़ी मात्रा में रक्तस्राव होता है। उस समय वायु की प्रबलता के कारण कमर, हृदय, वक्ष, पसली, पीठ, श्रोणिभाग आदि स्थानों में सुई चुभाने जैसी तीक्ष्ण पीड़ा होती है। दरद के मारे रोगिणी को बहुत बेचैनी होती है और कई बार तो वह बेहोश तक हो जाती है। एनीमिया (रक्ताल्पता), क्लोरोसिस, रिह्यूमेटिक या गॉउटी आर्थ्राइटिस, न्यूरेलजिया, नासिका विकार, न्यूरेस्थीनिया एवं जननेंद्रियात्मक आदि कई कारणों से डिसमेनोरिया अर्थात कष्टार्तव उत्पन्न होता है। गर्भाशय का विकृत विकास एवं रचनात्मक विकार इस रोगोत्पत्ति के प्रमुख कारण हैं।

४. त्रिदोषज या सन्निपातज प्रदर

यह वात, पित्त एवं कफ-तीनों दोषों के प्रकुपित होने से उत्पन्न होता है। इसमें शहद, घी, हरताल के समान रंग वाला, गरम, मज्जा के समान एवं सड़े हुए मुरदे के समान बदबूदार, लिबलिबा, पीला व जला हुआ-सा रक्त हमेशा निकलता रहता है। इसके कारण रोगिणी के शरीर में रक्त की कमी

हो जाती है। फलतः दुर्बलता, थकावट, चक्कर आना, मदात्यता, अत्यधिक प्यास, जलन, प्रलाप, शरीर में पीलापन, तंद्रा, बुखार एवं अनेकानेक वात व्याधियाँ घेर लेती हैं। प्रदर की यह स्थिति अत्यंत कष्टदायक एवं प्राणघातक होती है। अतः समय रहते इन सभी प्रकार के प्रदर रोगों की शीघ्र चिकित्सा की जानी चाहिए, अन्यथा बाद में पश्चात्ताप ही हाथ लगता है।

प्रदर रोग की यज्ञ चिकित्सा

आयुर्वेद ग्रंथों में प्रदर रोग के निवारणार्थ विभिन्न प्रकार के उपाय-उपचारों एवं योग-प्रयोगों का विस्तृत वर्णन किया गया है। सभी प्रयोग-उपचार अनुभवी एवं निष्णात चिकित्सकों के मार्गदर्शन में किए जाएँ, तो अत्यंत लाभकारी सिद्ध होते हैं। यहाँ पर इस संदर्भ में दी जा रही यज्ञोपचार प्रक्रिया सर्वाधिक निरापद, सर्वसुलभ एवं सर्वोपयोगी है। इसे हर कोई स्वयं एकाकी या सामूहिक रूप से संपन्न कर सकता है और स्थायी एवं शीघ्र स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सकता है। यहाँ ल्यूकोरिया अर्थात श्वेत प्रदर एवं मेट्रोरेजिया अर्थात रक्त प्रदर की यज्ञ चिकित्सा का अलग-अलग वर्णन किया जा रहा है।

(अ) ल्यूकोरिया अर्थात श्वेत प्रदर की विशेष हवन सामग्री

इस विशिष्ट हवन सामग्री को निम्नांकित वनौषधियों को मिलाकर बनाया जाता है-

1. धाय फूल
2. मोथा
3. शतावर
4. अश्वगंधा
5. गिलोय
6. एरंडमूल
7. चिकनी सुपारी
8. चिरायता
9. कुश (डाभ)
10. पाढ़ल
11. अंजीर
12. कठूमर
13. गूलर की छाल या फल
14. शिवलिंगी के बीज
15. अशोक की छाल
16. जटामांसी
17. उलटकंबल
18. बिल्वगिरी
19. श्वेत कमल
20. कमलकेशर
21. लोध्र
22. आँवला
23. करंज बीज की गिरी
24. हरड़
25. नागकेशर
26. कुड़ाछाल(कुटज)
27. श्वेत चंदन
28. शीतलचीनी
29. राल
30. साल की छाल
31. कड़वी तूंबी या लौकी के पत्ते
32. जियापोता
33. कपास की जड़ व गोंद (कतीरा)
34. तालमखाना या तुख्ममलंगा
35. बबूल की फली
36. रक्तरोहेड़ा
37. पटसन के फूल
38. देवदार

39. सागवन की छाल 40. पुनर्नवा 41. मुलहठी(मधुयष्ठी) 42. सोंठ
43. ढाक की छाल एवं गोंद(कमरकस) 44. दारुहलदी 45. अपामार्ग
46. काँटा चौलाई की जड़ 47. काँचनार 48. सौंफ
49. खीरा एवं ककड़ी के बीज 50. भिंडी की जड़ 51. माजूफल
52. सुगंधवाला 53. पीपल की छाल
54. काकजंघा 55. अनार के सूखे फूल।

उपर्युक्त पचपन चीजों को समभाग में लेकर कूट-पीसकर जौकुट पाउडर बना लेते हैं। जौकुट पाउडर को एक बड़े डिब्बे में रखकर उस पर 'ल्यूकोरिया की विशिष्ट हवन सामग्री-क्रमांक-२' का लेबल लगा देते हैं। श्वेत प्रदर की विशेष हवन सामग्री तैयार होने के पश्चात् पहले से तैयार की गई 'कॉमन हवन सामग्री क्रमांक-१' की बराबर मात्रा मिलाकर तब सूर्य गायत्री मंत्र से नित्यप्रति कम से कम चौबीस आहुतियाँ डालते हैं।

अन्यान्य प्रयोग-क्वाथ

हवन करने के साथ ही साथ उपर्युक्त ५५ वनौषधियों से निर्मित 'क्रमांक-२' के जौकुट पाउडर में से ५० ग्राम पाउडर लेकर उसका क्वाथ बनाना चाहिए। क्वाथ बनाते समय उसमें निम्न चीजें और मिला लेनी चाहिए-

1. खूनखराबा (एक तरह की गोंद)-2 रत्ती
2. सोनागेरू-2 ग्राम 3. भुनी हुई फूली फिटकरी-2 रत्ती
4. रसोत-1 ग्राम 5. मोचरस-1 ग्राम
6. अतीस-1 ग्राम 7. चोपचीनी-1 रत्ती।

उक्त सभी ५५ औषधियों के ५० ग्राम मात्रा के सम्मिश्रित चूर्ण के साथ ही यह सातों चीजें निर्धारित मात्रा में मिलाकर सायंकाल स्टील के एक भगोने में आधा लीटर पानी में भिगो देनी चाहिए। सुबह इसे मंद आँच पर चढ़ाकर क्वाथ बनाना चाहिए। चौथाई मात्रा शेष रहने पर उसे उतारकर ठंडा होने पर बारीक कपड़े से छान लेना चाहिए और आधी मात्रा सुबह एवं आधी मात्रा शाम को रोगी महिला को पिलाते रहना चाहिए।

ब. मेट्रोरेजिया अर्थात रक्त प्रदर की विशेष हवन सामग्री

रक्त प्रदर में अधिकांश औषधियाँ श्वेत प्रदर में प्रयुक्त होने वाली ही डाली जाती हैं, किंतु पित्तज प्रकृति होने एवं रक्ताधिक्य की बहुलता के कारण कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण वनौषधियाँ भी डाली जाती हैं। रक्त प्रदर में प्रयुक्त होने वाली विशेष हवन सामग्री में निम्नांकित चीजें मिलाई जाती हैं-

1. शिवलिंगी के बीज 2. उलटकंबल 3. धाय फूल 4. अर्जुन छाल
5. लाल चंदन 6. श्योनाक 7. उषवा 8. अडूसा(वासा)
9. आम की गुठली 10. चिरायता 12. कमलकेशर 13. दूर्बा
11. जामुन की गिरी 14. नागकेशर 15. बहुफली 16. खस
17. छोटी इलायची 18. मंजीष्ठ 19. मीठा कूठ 20. शरपुंखा
21. सेमर के फूल व गोंद (मोचरस) 22. हलदी 23. दारुहलदी
24. माजूफल 25. लाख 26. पद्माख 27. बला मूल
28. कुश की जड़ 29. आँवला 30. हरड़ 31. सुगंधवाला
32. देवदार 33. सोंठ 34. नीम छाल 35. गुलाब के फूल
36. अतिबला की जड़ 37. लोध्र 38. शतावर 39. अश्वगंधा
40. चिकनी सुपारी 41. एरंड मूल 42. गिलोय 43. अशोक छाल
44. ढाक की छाल व गोंद (कमरकस) 45. बिल्वगिरी 46. मुलहठी
47. काँटा चौलाई की जड़ 48. अपामार्ग 49. कठूमर
50. जटामांसी 51. पाकर 52. बादाम 53. गुंजा मूल
54. साल की छाल 55. पुनर्नवा एवं 56. छुआरे की गुठली।

उपर्युक्त सभी ५६ चीजों में से अधिक से अधिक जितनी उपलब्ध हो सकें, उन्हें बराबर मात्रा में लेकर जौकुट पाउडर बना लेना चाहिए और उस पर 'रक्त प्रदर की विशेष हवन सामग्री क्रमांक-२' का लेबल लगाकर अलग डिब्बे में रख लेना चाहिए। हवन करते समय 'कॉमन हवन सामग्री क्रमांक-१' को भी बराबर मात्रा में मिलाकर तब हवन करना चाहिए। हवन करने का मंत्र सूर्य गायत्री मंत्र ही रहेगा।

अन्य प्रयोग-क्वाथ

हवन करने के साथ ही साथ उक्त ५६ चीजों (हवन सामग्री क्रमांक-२ में वर्णित) के सम्मिलित पाउडर में से ५० ग्राम पाउडर लेकर पूर्व वर्णित क्वाथ की तरह काढ़ा बनाकर नित्यप्रति सुबह-शाम व्याधिपीड़ित महिला को पिलाते रहना चाहिए। क्वाथ बनाते समय उसमें भी खूनखराबा, सोनागेरू, तवे पर फूली हुई फिटकरी, रसोत, मोचरस, अतीस और चोपचीनी का चूर्ण निर्धारित मात्रा में मिला लेना चाहिए। काढ़ा या क्वाथ पीते समय उसमें अगर समभाग में चावल का माँड़ (स्टार्च) मिला लिया जाए, तो रोग निवारण के साथ ही शरीर को पोषण भी मिलता है और क्वाथ के औषधीय गुणों में गुणात्मक रूप से अभिवृद्धि होती है।

प्रदर रोग मुख्य रूप से आहार-विहार की गड़बड़ी, असंयम एवं अस्वच्छता के कारण उत्पन्न होता है। अतः उसका निदान भी तदनुरूप ही हो सकता है। आलू, चावल, मधुर द्रव्यों का सर्वथा परित्याग करना, खटाई, नीबू, दही, टमाटर, अचार, ठंडे पेय पदार्थों से बचना, संयमित एवं मर्यादित जीवनचर्या, आंतरिक स्वच्छता आदि का पालन करते हुए यज्ञोपचार प्रक्रिया अपनाई जाए, तो आयुर्वेद की इस विधा के माध्यम से सुनिश्चित रूप से आशातीत सफलता मिलती है।

२. यज्ञ से बंध्यत्व या बाँझपन की चिकित्सा

स्त्री रोगों में बंध्यत्व या बाँझपन को सबसे अधिक दुःखदायी माना जाता है। इसके कारण दांपत्य जीवन में अनेकानेक कठिनाइयों एवं मानसिक व्यथाओं का सामना करना पड़ता है। यों तो सामान्य बोलचाल की भाषा में बंध्यापन को ही बाँझपन मान लिया जाता है, किंतु गहराई से देखने पर दोनों में स्पष्ट अंतर दिखाई पड़ता है। बंध्यापन को अँगरेजी भाषा में 'इन्फर्टिलिटी' कहते हैं, जबकि बाँझपन को 'स्टर्लिटी' कहते हैं। सामान्य बंध्यत्व रोग गर्भाधन की असफलता के कारण होता है, जबकि बाँझपन पूर्ण बंध्यापन का परिचायक होता है। इसमें महिला के गर्भवती होने की संभावना नहीं रहती, किंतु बंध्यापन की समुचित चिकित्सा होने पर संतानोत्पत्ति में पूर्ण सफलता मिलती है।

आयुर्वेद शास्त्रों में बंध्यापन के कई प्रकार बताए गए हैं और इसके जन्मजात एवं अन्यान्य कितने ही कारण गिनाए गए हैं। चरक संहिता-शरीरस्थान २/५ में इन कारणों का उल्लेख करते हुए कहा गया है

योनि प्रदोषान्मनसोऽभितापाच्छुक्रासृगाहार विहारदोषात् ।
अकालयोगाद्बलसंक्षयाच्च गर्भं चिराद्विन्दति सप्रजापि ॥

बीस प्रकार के योनि रोगों में से किसी प्रकार के रोग होने से, अंग विशेष के दूषित होने या विकारग्रस्त होने से, किसी प्रकार का मानसिक आघात होने से, शुक्र या आर्तव के दूषित होने से, समुचित आहार-विहार का सेवन न करने से, अकाल अर्थात ऋतुकाल के अतिरिक्त समय में गर्भाधान होने से, रोगादिकों के कारण अथवा शरीर के निर्बल हो जाने के कारण, एक बार संतान को जन्म दे चुकने वाली अबंध्या स्त्री भी देर से गर्भ धारण करती है। बंध्यापन के कारणों का और अधिक स्पष्टीकरण करते हुए इसी में आगे कहा गया है-

'विंशतिर्व्यापदोयोनेर्निर्दिष्टारोग संग्रहे ।
न शुक्रं धारयत्येभिर्दोषैर्योनिरूपद्रुता तस्माद्गर्भे गृह्णाति स्त्री....॥'

आयुर्वेदाचार्यों के अनुसार बंध्यापन तीन दोषों के कारण होता है-(१) आधिदैविक, (२) आधिभौतिक और (३) आध्यात्मिक दोष। इनमें से अधिकांश आधिदैविक दोषों का निराकरण यज्ञोपचार प्रक्रिया द्वारा किया जा सकता है, जिसमें गायत्री महामंत्र या महामृत्युंजय का जप-अनुष्ठान भी सम्मिलित है। आधिभौतिक दोषों को दूर करने के लिए आधुनिक चिकित्सा प्रणाली द्वारा आवश्यक जाँच-पड़ताल करके तदनुरूप चिकित्सा उपचार किया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर शल्य क्रिया आदि का भी सहारा लिया जाता है। आध्यात्मिक दोषों के अंतर्गत स्वनिर्मित दोष आते हैं, जैसे-मानसिक दोष या मनोविकार, कुंठाएँ, अनिच्छा आदि। इन्हें दूर करने के लिए मनोचिकित्सा, जप, तप, ध्यान, ईशनिष्ठा आदि का आश्रय लेना पड़ता है। वैसे देखा जाए तो बंध्यत्व व क्लैव्यता से जुड़े सभी विकारों में ये परमावश्यक उपचार हैं।

स्त्रियों में बंध्यापन जिन कारणों, दोषों एवं कमियों के कारण होता है, उन्हें ध्यान में रखते हुए तदनुरूप चिकित्सा उपक्रम अपनाया जाता है। प्राचीनकाल से ही आयुर्वेदाचार्यों ने इस संबंध में गहन अध्ययन-अनुसंधान करके कितनी ही निरापद वनौषधियाँ खोज निकाली हैं, जिनके एकल या सम्मिलित प्रयोग से संतानहीन दंपतियों को सुसंतति की उपलब्धि होती रही है। आयुर्वेद ग्रंथों में इस तरह की कितनी ही वनौषधियों का वर्णन है, जिनको खाने एवं यज्ञीय उपयोग करने से बंध्यत्व रोग से छुटकारा पाया जा सकता है। अब तक के अनुसंधानों से यह सिद्ध हो चुका है कि यज्ञ चिकित्सा द्वारा साठ से सत्तर प्रतिशत तक सफलता पाई जा सकती है। किन्हीं-किन्हीं रोगों में व्यक्ति के शारीरिक दोषों के कारण कभी-कभी असफलताओं का भी सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में यज्ञोपचार एवं औषधियों को दोष नहीं दिया जा सकता। इस तरह के दोषों को दूर करने के लिए आयुर्वेद के आदि शल्य चिकित्सक सुश्रुत ने शल्य चिकित्सा का भी सहारा लेने का निर्देश किया है।

यज्ञोपचार द्वारा बंध्यापन दूर करने एवं गर्भपुष्टि के लिए इसके विभिन्न कारणों, दोषों एवं वात, पित्त, कफ, आदि प्रकृति के अनुसार अलग-अलग वनौषधियाँ मिलाई और तदनुरूप हवन सामग्री तैयार की जाती है। परंतु यहाँ पर सामान्य रूप से संतानोत्पत्ति के मार्ग में उत्पन्न हुई रुकावट को दूर करने एवं बंध्यत्व दोष को मिटाने के लिए एक विशेष प्रकार की सर्वसुलभ एवं सर्वोपयोगी हवन सामग्री दी जा रही है, जिसका हवन करने एवं खाने से मनोवांछित सफलता मिल सकती है।

बंध्यापन दूर करने की विशेष हवन सामग्री

इसमें निम्नलिखित वनौषधियाँ मिलाई जाती हैं-

1. सफेद फूलों वाली छोटी कंटकारी (लक्ष्मणा-पंचांग)
2. जियापोता (पुत्रजीवा) के फल या मूल
3. शिवलिंगी के बीज
4. श्वेत बरियारा (बला या खिरैंटी) की जड़
5. ब्रह्मदंडी-पंचांग
6. शरपुंखा की जड़
7. अपराजिता (विष्णुकांता) पंचांग
8. उलटकंबल
9. अशोक छाल
10. लोध्र

11. देवदार 12. अश्वगंधा 13. जीवक
14. बरगद के अंकुर (कोपल) 15. चंदन
16. खस 17. पद्माख 18. बच
19. दोनों सारिवा 20. चमेली के फूल 21. बालछड़
22. कुमुदिनी 23. नागबला (गंगेरन) की छाल या पत्ता
24. नागकेशर 25. जटामांसी 26. नागरमोथा
27. पीपल के पके फल के बीज 28. गूलर के पके फल
29. पारस पीपल की जड़ या बीज 30. कौंच (केवांच) की जड़ या बीज।

उक्त सभी ३० चीजों को बराबर मात्रा में लेकर कूट-पीसकर जौकुट चूर्ण बना लेते हैं और 'बंध्यापन दूर करने की विशेष हवन सामग्री-क्र.(२)' का लेबल लगाकर एक बड़े पात्र में रख लेते हैं। इन्हीं तीस चीजों के समग्र पाउडर की कुछ मात्रा को घोट-पीसकर अधिक बारीक करके कपड़छन कर लिया जाता है और उसे खाने के लिए अलग सुरक्षित डिब्बे में रख लिया जाता है। संतानोत्पत्ति की इच्छुक महिला को इसी बारीक पाउडर में से प्रतिदिन सुबह-शाम एक-एक चम्मच चूर्ण घी-शक्कर या गोदुग्ध के साथ हवन करने के पश्चात् खिलाया जाता है। यह प्रयोग कम से कम तीन माह तक (ऋतुकाल के चौथे दिन के बाद) अपनाना होता है। नित्य हवन करते समय उपर्युक्त तैयार 'हवन सामग्री क्र.-२' में पहले से तैयार 'कॉमन हवन सामग्री क्र.-१' को भी बराबर मात्रा में मिला लेते हैं। इसी में गोघृत, शक्कर, जौ और तिल मिलाकर तब सूर्य गायत्री मंत्र से हवन करते हैं।

समिधा-सुसंतति के लिए पीपल या पलाश की समिधा सबसे अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। इसमें भी उदुंबर (गूलर) को अधिक लाभकारी माना गया है।

३. गर्भपुष्टि की विशेष हवन सामग्री

इसमें निम्नलिखित चीजें मिलाई जाती हैं-

1. सौंफ 2. कासनी 3. धनिया 4. खस
5. खसखस(पोस्त बीज) 6. इंद्रजौ-मीठा 7. पलाश गोंद 8. मुनक्का
9. गुलाब के फूल 10. ब्रह्मदंडी।

इन सभी दस चीजों को बराबर मात्रा में लेकर जौकुट पाउडर बना लिया जाता है और एक पात्र में 'गर्भपुष्टि की विशेष हवन सामग्री क्र.-२' का लेबल लगाकर उसमें सुरक्षित रख लिया जाता है। इन्हीं दस चीजों की सम्मिलित मात्रा का कुछ भाग बारीक कूट-पीस करके कपड़छन कर लिया जाता है और उसे नित्य हवन के साथ खाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। खाने के लिए मात्रा-एक चम्मच सुबह एवं एक चम्मच शाम को गोदुग्ध अथवा घी एवं शक्कर के साथ है। गर्भवती महिलाओं के लिए यह विशेष रूप से उपयोगी है। इसको हवन करने और चूर्णरूप में खाने वाली माताओं की संतानें स्वस्थ, सुंदर, हृष्ट-पुष्ट एवं दीर्घजीवी होती हैं।

हवन करते समय पहले से तैयार की गई 'कॉमन हवन सामग्री-क्रमांक १' की बराबर मात्रा को उक्त 'गर्भपुष्टि की विशेष हवन सामग्री-क्रमांक-२' में मिलाकर तब सूर्य गायत्री मंत्र से हवन करते हैं। यह हवनोपचार पूरे गर्भकाल तक करते रहने से जननी एवं शिशु दोनों के लिए विशेष लाभकारी सिद्ध होता है। स्त्रीरोगों को दूर करने के लिए एवं सुसंतति की प्राप्ति के लिए हवनोपचार हेतु शास्त्रों में योनिकुण्ड के प्रयोग का निर्देश है।

प्रायः देखा जाता है कि कई बार गर्भवती महिलाओं को जी मिचलाने, चक्कर आने, उल्टी होने आदि से लेकर गर्भस्राव होने तक की अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में हवनोपचार के साथ उपरोक्त चूर्ण के स्थान पर गर्भस्थापना के तीसरे-चौथे महीने से गर्भिणी को निम्नलिखित 'गर्भरक्षक पौष्टिक चूर्ण' का सेवन कराना चाहिए।

गर्भ रक्षक पौष्टिक चूर्ण

इसमें निम्नलिखित चीजें मिलाई जाती हैं-

1. अकरकरा	- 6 ग्राम	2. जायफल	- 7 ग्राम
3. जावित्री	- 7 ग्राम	4. चित्रक	- 7 ग्राम
5. कपूरकचरी	- 7 ग्राम	6. धाय के फूल	- 7 ग्राम
7. तुख्ममलंगा	- 7 ग्राम	8. तज	- 7 ग्राम
9. बड़ी इलायची	- 7 ग्राम	10. अश्वगंधा	- 7 ग्राम
11. छोटी पीपल	- 10 ग्राम	12. काली मिर्च	- 10 ग्राम
13. बहमन-सुर्ख	- 10 ग्राम	14. बहमन श्वेत	- 10 ग्राम

15. दालचीनी – 18 ग्राम 16. ढाक(पलाश)के सूखे पत्ते–24 ग्राम
17. सोंठ –27 ग्राम 18. रूमीमस्तगी –27 ग्राम
19. मुक्ताशुक्ति भस्म या मुक्ता पिष्टी–10 ग्राम एवं 20. मिश्री–360 ग्राम।

इन सभी २० चीजों को कूट-पीसकर कपड़छन करके एकसार कर लेना चाहिए और हवन करने के बाद एक-एक चम्मच (तीन ग्राम) चूर्ण सुबह-शाम गोदुग्ध के साथ गर्भिणी को खिलाते रहना चाहिए। डायबिटीज से ग्रस्त गर्भिणी को मात्र क्र.-१ से क्र.-१९ तक की चीजों से बने पाउडर को ही चौथाई चम्मच की मात्रा में दोनों समय देना चाहिए। उसमें मिश्री नहीं मिलानी चाहिए। यह चूर्ण गर्भस्थ शिशु की इंद्रियों को पुष्ट कर उसे स्वस्थ, सुंदर और दीर्घजीवी बनाता है, मातृ-स्वास्थ्य को सही रखता और गर्भावस्था के समय होने वाले सभी उपद्रवों को शांत करता है।

४. मनचाही संतान

प्राय: देखा जाता है कि किन्हीं-किन्हीं परिवारों में मात्र कन्या शिशु ही जन्मती हैं। अत: जिन्हें बालक की चाहत हो, उन्हें चाहिए कि 'गर्भपुष्टि की विशेष हवन सामग्री' से हवन करने के साथ ही इच्छुक महिला को निम्नांकित में से किसी एक औषधि का सेवन करायें-

१. जियापोता (पुत्रजीवा) के पके हुए चार फल प्रतिदिन खिलायें अथवा

२. शिवलिंगी के सात बीज और मोरपंख का एक चंदोवा घोट-पीसकर प्रतिदिन खिलाना चाहिए। अथवा

३. शिवलिंगी के बीज-१० ग्राम, जियापोता के २१ फल, सफेद फूलों वाली छोटी कंटकारी की जड़ या पंचांग-१० ग्राम और मोरपंख का चंदोवा-७ नग लेकर सबको अच्छी तरह खरल करके आपस में मिश्रित करके ३० ग्राम पुराने गुड़ के साथ मिलाकर २१ गोलियाँ बनाकर खिलायें।

उक्त तीनों में से किसी एक प्रयोग को व्यवहार में लाते हुए प्रतिदिन प्रात:काल खाली पेट श्वेत बछड़े वाली गाय के दूध के साथ एक-एक मात्रा या एक-एक गोली ऋतुकाल के चौथे दिन के बाद सात दिन तक सुसंतति

की इच्छुक महिला को खिलाना चाहिए। इसी तरह अगले माह भी ७-७ दिन तक एक-एक खुराक खिलानी चाहिए। यही क्रम तीन महीने तक चलाना चाहिए। इसको सेवन करने के बाद एक घंटे तक कुछ नहीं खाना चाहिए। उपर्युक्त सभी उपचारों के साथ अत्यंत खट्टे, तीखे, चरपरे, खारे एवं गरम पदार्थों का परहेज करना आवश्यक है।

५. बच्चों की अस्वस्थता निवारण की विशेष हवन सामग्री

इसमें निम्नलिखित चीजें मिलाई जाती हैं-

1. अतीस 2. काकड़ासिंगी 3. नागरमोथा 4. छोटी पीपल
5. धनिया 6. धाय के फूल 7. मुलहठी 8. वासा
9. कंटकारी (कटैली फूल) 10. नीम पत्र।

इनमें से अतीस को चौथाई मात्रा में लेते हैं, शेष नौ चीजों को बराबर मात्रा में लेकर सबका सम्मिलित कपड़छन पाउडर तैयार कर लेते हैं और रोज सुबह-शाम बच्चे को एक-एक चम्मच चूर्ण जल के साथ खिलाते हैं।

हवन करते समय उपरोक्त दस चीजों से बने जौकुट सामग्री में बराबर मात्रा में 'कॉमन हवन सामग्री क्र.-१' को मिलाकर तब हवन करते है। हवन करने का मंत्र सूर्य गायत्री मंत्र ही रहेगा।

बच्चों के पेट में प्राय: कीड़े हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में- १. अतीस-१ ग्राम एवं २. बायविडंग-४ ग्राम लेकर दोनों को एक साथ अच्छी तरह खरल में घोट-पीसकर कपड़छन कर लेते हैं। तदुपरान्त इसमें से एक ग्राम चूर्ण एक चम्मच शहद में मिलाकर बच्चे को सुबह-शाम चटाते रहते हैं, तो पेट के कीड़े नष्ट हो जाते हैं। दो-चार दिन में ही इसके अच्छे परिणाम सामने आ जाते हैं।

६. पुरुष रोगों की यज्ञ चिकित्सा

स्त्रियों में बंध्यत्व रोग की तरह ही पुरुषों में विविध कारणों से उत्पन्न दोष या क्लैव्यता अथवा नपुंसकता भी संतानोत्पत्ति में एक बहुत बड़ी बाधा होती है। अत: इसके लिए अलग तरह की क्लैव्यतानाशक हवन सामग्री का प्रयोग किया जाता है।

क्लैव्यतानाशक विशिष्ट हवन सामग्री

इसमें निम्नलिखित चीजें समभाग में मिलाई जाती हैं-

1. गोक्षुरू 2. तालमखाना 3. अकरकरा 4. अश्वगंधा
5. शतावर 6. लौंग 7. जायफल 8. कपूर
9. कौंच बीज 10. श्वेत मूसली 11. काली मूसली 12. मुलहठी
13. बला (खिरैंटी) 14. बन उड़द 15. कदंब की गोंद 16. कायफल
17. भिलावा गिरी (शोधित)।

हवन करते समय उक्त चीजों से तैयार जौकुट हविर्द्रव्य में बराबर मात्रा में पूर्व वर्णित 'कॉमन हवन सामग्री क्र.-१' को भी मिला लेते हैं। क्र.-१ से १७ तक की ऊपर वर्णित वनौषधियों को हवन करने के साथ ही साथ खाने में भी प्रयुक्त करते हैं। इसके लिए इनके सम्मिलित पाउडर को अधिक बारीक कूट-पीसकर कपड़छन चूर्ण तैयार कर लेते हैं। इस चूर्ण की एक चम्मच मात्रा सुबह एवं एक चम्मच शाम को दूध के साथ या घी एवं शक्कर के साथ खाते हैं। भिलावा गिरी सदैव शोधन के बाद ही प्रयोग की जाती है। इसे हवन सामग्री में न मिलाकर अलग से तीन गिरी की मात्रा में प्रतिदिन अकेले भी खाया जा सकता है।

शोधन करने के लिए पके हुए काले भिलावे लेकर एक बोरी में डालते हैं और उसी में ईंट या खपरे के छोटे-छोटे टुकड़े डाल देते हैं। इसके बाद बोरी को उठाकर आधे घंटे तक चारों तरफ उलट-पुलटकर पटकते हैं। इससे भिलावे का विषैला रस ईंट या खपरे के टुकड़े सोख लेते हैं। इसके उपरांत भिलावा निकालकर अंदर की गिरी निकालते हैं। अंदर सफेद गिरी मिलेगी। इस बात का यहाँ विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि अगर किसी कारणवश हाथ में जलन होने लगे, तो नारियल का तेल लगा लें या घी चुपड़ लें। भिलावे के विषैले रस से बचने के लिए गिरी निकालते समय हाथ में कपड़ा या दस्ताना लपेट लेना चाहिए। क्लैव्यता मिटाने, आंतरिक दोषों को दूर करने में इस गिरी की विशेष भूमिका होती है।
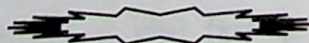
अध्याय-९

वेनेरियल डिसिजेज अर्थात् गुप्तरोगों की सरल यज्ञ चिकित्सा

★★★★★★★★★★

यज्ञ चिकित्सा अपने आप में सर्वांगपूर्ण चिकित्सा पद्धति है। इस उपचार-प्रक्रिया को अपनाने से न केवल शारीरिक-मानसिक आधि-व्याधियों का शमन होता है, वरन् यह जीवनीशक्ति का अभिवर्द्धन कर दोबारा रोगाणुओं के आक्रमण से भी व्यक्ति की रक्षा करती है। संक्रमणजन्य बीमारियों को दूर करने में यज्ञोपचार से आश्चर्यजनक रूप से सफलता मिलती है। विविध प्रकार के रोगाणु-विषाणुजन्य बुखार, क्षय, चेचक, प्लेग आदि से लेकर यौन संक्रमित रोगों का उपचार भी इस प्रक्रिया द्वारा सरलतापूर्वक किया जा सकता है और दीर्घायुष्य जीवन का आनंद उठाया जा सकता है। सोजाक, उपदंश, शैंकरायड एवं एड्स जैसी प्राणघातक एवं संसर्गज बीमारियों-गुप्त रोगों में यज्ञीय उपचार उपक्रम को अपनाया जाए, तो अन्यान्य चिकित्सा पद्धतियों की अपेक्षा यह अधिक कारगर, सुरक्षित एवं हानिरहित सिद्ध होती है। प्रायः सभी संक्रमणजन्य बीमारियों का पूर्ण उपचार इससे संभव है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में रतिज रोगों को संक्षेप में एस.टी.डी. अर्थात सेक्सुअली ट्रांसमीटेड डिसिजेज या वेनेरियल डिसिजेज कहते हैं। इसमें जिन प्रमुख रोगों की गणना होती है, उन्हें निम्न समूहों में बांटा जा सकता है-१. वायरसजन्य संक्रमण से होने वाले रतिज रोग, जैसे सायटोमिगोलो इन्फेक्शन एवं हरपीस वायरल इन्फेक्शन २. प्रोटोजोआ वर्ग के एककोशिकीय जीवाणुओं से होने वाले रतिज रोग, जैसे-ट्राइकोमोनिएसिस एवं शैंकरायड ३. क्लेमाइडियल इन्फेक्शन से होने वाले रोग-ग्रेन्युलोमा इन्गुइनल आदि ४. फंगल इन्फेक्शन से उत्पन्न कैन्डिडिएसिस एवं ५. बैक्टीरियाजन्य रतिज

रोग-गोनोरिया (सोजाक) एवं सिफलिस (उपदंश) आदि। एच.आई.वी. अर्थात एड्स की गणना भी यौन-संक्रमित रोग के अंतर्गत आती है। यह वायरसजन्य संसर्गज रोग है, जो व्यक्ति की प्रतिरक्षा प्रणाली-'इम्यून सिस्टम' पर सीधे प्रहार कर शीघ्रातिशीघ्र रोगी को मरणोन्मुख बना देता है।

यहां पर जिन रतिज रोगों या गुप्त रोगों की यज्ञ चिकित्साा का वर्णन किया जा रहा है, उनमें से तीन प्रमुख हैं-सोजाक (गोनोरिया), उपदंश या फिरंग (सिफलिस) एवं एड्स या ओजक्षय।

१. गोनोरिया या सोजाक की यज्ञ चिकित्सा

सोजाक को अँगरेजी में 'गोनोरिया' एवं आयुर्वेद में पूयमेह, व्रणमेह, औपसर्गिक मेह, आगंतुक मेह आदि नामों से जाना जाता है। इसे प्रमुख संक्रामक रोगों में गिना जाता है, जिसके कारण विश्वभर में संक्रमित व्यक्तियों की संख्या निरंतर बढ़ती जाती है। यह स्वच्छंदता एवं असुरक्षित यौन व्यवहार के कारण पनपने वाला रोग है, जिससे नर-नारी दोनों ही प्रभावित होते हैं । यह रोग एक वर्ग से दूसरे वर्ग में संसर्ग के द्वारा फैलता है। १५ से ३० वर्ष आयु के नर-नारी प्रायः इस संक्रमण के शिकार होते हैं।

गोनोरिया शीघ्रता से फैलने वाला संक्रामक रोग है। इसका प्रमुख कारण कॉफी के बीज के आकार के सूक्ष्म गोनोकोकस नामक बैक्टीरिया होते हैं, जिन्हें 'नाइसेरिया गोनोरी' कहते हैं। इसके जीवाणु मूत्रमार्ग एवं श्लेष्मल त्वचा से शरीर में प्रवेश करते हैं। इनका प्रमुख आक्रमण स्थल मूत्रजनन संस्थान एवं श्वेत रक्तकण होते हैं। समय पर चिकित्सा-उपचार न होने से यह रोग अपना विषैला प्रभाव मूत्रनलिका से लेकर पौरुष ग्रंथि, शुक्रवाही संस्थान, गर्भाशय ग्रीवा आदि अंग-अवयवों पर डालता है। परिणामस्वरूप जलन, पेशाब का बार-बार आना अर्थात मूत्रकृच्छ, मवाद निकलना, सूजन आदि प्रमुख लक्षण प्रकट होते हैं। कई बार गोनोकोकस बैक्टीरिया से दूषित हाथ का स्पर्श नेत्र, नाक आदि अंगों पर होने से क्रमशः नेत्राभिष्यंद एवं नासाशोथ हो जाता है। रेक्टम व फैरिंग्स भी इसके प्रभाव से अछूते नहीं रहते।

यों तो आधुनिक चिकित्साविज्ञानी सोजाक के शमन के लिए पेनिसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, टेट्रासाइक्लिन, सल्फोनामाइड जैसी तीव्र एंटीबायोटिक

दवाइयों का प्रयोग करते हैं और प्राय: तीन सप्ताह तक इस क्रम को चलाते हैं। आयुर्वेद चिकित्सा में विष से विष को मारने-**'विषस्य विषमौषधम्'** की प्रक्रिया अपनाई जाती है। कहा भी है-

औपदंशिक सौजाका व्रणा विषा समुद्‌भवाः ।
विषजातो यथा कीटो विषेणैव विपधते ॥

उपदंश और सोजक के व्रण या रोग विष से (विषाणुओं से) उत्पन्न होते हैं, अत: इन्हें नष्ट करने के लिए विषैली औषधियों का प्रयोग आवश्यक है। इसके लिए आयुर्वेद में सोमल (संखिया), रसकपूर (पारा) प्रभृति तत्वों को, जिन्हें परमविष कहा जाता है, उनके विविध योग इन आगंतुक संक्रामक रोगों एवं उनसे उद्‌भूत विकारों को दूर करने में प्रयुक्त होते हैं। सोजाक से पूरी तरह निजात पाने के लिए यज्ञोपचार प्रक्रिया का आश्रय लेने से अन्यान्य चिकित्सापद्धतियों की अपेक्षा यह रोग आसानी से ठीक हो जाता है तथा प्राणशक्ति, जीवनीशक्ति के अभिवर्द्धन के साथ-साथ दूसरे दुष्प्रभावों से रक्षा भी होती है।

गोनोरिया (सोजाक) हेतु विशेष हवन सामग्री

इसमें निम्नलिखित चीजें मिलाई जाती हैं-

1. अनंतमूल
2. अपराजिता-पंचांग
3. चोपचीनी
4. कालीमिर्च
5. अपामार्ग
6. गोक्षुरू
7. अतिबला(कंघी)पंचांग
8. विलायती बबूल के पत्ते (अरिमेद)
9. आमवृक्ष की छाल
10. पीपल की छाल
11. आंवला
12. इमली के वृक्ष की छाल
13. छोटी इलायची
14. कबावचीनी(शीतलचीनी)
15. कतीरा
16. गंधबिरोजा
17. कमरकस (समुद्रसोख)
18. कांटा चौलाई की जड़
19. दारुहलदी
20. खिरैंटी(बला) के बीज
21. रसौत
22. इंद्रजौ
23. गावजबान (गोजिह्वा)
24. बिधारा
25. मकोय-पंचांग
26. साल वृक्ष की छाल
27. मंजीष्ठ
28. शीशम
29. मोचरस (सेमर का गोंद)
30. शरपुंखा
31. सुरंजान
32. स्वर्णक्षीरी(सत्यानाशी मूल)
33. सौंफ
34. मुलहठी

35. रेवंदचीनी 36. चंदन-सफेद 27. नीम छाल
38. माजूफल 39. जवासा 40. हरड़
41. तृणपंचमूल (कुश, कांस, खस, ईख एवं शरकंडे की जड़)
42. दुग्धिका (दूधी-लाल) 43. शतावर 44. मेंहदी के पत्ते
45. कत्था या खैर की छाल।

उपर्युक्त सभी पैंतालिस चीजों को बराबर मात्रा में लेकर कूट-पीसकर उनका जौकुट पाउडर बना लेना चाहिए और उसे एक डिब्बे में सुरक्षित रख लेना चाहिए। साथ ही उस पर 'सोजाक रोग की विशेष हवन सामग्री-क्रमांक-२' का लेबल चिपका देना चाहिए। हवन करने से पूर्व उसमें बराबर मात्रा में पहले से तैयार की गई 'कॉमन हवन सामग्री-क्रमांक-१' को मिला लेते हैं। हवन के लिए समिधा हेतु पलाश या आम की सूखी लकड़ी प्रयुक्त की जाती है। हवन नित्य प्रात: काल एवं शाम को सूर्य गायत्री मंत्र से करना चाहिए। कम से कम चौबीस आहुतियाँ, अधिकतम इक्यावन या एक सौ आठ आहुतियाँ दी जा सकती हैं। हवन करने के साथ-साथ क्वाथ लेना अधिक लाभकारी सिद्ध होता है।

क्वाथ

इसके लिए उपर्युक्त सभी ४५ चीजों से बने जौकुट पाउडर (सोजाक रोग की विशेष हवन सामग्री क्र.-२ में वर्णित) में से रोग की तीव्रता के अनुसार ५ से १० चम्मच पाउडर लेकर उसे शाम को स्टील के एक भगोने में आधा लीटर पानी में भिगो देना चाहिए। सुबह मंद आँच पर पकाना चाहिए और चौथाई अंश शेष रहने पर उसे उतारकर ठंडा होने पर साफ कपड़े से छान लेना चाहिए। हवन करने के बाद क्वाथ की आधी मात्रा सुबह एवं आधी मात्रा शाम को रोगी को पिलाते रहना चाहिए। यहाँ ध्यान देने योग्य विशेष बात यह है कि उपर्युक्त हवन सामग्री क्रमांक-२ में सम्मिलित कतीरा, कत्था, गंधबिरोजा, रसौत एवं मोचरस जैसी चीजों को हवन सामग्री में न मिलाकर केवल क्वाथ वाले जौकुट पाउडर में मिलाकर भी सेवन किया जा सकता है।

गोनोरिया नाशक चूर्ण

गोनोरिया अर्थात पूयमेह में निम्नांकित औषधियों को मिलाकर बनाया गया चूर्ण भी बहुत फायदेमंद सिद्ध होता है। इसमें मिलाई जाने वाली चीजें इस प्रकार हैं-

1. चोपचीनी-60 ग्राम 2. रसौत-60 ग्राम 3. सफेद जीरा-60 ग्राम
4. मुलहठी-60 ग्राम 5. शीतलचीनी-60ग्राम 6. गिलोय-60 ग्राम
7. चंदन-60 ग्राम 8. निशोथ-60 ग्राम 9. दारुहलदी-60 ग्राम
10. स्वर्णक्षीरी मूल की छाल-60 ग्राम 11. इंद्रजौ-30 ग्राम
12. बंशलोचन-30 ग्राम 13. शुद्ध गंधक-30ग्राम 14. राल चूर्ण-30 ग्राम
15. शुद्धफिटकिरी-30ग्राम 16. कत्था-30 ग्राम 17. शुद्ध गेरू-30 ग्राम
18. मंजीष्ठ-30 ग्राम 19. मेंहदी-30 ग्राम 20. शुद्ध यवक्षार-30ग्राम
21. कलमी शोरा (मीठा सोडा)-30 ग्राम 22. गंधबिरोजा-30 ग्राम
23. छोटीइलायची-30ग्राम 24. पलाश पुष्प-30ग्राम 25. रेवंदचीनी-30 ग्राम
26. पाषाणभेद-30 ग्राम।

उपर्युक्त सभी घटक द्रव्यों को साफ-शुद्ध करके कूट-पीसकर एवं खरल करके एकरस कर लेना चाहिए और ठंडे पानी से दिन में तीन बार २-२ ग्राम की मात्रा में रोगी को तब तक सेवन कराना चाहिए, जब तक कि रोग समूल नष्ट न हो जाए।

पथ्य-परहेज

यज्ञोपचार एवं औषधि सेवनकाल में पथ्य-परहेज का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए। गोनोरिया-सोजाक के रोगी को रोगमुक्त होने तक संयम का पालन करना चाहिए। दौड़-धूप करना, नाचना, घोड़े की सवारी करना, साइकिल चलाना, स्त्री-संसर्ग आदि छोड़ देना चाहिए। चाय, कॉफी, मांस-मछली, गरम मसाले, मद्यपान, खट्टे पदार्थ आदि का सेवन नहीं करना चाहिए। कामोत्तेजक दृश्यों-विषयों के दर्शन, भाषण, मनन-चिंतन से बचना चाहिए। रोगी को पथ्य में शीघ्र पचने वाले हलके तथा ठंडे आहार देना चाहिए। जौ, गेहूँ का दलिया, मूँग दाल, पुराने चावल की खिचड़ी, पतली रोटी, डबल रोटी, हरी शाक, पालक, चौलाई, बथुआ, तोरई, घिया-लौकी की सब्जी,

बकरी या गाय का दूध, दूध की लस्सी, नीबू का शर्बत, नारियल के पानी का सेवन इस रोग में हितकारी हैं। पथ्य-परहेजयुक्त संयमित जीवनचर्या स्वास्थ-रक्षा के स्वर्णिम सूत्र हैं, इन्हें ध्यान में रखा जाना चाहिए।

२. सिफलिस या उपदंश का यज्ञोपचार

गोनोरिया की अपेक्षा सिफलिस अधिक घातक होता है। आयुर्वेद में इसी को फिरंग, आतशक, उपदंश आदि कहा जाता है। सामान्य बोल-चाल की भाषा में इसे ही 'गरमी का रोग' कहा जाता है। फिरंग रोग को परिभाषित करते हुए भैषज्य रत्नावली नामक प्रमुख आयुर्वेद ग्रंथ में कहा गया है-

फिरङ्गसंज्ञके देशे बाहुल्येनैव यद्भवेत ।
तस्मात्फिरङ्ग इत्युक्तो व्याधिर्व्याधिविशारदैः॥

अर्थात् यह रोग फिरंग नामक देश अर्थात यूरोपीय देशों में बहुतायत से होता है, इसीलिए व्याधि विद्याविशारदों ने इसे 'फिरंग' नाम से संबोधित किया है। इसी ग्रंथ में आगे उल्लेख है-

गंधरोगः फिरङ्गोऽयंजायते देहिनांध्रुवम् ।
फिरङ्गिनोऽङ्गसंसर्गात्फिरङ्गिण्याःप्रसङ्गतः ॥

यह रोग गंध से उत्पन्न होने वाला है, अतः इसे गंध रोग भी कहते हैं। यह रोग फिरंग देश (अँगरेज) के मनुष्यों के अंग संसर्ग एवं संक्रमित महिलाओं के साथ प्रसंग करने से उत्पन्न होता है। इस प्रकार यह एक आगंतुक रोग है और इसमें दोषों का संक्रमण बाद में होता है। फिरंग रोग के भेदों एवं लक्षणों का निरूपण करते हुए कहा गया है-

फिरङ्गस्त्रिविधो ज्ञेयो बाह्याभ्यन्यतरस्तथा ।
बहिरन्तर्भवश्चापितेषांलिङ्गानि च ब्रुवे ॥

तत्रबाह्यःफिरङ्गःस्याद्विस्फोट सदृशाल्परुक् ।
स्फुटितोब्रणवद्वैद्यैः सुखसाध्योऽपिसस्मृतः ॥

सन्धिष्वाभ्यन्तरःस स्यादामवात इव व्यथाम्।
शोथञ्चजनयेदेष कष्टसाध्यौबुधैः स्मृतः ॥

अर्थात् यह रोग तीन प्रकार का होता है-१. बाह्य २. आभ्यंतर और ३. बहिरंतर्भव अर्थात बाहर और भीतर, दोनों स्थानों पर होने वाला। इनमें से बाहरी उपदंश विस्फोट के समान होता है, जिसमें पीड़ा कम होती है तथा व्रण के समान फूटता है। यह सहज साध्य होता है। आभ्यंतर फिरंग या उपदंश संधियों में होता है और इसमें आमवात-गठियावात के समान पीड़ा होती है। यह सूजन भी उत्पन्न करता है। इसे कष्टसाध्य माना जाता है।

रोगोत्पत्ति का कारण

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार सिफलिस अर्थात फिरंग रोग का संक्रमण स्प्रिंग के आकार के स्पाइरोकीट नामक बैक्टीरिया से होता है, जिसे 'ट्रिपोनिमा पैलिडम' कहते हैं। सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखने पर ये जीवाणु सर्प के समान टेढ़े-मेढ़े आकार में दिखाई पड़ते हैं। इनका संक्रमण संक्रमित स्त्री से पुरुष में और पुरुष से स्त्री में संसर्ग के कारण होता है। इसके अतिरिक्त ट्रिपोनिमा पैलिडम से दूषित व्यक्ति के रक्त या प्लाज्मा का ट्रांसफ्यूजन अर्थात आधान दूसरे व्यक्ति में करने से भी यह रोग उसे लग जाता है। कभी-कभी रोगी के व्रण आदि के स्राव के संपर्क में आने से भी यह बीमारी हो जाती है। कटी-फटी त्वचा के संपर्क से भी इसके जीवाणु शरीर के अंदर पहुँच जाते हैं। वंश परंपरा से अर्थात संक्रमित माता-पिता से यह रोग नवजात शिशु में भी हो जाता है, जिसे 'कन्जेनाइटिल सिफलिस' कहते हैं।

यों तो उपर्युक्त कई कारणों से उपदंश के जीवाणु मनष्य के शरीर में प्रवेश करते हैं, परंतु सबसे ज्यादा संक्रमण असंयम एवं अमर्यादित यौन व्यवहार के कारण होता है। चार अवस्थाओं में फैलने वाले इस रोग के लक्षण संक्रमण के १७ से २८ दिन के अंदर ही हार्डशैंकर या व्रण के रूप में परिलक्षित होने लगते हैं। यह रोग की प्रथम अवस्था होती है। इसके बाद रोग धीरे-धीरे बढ़ता है और तीन माह से लेकर दो वर्ष तक इसकी द्वितीयावस्था रहती है। इसमें रोगी के शरीर पर रोग के छोटे-छोटे दाने निकलने लगते हैं एवं त्वचा पर जहाँ-तहाँ खराश या ताँबे के रंग के चकत्ते से उभरने लगते हैं। इसके बाद से लेकर बीस से तीस वर्षों तक तृतीयावस्था होती है, जिसमें शरीर के विभिन्न भागों में कष्टदायी गाँठें निकल आती हैं,

जिनसे लसलसा स्राव निकलता रहता है। समय पर चिकित्सा-उपचार न कराने से यह रोग अपनी चतुर्थ अवस्था में चहुँच जाता है। इस अवस्था में रोगकारक बैक्टीरिया शरीर के अंदरूनी हिस्से, यथा-अस्थि संस्थान, तंत्रिकातंत्र, मस्तिष्क आदि में प्रवेश कर जाते हैं और अनेकानेक विकृतियाँ पैदा करते हैं। यह सर्वाधिक कष्टदायी अवस्था होती है, जो रोगी को मृत्यु के मुख में धकेल देती है।

बच्चों में यह रोग संक्रमित माता से गर्भस्थ शिशु में पहुँच जाता है। ऐसी स्थिति में शिशु की गर्भ में ही मृत्यु हो सकती है और यदि वह जन्म भी लेता है, तो कन्जेनाइटिल सिफलिस से ग्रस्त होता है। जैसे-जैसे रोग पुराना होता जाता है, रोगी की त्वचा पर अनेक प्रकार की विकृतियाँ उभरने लगती हैं। तब शरीर का ऐसा एक भी अंग-अवयव या तंत्र नहीं बचता, जो विकारग्रस्त दृष्टिगोचर न होता हो। मूत्र-जनन संस्थान से आरंभ होकर यह रोग हृदय एवं रक्तवाही संस्थान से लेकर सुषुम्ना एवं मस्तिष्क सहित समूचे तंत्रिकातंत्र एवं हड्डियों के जोड़ तक को प्रभावित करता है। इसके कारण हृदय संबंधी अनेक बीमारियाँ, न्यूरोसिफलिस जैसे जटिल मस्तिष्कीय रोग, गठिया, पक्षाघात जैसी अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होकर रोगी के लिए प्राणघातक बन जाती हैं।

सुश्रुत संहिता के अनुसार उपदंश पाँच प्रकार का होता है-वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज एवं रक्तज। इस संबंध में उल्लेख है-'स पंचविधस्त्रिभिर्दोषैः पृथक् समस्तैरसृजा चैकः।' अर्थात यह रोग तीन अलग-अलग दोषों अर्थात वात, पित्त और कफ से तीन प्रकार का दोष मिलने पर त्रिदोषज और पाँचवाँ भेद रक्तविकार से होता है। इससे उत्पन्न विकारों का वर्णन करते हुए सुश्रुत कहते हैं - "उपदंश रोग पुराना हो जाने पर कृशता-दुर्बलता, बलक्षय, नाक का बैठना-नासाभंग, अग्निमंदता, हड्डियों में सूजन एवं हड्डियों का टेढ़ा होना आदि लक्षण स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगते हैं।"

यज्ञोपचार

कभी इस रोग की भयावहता सर्वविदित थी, परंतु आधुनिक चिकित्सा ने पेनिसिलीन, पामपेनिसिलीन, एरिथ्रोमाइसिन तथा और भी तीव्र स्तर की एण्टीबायोटिक औषधियों के अनुसंधान के साथ ही इस पर काबू पा

लिया है। यह रोग अब लाइलाज नहीं रहा, फिर भी इन दवाओं के दुष्प्रभाव अत्यधिक हैं। वे जीवनीशक्ति को निचोड़ लेती हैं। इतने पर भी पिछले कुछ वर्षों से बढ़ती यौन स्वच्छंदता के कारण 'एड्स' के साथ-साथ उपदंश का संक्रमण भी तीव्रता से फैलने लगा है। लोक-लज्जा एवं संकोच के कारण कितने ही लोग नीम-हकीमों के चक्कर में फँसकर अपना पैसा और स्वास्थ्य, दोनों ही गँवा बैठते हैं। ऐसी स्थिति में उनके लिए आशा की किरण एकमात्र आयुर्वेदीय चिकित्सा ही नजर आती है।

आयुर्वेद में उपदंश की रोकथाम के लिए विष से विष को मारने की युक्ति पर पारद एवं शंखिया प्रभृति तत्त्वों एवं उनके यौगिकों को प्रयुक्त किया जाता है। परंतु इनके सेवनकाल में असावधानी बरतने या औषधि निर्माण में कच्चापन या त्रुटि रहने पर कई बार मुँह पकने से लेकर औषधि-विषाक्तता तक के दुष्परिणाम सामने आते हैं। ऐसी स्थिति में यज्ञोपचार प्रक्रिया का आश्रय लेकर रोग को नियंत्रित किया और उसे समूल नष्ट किया जा सकता है। यज्ञ चिकित्सा से रोग का उन्मूलन तो होता ही है, साथ ही साथ जीवनीशक्ति का अभिवर्द्धन एवं रोग प्रतिरोधी क्षमता का विकास भी होता है। इसमें किसी प्रकार के 'साइड इफेक्ट्स' अर्थात दुष्प्रभाव की आशंका भी नहीं रहती। चिकित्सकीय हवि-ऊर्जा के समीप उपस्थित लोग भी यज्ञीय ऊर्जा की उस जीवनीशक्ति संवर्द्धक प्रक्रिया से अनायास ही लाभान्वित होते रहते हैं। उपदंश रोग में प्रयुक्त होने वाली विशिष्ट हवन सामग्री इस प्रकार है-

सिफलिस (उपदंश) रोग की विशेष हवन सामग्री

इसमें निम्लिखित वनौषधियाँ मिलाई जाती हैं-

1. पाठा 2. दारुहलदी 3. रसौत 4. चोपचीनी
5. नीम छाल 6. आक-मूल 7. चित्रक 8. शरपुंखा
9. गुलब्बास(फोर'ओ क्लॉक)के पत्ते 10.श्वेत अपराजिता-पंचांग 11.सुपारी
12. स्वर्णक्षीरी-मूल 13.चमेली के पत्ते 14. कत्था या खैर की छाल
15. काले धतूरे की जड़ 16. श्वेत गुड़हल की जड़
17. मकोय-पत्ते या पंचांग 18. शीतलचीनी (कबावचीनी)
19. अनंतमूल 20. अरणी (अग्निमंथ) 21. कनेर-मूल

22. काँटा चौलाई	23. दूर्बा-मूल	24. मंजीष्ठ
25. चिरायता	26. गिलोय	27. कटसरैया
28. विलायती बबूल (अरिमेद) के पत्ते		29. कसौंदी के पत्ते
30. कड़ुई तोरई के बीज	31. शीशम की छाल	32. लौंग
33. त्रिफला (आँवला, हरड़, बहेड़ा-समभाग)		34. दालचीनी
35. लाल चंदन एवं श्वेत चंदन		36. सुरंजान-मीठा
37. खुरासानी अजवायन	38. अजमोद	39. गुग्गुल
40. जायफल	41. जावित्री	42. विजयसार
43. बरगद की जड़ एवं पत्ते	44. अपामार्ग	45. भृंगराज
46.गावजबान (गोजिह्वा)	47. छिरेंटा (जलजमनी) की जड़	
48. पर्णबीज (ब्रायोफिलम) की जड़		49. इंद्रायण-मूल
50. अकरकरा	51. तालमखाना	52. सौंफ
53. सनाय	54. मुनक्का	55. सारिवा
56. नागरमोथा	57. तुलसी	
58. कतीरा (ढाक की गोंद)	59. काली मिरच	60. बबूल के फूल।

उपर्युक्त सभी चीजों को बराबर मात्रा में लेकर उनको कूट-पीसकर जौकुट पाउडर बना लिया जाता है। इनमें से जो औषधियाँ तत्काल उपलब्ध न हो सकें, तो उन्हें छोड़कर शेष को एकत्र करके उन्हें साफ करके सुखा लेना चाहिए और उनकी हवन सामग्री तैयार करके बिना देरी किए हवन आरंभ कर देना चाहिए। हवन करते समय पहले से तैयार की गई 'कॉमन हवन सामग्री-क्रमांक-१' बराबर मात्रा में लेकर 'उपदंश रोग की विशेष हवन सामग्री-क्रमांक-२' में मिला लेते हैं अर्थात आधी मात्रा क्रमांक-१ की व आधी मात्रा क्रमांक-२ की मिलाकर तब सूर्य गायत्री मंत्र से हवन करते हैं।

चिकित्सकीय हवन सुबह सूर्योदय के समय एवं शाम को सूर्यास्त काल में दोनों वक्त किया जाए, तो अधिक लाभकारी होता है, अन्यथा एक समय तो अवश्य ही करना चाहिए । हवन के लिए पलाश, आम या गूलर की समिधा प्रयुक्त करनी चाहिए।

शीघ्र स्वास्थ्य लाभ के लिए रोगी को उपर्युक्त विधि से यज्ञोपचार के साथ-साथ क्वाथ सेवन करना भी आवश्यक है। क्वाथ (काढ़ा) बनाने के

लिए ऊपर बताई गई 'उपदंश रोग की विशेष हवन सामग्री-क्रमांक (२)' में वर्णित सभी ६० औषधियों को समभाग में लेकर अधिक कूट-पीसकर जौकुट चूर्ण के रूप में तैयार कर लेते हैं। इस पाउडर की ३० ग्राम मात्रा लेकर स्टील के भगोने में आधा लीटर स्वच्छ जल में रत्रि में भिगो देते हैं और सुबह मंद आँच (सिम बर्नर) पर इसे पकाते हैं। उबलते-उबलते जब काढ़ा चौथाई अंश शेष रह जाता है, तो इसे बर्नर पर से उतारकर ठंडा होने पर स्वच्छ कपड़े से छान लेते हैं। तैयार क्वाथ की आधी मात्रा सुबह ९-१० बजे तक एवं शेष आधी मात्रा शाम ४-५ बजे तक पी लेना चाहिए।

अन्य चिकित्सोपचार

उपदंश रोग पुराना हो जाने पर अनेकानेक प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों के साथ ही रक्त विकार एवं त्वचा रोग भी उभर आते हैं। ऐसी स्थिति में स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी) रस का प्रयोग लाभकारी सिद्ध होता है। बिना फूल और फल वाले स्वर्णक्षीरी पौधे का ताजा (पंचांग का) स्वरस निकाल लेते हैं। इसमें से ३० मि. ली. स्वरस को ३० मि. ली. शहद में अच्छी तरह मिलाकर नित्य प्रात: खाली पेट रोगी को पिलाते हैं। तीन-चार दिन में ही रोगी को आराम लगने लगता है। इसका स्वरस अकेले पीने से वमन और विरेचन दोनों होने लगते हैं, अत: शहद के साथ ही रस पीना चाहिए। इससे यह समस्या नहीं रहती। रस पीने के बाद २-४ दाने काली मिरच के चबाने से वोमेटिंग सेन्सेसन (मितली) समाप्त हो जाती है।

पहले दिन पीने से यदि पतले दस्त होने लगे, तो दूसरे दिन नहीं देना चाहिए। दस्त बंद होने के बाद दुबारा इसे तीन या चार दिन के अन्तराल से देना चाहिए। कम से कम तीन बार और अधिक से अधिक सात बार तक स्वर्णक्षीरी रस का सेवन किया जा सकता है। उपदंश रोग की यह सर्वोत्तम औषधि है। इसे गोनोरिया अर्थात सोजक में भी दे सकते हैं। ताजे हरे स्वर्णक्षीरी पौधे (सत्यानाशी) उपलब्ध न होने की स्थिति में इसकी जड़ की छाल का चूर्ण २-३ रत्ती मात्रा में लेकर शहद तथा ३ ग्राम गिलोय सत्व के साथ मिलाकर चाटने से भी सप्ताह भर में उपदंश रोग मिट जाता है। सत्यानाशी (स्वर्णक्षीरी) में रक्त शोधन के अद्‌भुत गुण विद्यमान हैं।

यज्ञ चिकित्सा के साथ ही साथ उपरोक्त क्वाथ सेवन एवं स्वर्णक्षीरी रस का सेवन उपदंश रोग को समूल नष्ट कर देता है। रोग की चतुर्थ अवस्था तक पहुँचे हुए रोगी भी इस उपचार से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सकते हैं और आनन्दमय जीवन बिता सकते हैं। इसमें पथ्य-परहेज का विशेष ध्यान रखा जाता है।

सिफलिस या उपदंश गरमी का रोग है । इसे दूर करने के लिए जो औषधियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं, अधिकतर वे गरम प्रकृति की होती हैं। अत: जब तक यह चिकित्सा क्रम चले, तब तक रोगी व्यक्ति को ठंडी चीजें, फ्रिज का पानी, कोल्ड ड्रिंक्स, ठंडे पानी से स्नान आदि से विशेष रूप से परहेज करना चाहिए। इसके अतिरिक्त दिन में सोना, मूत्रवेग रोकना, भारी एवं गरिष्ट पदार्थ-अन्न या भोजन, स्त्री प्रसंग, अत्यधिक परिश्रम, गुड़, मीठा, लवण, खट्टे एवं अम्लीय पदार्थ जैसे-नीबू, अचार, इमली, मद्यपान आदि से सर्वथा बचना चाहिए।

औषधि-सेवनकाल में नमक नहीं खाना चाहिए। यदि नमक के बिना भोजन अच्छा न लगे, तो अल्प मात्रा में सेंधा नमक लिया जा सकता है। आहार में गेहूँ, जौ, चने की रोटी, पुराना चावल, हरी शाक-सब्जियाँ, करेला, सहजन की फली, लौकी, कुंदरू, परवल, लौकी, मूँग दाल, अरहर दाल, अदरक, तिक्त और कसैले पदार्थ, घी, गौदुग्ध, शहद, तिल तैल, गरम पानी, कुएँ का पानी आदि पथ्य हैं।

३. प्राणघातक रोग-एड्स या ओजक्षय की यज्ञ चिकित्सा

हमारे शरीर में जिस शक्ति की उपस्थिति से जीवन की स्थिरता बनी रहती है और शरीर के समस्त अंग-अवयव एवं इंद्रियसमूह अपने-अपने क्रिया-कलाप स्वाभाविक रूप से करने में समर्थ होते हैं, उसे जीवनीशक्ति या 'ओज' कहते हैं। शरीर की समूची क्रियाप्रणाली इसी शक्ति द्वारा संचालित होती है। जब हम उपार्जन की अपेक्षा इस शक्ति का अपव्यय अधिक करने लगते हैं, तो यह घटने लगती है और शरीर अनेकानेक बीमारियों का अड्डा बन जाता है। विविध प्रकार के रोगाणुओं-विषाणुओं के आक्रमण से शरीर जर्जर एवं जीर्ण-शीर्ण हो जाता है। कभी-कभी तो प्राणों का संकट तक उत्पन्न हो जाता है।

जीवनीशक्ति या ओज का अपव्यय स्थूल परिश्रम की अपेक्षा इंद्रिय भोगों जैसे सूक्ष्म क्रिया-कलापों में अधिक होता है। जो लोग विषय-वासनाओं की पूर्ति में अधिक लिप्त रहते हैं, उनकी जीवनीशक्ति का ह्रास भी अधिक होता है। ओज की महत्ता का प्रतिपादन विविध आयुर्वेद ग्रंथों में प्रायः एक जैसा ही है।

जीवन में ओज की महिमा-महत्ता एवं उपयोगिता

आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रंथ चरक संहिता के निदान स्थान (६/१) में इस संबंध में कहा गया है-

आहरस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः।
क्षयोह्यस्य बहून् रोगान्मरणं वा नियच्छति॥

अर्थात आहार का परम सार शुक्र है, अतः उसकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए अन्यथा इस शुक्र का क्षय बहुत से रोगों को जन्म देता है और यहाँ तक कि मौत को भी आमंत्रण देता है।"

आयुर्वेद शास्त्रों में 'ओज' या जीवनीशक्ति की रक्षा को सर्वाधिक महत्ता प्रदान की गई है। चरक संहिता, सूत्र स्थान ३०/९-११ में कहा गया है-"जिस ओज से पोषित होकर सभी प्राणी जीवित रहते हैं, उस ओज के बिना उनका जीवित रहना संभव नहीं है। जो ओज गर्भ के आरंभ में शुक्रशोणित के साररूप में विद्यमान रहता है और जो ओज कलल अवस्था में रस के साररूप में रहता है। जब गर्भस्थ भ्रूण में हृदय की उत्पत्ति होती है, तब अपने स्वरूप में रहते हुए हृदय में प्रवेश करता है। जिस ओज के नाश होने पर शरीर का नाश हो जाता है, वही ओज हृदय में आश्रित रहकर आयु को धारण करता है। जो शरीररस का स्नेह है, जिसमें प्राण प्रतिष्ठित रहता है, हृदय उसी ओज को ओजोवह स्रोतों द्वारा रक्त के माध्यम से समूचे शरीर में संचरित करता रहता है। इसी के परिणामस्वरूप शरीर के सारे अंग-प्रत्यंग अपने कार्यों को सही रूप से संपन्न करते हैं।"

सभी आयुर्वेद ग्रंथों में इस ओजरूपी जीवनीशक्ति की रक्षा करने का निर्देश दिया गया है। अष्टांग हृदय-सूत्रस्थान-११/३६ में कहा गया है-

ओजस्तु तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम् ।
हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थिति निबंधनम् ॥

अर्थात रसधातु से लेकर शुक्र धातु तक सप्त धातुओं का जो उत्कृष्ट तेज है, उसका ही नाम 'ओज' है। यह ओज हृदय में रहता हुआ भी संपूर्ण शरीर में व्याप्त है और जीवन का आधार है। इसके कारण ही शरीर में आश्रित नाना प्रकार के भाव-पदार्थ उत्पन्न होते हैं। इसी तरह सुश्रुत संहिता-सूत्रस्थान-१५/२३ में उल्लेख है-

रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तत् ।
खल्वोजस्तदेव बलमित्युच्यते स्वशास्त्र सिद्धान्तात्॥

अर्थात 'रस' धातु से लेकर 'शुक्र' पर्यंत सप्त धातुओं का जो उत्कृष्ट तेज रूप सार भाग होता है, उसे 'ओज' कहते हैं और उसे ही बल भी कहते हैं। इस तरह शरीर का बल शुक्र के अधीन है और जीवन बल के अधीन है। अत: दोनों का रक्षण करना चाहिए।

वस्तुत: हम जो नित्य आहार ग्रहण करते हैं,उसका पाचन होकर सर्व प्रथम रस बनता है। रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से शुक्र और शुक्र से ओज बनता है। इस तरह ओज या जीवनीशक्ति इन्हीं सप्तधातुओं का सारभूत अंतिम स्वरूप है। जिस प्रकार दूध में घृत, गन्ने में रस व तिलों में तैल समाविष्ठ रहता है, ठीक उसी प्रकार सभी धातुओं में स्नेहांश के रूप में ओज समाया रहता है। आयुर्वेद के ग्रंथकार कहते हैं-

देह: सावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहिनाम् ।
तदभावच्च शीर्यन्ते शरीराणि शरीरिणाम् ॥

अर्थात् मनुष्यों का सभी अंग-अवयवों युक्त शरीर इस ओज से व्याप्त रहता है। इसका शरीर में अभाव हो जाने से शरीर में जीवनीशक्ति या प्राण का आधार नष्ट हो जाता है। यह ओज ही है, जो शरीर को शक्तिसंपन्न, कांतिमान, स्थिर और बलसंपन्न बनाता है। चेहरे की चमक, शरीर की स्निग्धता, वाणी का माधुर्य एवं गंभीरता, बौद्धिक प्रखरता, मानसिक दक्षता, ज्ञानेंद्रियों, कर्मेंद्रियों एवं अंत:करण, मन, बुद्धि, चित्त आदि को अपने-अपने

कार्यों को संपन्न करने की क्षमता, शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक क्रियाकलापों को सुचारु रूप से संचालित करने की सामर्थ्य ओज ही प्रदान करता है। ओज ही प्राणों का आधार है। यही दीर्घजीवन देता है और शरीर पर आए दिन होने वाले रोगाणुओं-विषाणुओं के भीतरी एवं बाहरी आक्रमण व संक्रमण से बचाता है। ओज का यदि अपव्यय होता रहे तो, जीवनीशक्ति घटती जाती है। इससे हृदय की गति मंद पड़ जाती है। यकृत, फेफड़े, गुरदे, आँतें, अग्नाशय आदि विविध शरीरिक अंग-प्रत्यंगों में विकृति उत्पन्न हो जाती है। मांसादि धातु क्षीण होने लगते हैं। जीवनीशक्ति के समाप्त हो जाने पर शरीर भी नष्ट हो जाता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि रोगकारक परिस्थितियों से जूझने के लिए हमारा शरीर जो कुछ प्राकृत क्षमता रखता है, वही 'ओज' है। यही आवश्यकतानुसार शरीर में नई क्षमता विकसित करता है, जिसे चिकित्सा विज्ञान की भाषा में 'Acquired Immunity' या रोग प्रतिरोधी क्षमता कहते हैं। यों तो गर्भावस्था में ही शिशु एवं जननी के बीच ओज का आदान-प्रदान होता रहता है, किंतु प्रसवोपरांत जन्म के पहले दिन से ही मनुष्य के शरीर में 'ऐक्वायर्ड इम्यूनिटी' अर्थात रोग-प्रतिरोधी क्षमता का उत्पादन स्वतंत्र रूप से आरंभ हो जाता है। जैसे-जैसे व्यक्ति की उम्र युवावस्था की ओर बढ़ती जाती है, शरीर में ओज की मात्रा भी बढ़ती जाती है। अज्ञानतावश जब इस शक्ति का अपव्यय वासना तृप्ति आदि के माध्यम से अधिक होने लगता है, तो शुक्र की कमी एवं रक्त के दूषित हो जाने से ओज के ये दोनों प्रमुख आश्रयस्थल या स्रोत सूख जाते हैं। ऐसी स्थिति में रोगाणुओं-विषाणुओं के आक्रमण का रास्ता निर्बाध रूप से खुल जाता है और व्यक्ति असाध्य रोगों का शिकार हो जाता है।

एड्स या ओजक्षय क्या है?

आज एड्स 'ऐक्वायर्ड इम्यूनो डेफीशिएन्सी सिण्ड्रोम' विश्व की सर्वाधिक भयावह एवं बहुचर्चित महाव्याधि बन गई है। आयुर्वेदाचार्य इसे 'उपार्जित ओजक्षय संलक्षण' भी कहते हैं। आधुनिक चिकित्साविज्ञानियों के अनुसार जिस व्याधि में Acquired Immunity या उपार्जित रोग प्रतिरोधी क्षमता प्रचुर परिमाण में न होने के कारण शरीर के भीतर एवं बाहर से होने वाले

संक्रमण के प्रति अक्षमता उत्पन्न होती है, उसे एड्स कहते हैं। किसी रोग, विशेषकर संक्रामक रोगों से लड़ने की शक्ति के होने अथवा उससे बचने-सुरक्षित होने की अवस्था का नाम 'इम्यूनिटी' है अर्थात यह रोग-प्रतिरोधी क्षमता कहलाती है। यह शरीर की वह प्रतिरोधी क्षमता है, जो सामान्य रोगों अथवा संक्रामक रोगों से शरीर की रक्षा करती है। इसके रहते रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं-विषाणुओं द्वारा या तो शरीर में रोग की उत्पत्ति ही नहीं होने पाती और यदि हो भी जाए तो यह उन कीटाणुओं, जीवाणुओं, विषाणुओं को विनष्ट करके जीवन की-स्वास्थ्य की रक्षा करती है। यह मनुष्य के जन्म के तुरंत बाद उत्पन्न होने वाली क्षमता है, जिसका जीवनीशक्ति से सीधा संबंध है।

एड्स या ओजक्षय बीमारी नहीं-बीमारियों का समूह है

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार एड्स या ओजक्षय कोई बीमारी नहीं है, वरन् बीमारियों का एक समूह है, झुंड है, सिण्ड्रोम या संलक्षण है, जो जीवनीशक्ति कम होने तथा एक अति सूक्ष्म रेट्रो वाइरस के संक्रमण से फैलता है। यह वाइरस सर्वप्रथम शरीर की रोग-प्रतिरोधी क्षमता पर आक्रमण करता है और उसे समाप्त कर देता है, जिससे व्यक्ति संक्रामक रोगों से लड़ने की अपनी प्राकृतिक क्षमता खो बैठता है। अधिकांश बार इसका हमला होता ही उन पर है, जिनकी जीवनीशक्ति पहले से ही कमजोर होती है। इसके विषाणु सबसे पहले रोगों से लड़ने वाली श्वेत रक्तकणों की प्रथम सुरक्षापंक्ति को अपना निशाना बनाते हैं। यही वह प्रथम सुरक्षाकवच है, जो शरीर के इम्यून सिस्टम का नियमन करता है। विषाणुओं के आक्रमण से जैसे-जैसे "T4 Cells" की संख्या घटती जाती है, उसी क्रम में शरीर की रोग-प्रतिरोधी क्षमता भी घटती जाती है। परिणामस्वरूप संक्रमित व्यक्ति अनेकानेक अवसरवादी संक्रामक रोगों यथा-वाइरस, बैक्टीरिया, फंगस, पैरासाइट्स आदि द्वारा उत्पन्न अनेक बीमारियों से आसानी से ग्रसित हो जाता है। इनमें न्यूमोनिया, अतिसार एवं कापोसी-सार्कोमा अर्थात ब्लड वेसेल्स का ट्यूमर, बुखार प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त ओजक्षय के कारण जो लक्षण प्रकट होते हैं, उनमें भूख न लगना, शरीर का वजन कम होना, थकान, त्वचा विकार, टी.बी., शिरःशूल, अज्ञात लक्षणों वाला वाइरल फीवर, कमजोरी, लसीका ग्रंथियों की सूजन, मुँह के छाले, लगातार खाँसी का बने रहना प्रमुख हैं।

यज्ञोपचार

एड्स या ओजक्षय (लो इम्यूनिटी डिसऑडर) की चिकित्सा हेतु अनेकानेक आधुनिक औषधियाँ प्रचलन में हैं। इतने पर भी इस महाव्याधि पर नियंत्रण पाना संभव नहीं हुआ है। दवाओं के सेवन से रोगी व्यक्ति कुछ महीनों से लेकर दो-चार वर्षों तक जीवित रह सकता है। इस अवधि में औषधियों की भरमार से अनेकानेक जटिलताओं से भी रोगी को जूझना पड़ता है।

आयुर्वेद विशेषज्ञों ने अमर्यादित व अति स्त्रीप्रसंग, अनियमित जीवनचर्या व शरीर के रक्षास्त्रोतों से समझौता आदि को ओजक्षय, शुक्रक्षय, बलक्षय तथा तज्जन्य संक्रामक रोगों का प्रमुख कारण माना है। इनकी चिकित्सा में तदनुरूप रोगप्रतिरोधी क्षमता बढ़ाने वाली, बलवर्द्धक, ओजवर्द्धक, मेध्य, अग्नि वर्द्धक, रक्तशोधक, जीवनीय एवं बृंहणीय औषधियों, रसायन योगों, भस्म आदि के सेवन को प्रमुखता दी गई है। इस महाव्याधि में आयुर्वेद की कुछ अति विशिष्ट चिकित्सा पद्धतियाँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और रोगी की प्राणरक्षा करती हैं, किंतु ये विशेषज्ञों की देखरेख में ही संपन्न हो सकती हैं। आयुर्वेद में बहुउपयोगी रस-भस्मों से लेकर वनौषधियों के एकल या मिश्रित चूर्ण, क्वाथ, सिद्धघृत-जीवन्त्याद्य घृत, त्रिफला घृत, पंचतिक्त घृत आदि, अश्वगंधावलेह, च्यवनप्राश, चोपचीनी पाक, भल्लातक रसायन, ब्राह्मी रसायन, कैशोर गुग्गुल, कांचनार गुग्गुल, सारिवाद्यासव, दशमूलारिष्ट आदि औषधियाँ प्रयुक्त होती हैं।

इसके अतिरिक्त पारद एवं गंधक के योग, स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म, यशद भस्म, नागभस्म, हरतालभस्म, कसीसभस्म, कल्याणसुंदराभ्र रस, स्वर्णबसंतमालती रस, जहरमोहरा पिष्ठी, प्रवाल पिष्ठी आदि आयुर्वेदिक औषधियाँ योग्य चिकित्सक की देखरेख में समुचित पथ्य-परहेज के साथ उचित मात्रा एवं अनुपान के साथ सेवन की जाएँ, तो ओजक्षय के रोगी की प्राणरक्षा हो सकती है। इतने पर भी उक्त औषधियों को शुद्ध रूप में प्राप्त करना या बनाना तथा पथ्य-परहेज के साथ उनका सेवन करना रोगी के सामने सबसे बड़ी समस्या है। ऐसी स्थिति में यज्ञोपचार ही एकमात्र ऐसी विधा है, जिसको अपनाकर किसी भी रोगी की न केवल जीवनीशक्ति का

संरक्षण व अभिवर्द्धन किया जा सकता है, वरन् प्राणरक्षा कर उसको नया जीवन प्रदान किया जा सकता है।

यहाँ ओजक्षय की जो विशिष्ट हवन सामग्री दी जा रही है, उसमें प्रयुक्त सभी जड़ी-बूटियाँ आसानी से अपने आस-पास के खेतों, बाग-बगीचों, वनों या पर्वतीय क्षेत्रों, वनौषधि विक्रेताओं से प्राप्त की जा सकती हैं और इन्हें कूट-पीसकर जौकुट रूप में हवन सामग्री बनाई जा सकती है। नित्य नियमित रूप से सूर्य गायत्री के मंत्रोच्चार के साथ इस हवन सामग्री से हवन करने पर उत्पन्न हुई यज्ञीय ऊर्जा एच.आइ.वी. पॉजिटिव व्यक्ति की समाप्तप्राय जीवनीशक्ति या रोग-प्रतिरोधी क्षमता को पुनर्जीवित करके उसकी अभिवृद्धि करती है। इसके प्रभाव से शरीर के अंदर श्वेत रक्तकण दोबारा पनपने और घनीभूत होने लगते हैं। जैसे-जैसे इन रक्तकणों की अभिवृद्धि होती जाती है, रोग का प्रकोप शांत होता जाता है और क्रमशः रोगी अपना खोया हुआ स्वास्थ्य पुनः प्राप्त कर लेता है। इस यज्ञोपचार-प्रक्रिया की यह विशेषता है कि इसमें यज्ञीय ऊर्जा से लाभान्वित होने के साथ ही उन्हीं हविर्द्रव्यों से निर्मित क्वाथ को भी रोगी व्यक्ति को सुबह-शाम पिलाया जाता है। इससे उसे दोहरा लाभ मिलता है और स्वास्थ्य-संवर्द्धन की प्रक्रिया भी तीव्र हो जाती है।

एड्स या ओजक्षय की विशिष्ट हवन सामग्री

इसमें निम्नलिखित वनौषधियाँ मिलाई जाती हैं-

1. यष्ठीमधु (मुलहठी)	2. अश्वगंधा	3. शतावर
4. विदारीकंद (शोधित)	5. बच	6. श्यामातुलसी
7. सप्तपर्णी	8. पिप्पली	9. सोंठ
10. चित्रक छाल	11. कालीमिर्च	12. आँवला
13. हरड़ (हरीतकी)	14. बहेड़ा	15. गिलोय
16. नीमछाल	17. हरिद्रा	18. दारुहरिद्रा
19. पुनर्नवा	20. गोरखमुंडी	21. दूर्वा (दूब)
22. जटामांसी	23. ब्राह्मी	24. जलनीम
25. सफेद मूसली	26. काली मूसली	27. मखाना
28. उटंगन	29. कालमेघ	30. कूठ

31. पटोल पत्र (परवर) के पत्ते	32. अकरकरा	33. इंद्रायण मूल
34. त्रायमाण	35. कुटकी	36. अतिबला
37. भुईआँवला	38. मंडूकपर्णी	39. अमलतास
40. वासा	41. तालमखाना	42. मूँज (भुंजातक)
43. कौंचबीज	44. कायफल	45. चिरायता
46. खदिर छाल	47. विडंग	48. मोथा
49. मंजीष्ठ	50. देवदार	51. मूर्वा
52. मकोय	53. इंद्रजौ	54. पद्माख
55. कड़वी अतीस–चौथाई भाग	56. गुग्गुल	57. तुबरक बीज
58. शाल की छाल	59. मेषशृंगी	60. गोक्षुरू
61. अर्जुन	62. पलाश	63. पित्तपापड़ा
64. चिरौंजी	65. शंखपुष्पी	66. रास्ना
67. पाढ़ल	68. जीवक	69. जीवंती
70. छोटी व बड़ी कंटकारी	71. अरणी	72. सोनपाठा
73. भारंगी	74. बिल्व।	

उपर्युक्त सभी चीजों को समभाग में लेकर साफ–स्वच्छ करके सुखा लेना चाहिए और कूट–पीसकर उनका जौकुट पाउडर बनाकर एक डिब्बे में सुरक्षित रख लेना चाहिए। इस पात्र पर ओजक्षय की विशिष्ट हवन सामग्री–नंबर–२ का लेबल लगा देना चाहिए।

हवन करते समय पहले से तैयार की गई कॉमन हवन सामग्री–नम्बर–१ की आधी मात्रा मिला लेते हैं अर्थात यदि नंबर–२ की विशिष्ट हवन सामग्री ५० ग्राम ली गई है, तो कॉमन हवन सामग्री नम्बर–१ को भी ५० ग्राम ही लेते हैं। इसी में खाँडसारी गुड़ या शक्कर, गोघृत, चावल, जौ और तिल भी मिले होते हैं। हवन सूर्य गायत्री मंत्र से करते हैं।

जहाँ तक हो सके, यह चिकित्सा प्रातः अरुणोदय काल में एवं सायं सूर्यास्त के समय की जाए, क्योंकि इस संधिकाल में प्रकृति की विशिष्ट ब्रह्मांडीय ऊर्जा की बौछार प्रमुख रूप से होती है, जो मंत्रपूरित यज्ञीय ऊर्जा के साथ मिलकर यजनकर्त्ता को मनोवांछित फल प्रदान करती है। हवनोपचार समाप्त होने के पश्चात् भी रोगी को उस यज्ञीय ऊर्जा के सान्निध्य में अधिक

से अधिक समय तक बैठे रहना चाहिए। साथ ही प्राणाकर्षण प्राणायाम की भाँति दीर्घ श्वास-प्रश्वास द्वारा भावनापूर्वक हवनकुण्ड से उद्‌भूत उस यज्ञीय ऊर्जा को अपनी समूची काया एवं मन-प्राण में अवशोषित एवं अवधारित करना चाहिए। प्रश्वास छोड़ते समय शरीर में संव्याप्त विषाणुओं के विषाक्तता सहित विनष्ट होने एवं निष्कासित होने की गहन भावना करनी चाहिए। कुछ ही दिनों में इसके सकारात्मक सत्परिणाम सामने आने लगते हैं।

क्वाथ-हवन करने के साथ ही साथ उपरोक्त ओजक्षय की विशिष्ट हवन सामग्री नंबर-२ की कुछ मात्रा (५-६ चम्मच पाउडर) शाम को स्टील के एक भगोने में आधा लीटर पानी में भिगो देनी चाहिए। सुबह इसे बर्नर या चूल्हे पर चढ़ाकर मंद आँच में क्वाथ विधि से क्वाथ बना लेना चाहिए। चौथाई अंश शेष रहने पर भगोने को उतारकर ठंडा होने पर साफ-स्वच्छ कपड़े से काढ़े को छान लेना चाहिए। इसमें से क्वाथ की आधी मात्रा सुबह ९-१० बजे एवं आधी मात्रा शाम ४-५ बजे तक रोगी को शहद के साथ पिला देनी चाहिए। हवन एवं क्वाथ-सेवन के दोनों क्रम नित्य नियमित रूप से चलाते रहने पर रोग का उन्मूलन हो जाता है, इसमें संशय नहीं। एड्स या ओजक्षय रोग से न तो भयभीत होने की आवश्यकता है और न ही रोग से आक्रांत होने पर जीवन की आशा छोड़ बैठने की। आवश्यकता मात्र संयमित एवं मर्यादित जीवन जीने की एवं धैर्यपूर्वक उपर्युक्त उपचार-प्रक्रिया अपनाने की है।

अध्याय-१०

मुख एवं नेत्रादि रोगों की सरल यज्ञ चिकित्सा

★★★★★★★★★★★★

यज्ञोपचार-प्रक्रिया द्वारा रोगग्रस्त शरीर के किसी अंग-अवयव से लेकर समूचे कायतंत्र की चिकित्सा सरलतापूर्वक की जा सकती है। इस अध्याय के अंतर्गत जिन रोगों को लिया गया है, उनमें प्रमुख रूप से मुख के रोग, नेत्र रोग एवं व्रण सम्मिलत हैं। यज्ञ से इन सभी रोगों का समग्र उपचार किया जा सकता है।

(१) मुखरोगों की सरल यज्ञ चिकित्सा

मुख के अंतर्गत आने वाले अंगों एवं उनमें होने वाले रोगों का वर्णन करते हुए आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'भावप्रकाश' के चिकित्सा प्रकरण के ६६ वें अध्याय-'मुखरोगाधिकार' में कहा गया है-

ओष्ठौ च दंतमूलानि दंताजिह्वे च तालु च ।
गलो मुखानि सकलं सप्ताङ्गं मुखमुच्यते ॥

अर्थात-दाँतों की जड़ें-मसूढ़े, दाँत, जिह्वा, तालु, गला और कंठ स्थान से लेकर संपूर्ण मुख-ये सब सातों अंग मिलाकर मुख कहलाते हैं। इसी ग्रंथ के अगले सूत्र में उक्त अंगों में होने वाले रोगों का उल्लेख करते हुए कहा गया है-

स्युरष्टवोष्ठयोर्दन्तमूले तु दशषट् तथा ।
दंतेष्वष्टौ च जिह्वायां पञ्च स्युर्नव तालुनि ॥

कंठे त्वष्टादश प्रोक्तास्त्रयः सर्वेषु च स्मृताः ।
एवं मुखामयाः सर्वे सप्तषष्टिर्मता बुधैः ॥

अर्थात-ओंठों में ८ प्रकार के, दंतमूल-मसूढ़ों में १६, दाँतों में ८, जिह्वा में ५, तालु में ९, गले में १८, एवं मुख में ३ प्रकार के रोग होते हैं। इस तरह मुख रोगों की कुल संख्या ६७ है।

स्वस्थ एवं स्वच्छ मुँह उत्तम स्वास्थ्य की प्रथम पहचान है। इसके बिना शारीरिक स्वास्थ्य की कल्पना नहीं की जा सकती। मोतियों-से चमकते दाँत मनुष्य के हँसते-खिलखिलाते चेहरे पर सुंदरता के चार चाँद लगा देते हैं, लेकिन अगर वही दाँत एवं मसूढ़े रोगग्रस्त हों, तो उन्हें देखकर स्वयं तो व्यक्ति व्यथित होता ही है, सामने वाला व्यक्ति भी दूर हटकर बात करता है। स्पष्ट है कि बीमारियों का प्रवेशद्वार हमारा मुख ही है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि जो कुछ हम खाते-पीते हैं, उसका प्रथम संपर्क हमारे मुँह, जिह्वा एवं दाँतों से होता है। इनकी साफ-सफाई का ध्यान न रखा जाए, तो जो खाया-पिया गया है, उसका कुछ न कुछ अंश दाँतों के मध्य मसूढ़ों से चिपका रहता है। इन्हीं अन्न आदि कणों की सड़न से मुख-रोग की शुरुआत होती है, जिसका अर्थ है-समूचे कायतंत्र को बीमारियों का आश्रयस्थल बनाना। अनुसंधानकर्त्ता चिकित्सा विशेषज्ञों का कहना है कि दाँतों की नब्बे प्रतिशत बीमारियाँ अहितकर आहार एवं उलटे-सीधे भोजन करने तथा दाँतों की सफाई न करने से पैदा होती हैं। इनसे पनपे बैक्टीरिया दंत-संरचना में भाग लेने वाले इनेमल, डैन्टाइन, पल्पकैविटी स्थिति सूक्ष्म तंत्रिकाओं एवं रक्त-नलिकाओं के साथ-साथ मसूढ़ों को भी अपना आहार बनाते हैं। फलतः दाँतों में कीड़े लगने, दाँत खोखले होने से लेकर दंतक्षय, पायरिया, मसूढ़ों की सूजन आदि अनेक रोग सामने आते हैं। इसके साथ ही भोजन या लार के साथ इन रोगों के जीवाणु पेट में पहुँचकर कई तरह की कष्टकारी बीमारियों को जन्म देते हैं।

दाँत एवं मसूढ़ों से संबंधित रोग

कहा जा चुका है कि मुँह के सातों अंगों में कुल सड़सठ तरह की बीमारियाँ पनपती हैं। उन सभी का वर्णन न करके केवल दाँतों एवं मसूढ़ों

से संबंधित रोगों की आरंभिक जानकारी देते हुए उनको यज्ञोपचार द्वारा दूर करने के उपाय ही यहाँ पर बताए जा रहे हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार दाँतों एवं समूढ़ों में कई तरह के रोग पनपते हैं। उनमें प्रमुख हैं-

1- Toothache-Odontalgia (दंतशूल)
2- Dental Caries (दंतक्षरण या दंतकृमि)
3- Odontoseisis (दाँतों का हिलना)
4- Bleeding or Spongy gums (मसूढ़ों से खून आना)
5- दाँतों पर पानी लगना-शीताद रोग
6- Gum boil (मसूढ़ों का फोड़ा)
7- Gingivitis (दंतमूल शोथ)
8- Pyorrhoea (दंतपूय या दंतवेष्टक)
9- Alveolar abscess (दंत विद्रधि)
10- Odontorrhagia (दाँतों से अधिक रक्तस्राव)
11- Trench mouth-Vincent's Infection एवं
12- दाँतों में कीड़ा लगना आदि।

१. दाढ़ का दरद या दंतशूल

चिकित्सा विज्ञानी इसे ही Odontalgia या Odontodynia भी कहते हैं। दाँतों का यह एक आम रोग है, जिसका कोई एक कारण नहीं होता, वरन् कई सम्मिलित कारण हो सकते हैं। उदाहरण के लिए दाँतों का खोखला होना या कीड़ा लगना, दाँतों का टूट जाना, दाँतों की जड़ों में टार्टर या मैल जमा होना और उसमें जीवाणु संक्रमण होने के कारण दो-तीन दाँतों में असह्य पीड़ा होना। सही ढंग से दाँतों की सफाई न करने से, दाँतों या मसूढ़ों की सूजन से, ठंडे या गरम पानी के संपर्क से दाढ़ों में दरद हो सकता है। पायरिया होने अथवा मुँह में चोट लगने से भी दंतशूल होता है।

२. दंतक्षरण या दंतकृमि

यह रोग प्रायः दाँतों को भलीभाँति स्वच्छ न करने, मसूढ़ों या दाँतों में कीड़े लग जाने तथा पायरिया हो जाने के कारण उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त मुँह के विकार, विटामिन 'ए' तथा विटामिन 'डी' की कमी,

फॉस्फोरस का अभाव, कैल्सियम की कमी आदि कारणों से भी दंतक्षरण होता है। इस रोग में दाँत और दाढ़ गलने लगते हैं और अंत में टुकड़े-टुकड़े होकर निकल जाते हैं। कभी-कभी दाँत भीतर से खोखला हो जाता है और गल-गलकर गिर जाता है। खाने-पीने की कोई चीज जब इस खोखले भाग में फँस जाती है, तो असह्य पीड़ा होती है।

३. दाँतों का हिलना

दाँतों में यह विकार प्रायः पायरिया आदि के कारण उत्पन्न होता है, जिसमें मसूढ़े सूज जाते हैं और दाँत हिलने लगते हैं। पारे आदि की विषाक्तता के कारण भी कभी-कभी यह रोग उत्पन्न होता है।

४. मसूढ़ों से खून आना

यह भी दाँतों की एक आम बीमारी है, जिसमें मसूढ़ों से खून आने लगता है। इसकी उत्पत्ति ठीक तरह से मंजन या ब्रश न करने और दाँतों को अस्वच्छ बनाए रखने से होती है। असावधानीवश जब कभी मसूढ़े जख्मी हो जाते हैं, तो अपने स्थान से हट जाते हैं। कुछ समय पश्चात् उनमें शोथ उत्पन्न हो जाता है और जरा-सा दबाव पड़ने मात्र से उनसे रक्त निकलने लगता है। मसूढ़ों पर टार्टर (पपड़ी) जमने से भी रक्त आने लगता है।

५. दाँतों पर पानी लगना या शीताद रोग

कभी-कभी दाँतों की ऊपरी परत (इनेमल) हट जाती है या जड़ के पास मसूढ़े ढीले पड़ जाते हैं, तो गरम या ठंडा पानी पीने पर यह दाँतों पर लगता है और उनमें दरद होता है। कभी-कभी ये दाँत इतने अधिक संवेदनशील हो जाते हैं कि तनिक-सा हवा का झोंका तक नहीं सहन कर पाते और असह्य वेदना पैदा करते हैं। यह रोग प्रायः पायरिया की प्राथमिक अवस्था में तथा दाँतों में कीड़े लगने के कारण होता है।

६. मसूढ़ों का फोड़ा या दंत पुप्पुटक

इस दंत रोग में मसूढ़ा शोथयुक्त लाल रंग का एवं उभरा हुआ जान पड़ता है। दबाने पर यह पिलपिला-सा मालूम होता है। छूने या दबाने पर दरद होता है।

७. दंतमूल शोथ

इसे ही मसूढ़ों की सूजन कहते हैं। संक्रमण के कारण जब मसूढ़ों में सूजन आ जाती है और चिकित्सा न होने पर इनमें मवाद पड़ जाता है, तो दाँतों में तेज दरद होता है। चेहरा लाल हो जाता है और उस पर सूजन स्पष्ट नजर आने लगती है।

८. पायरिया

आयुर्वेद में इसे दंतपूय, दंतवेष्टक, परिदर या पूयस्त्राव कहते हैं। दाँतों का यह सबसे खतरनाक रोग माना जाता है। यह बैक्टीरियाजन्य रोग है, जो बड़ी कठिनाई से दूर होता है। बहुधा यह रोग उन्हीं लोगों को होता है, जो दिनभर कुछ न कुछ चबाते रहते हैं और दाँतों की सफाई पर ध्यान नहीं देते। जो बच्चे आइसक्रीम, टॉफी, कैंडी, चॉकलेट या मीठा पदार्थ आदि खाते रहते हैं और दाँतों की सफाई, मंजन, ब्रश किए बिना ही रात में सो जाते हैं, उनके दाँतों में इन पदार्थों के छोटे-छोटे कण चिपके या फँसे रहते हैं। यही कण जीवाणुओं के कारण सड़ने लगते हैं और दाँतों में पायरिया रोग की शुरुआत हो जाती है। संतुलित आहार न लेने, आहार में विटामिन 'बी-कम्प्लेक्स' एवं विटामिन-'सी' की कमी, दातुन या ब्रश से दाँतों की सही रीति से सफाई न करना, पेट में निरंतर कब्जियत का बने रहना एवं गैस की शिकायत बनी रहने आदि से पायरिया होता है। मीठे पदार्थों का अधिक सेवन, अधिक गरम चाय, कॉफी पीना, मसूढ़ों पर चोट अथवा खरोंच लगना, रात को दूध आदि पीकर बिना ब्रश किए ही सो जाना, रात-दिन फ्रिज का ठंडा पानी पीना या बरफ के टुकड़े खाते रहना पायरिया रोग उत्पन्न होने के प्रमुख कारण हैं। 'मसूढ़ों का शोथ' भी पायरिया का एक मुख्य कारण है।

पायरिया का संक्रमण अत्यंत मंद गति से होता है और कई सालों में बढ़कर पूरी तरह विकसित होता है। इसके कारण दाँत के रोगी को अग्निमांद्य, अपच, आमाशय के रोग, ज्वर, नेत्र रोग, आर्थ्राइटिस (संधिशोथ) आदि कई रोग हो सकते हैं। इस संदर्भ में अनुसंधानरत चिकित्सा विज्ञानियों ने अपने नूतन शोध-निष्कर्ष में बताया है कि दंत रोगों, विशेषकर पायरिया के विषाक्त प्रभाव के कारण रोगी को हृदय रोग एवं कैंसर जैसी घातक बीमारियाँ भी हो सकती हैं।

पायरिया का संक्रमण होने पर सबसे पहले मसूढ़ों पर हलकी सूजन उत्पन्न होती है और कुछ दिनों बाद उन पर मैल की परत-सी जमने लगती है और वे पीले पड़ने लगते हैं। दबाने या ब्रश करने पर मसूढ़ों से रक्त निकलने लगता है। धीरे-धीरे दाँतों पर भी मैल की परत चढ़ती जाती है और उनकी जड़ों से 'पस' अर्थात मवाद निकलने लगती है। मुँह से सदा दुर्गंध आती रहती है। पायरिया के ये आरंभिक लक्षण हैं। समय पर समुचित उपचार न कराने पर रोग दूसरी अवस्था में पहुँच जाता है और तब दंतमूल में सूजन गहरी हो जाती है। इस अवस्था में रक्त के साथ ही मवाद की मात्रा भी बढ़ जाती है। यही विषाक्त पदार्थ लार के साथ पेट में पहुँचता है और पाचनक्रिया को गड़बड़ा देता है।

इस स्थिति में पहुँचा हुआ रोग चिकित्सा करने पर भी एकदम से ठीक नहीं हो जाता। इसके लिए लंबे समय तक जीवाणुनाशक एंटीबायोटिक औषधियों का बड़ी मात्रा में लगातार सेवन करना पड़ता है, जिसके कभी-कभी घातक दुष्परिणाम भी देखने को मिलते हैं। ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होने ही न पाएँ, इसलिए अपने देश में प्राचीनकाल से ही आयुर्वेद विशेषज्ञों ने दंतरक्षा के महत्त्व को समझाते हुए कितने ही उपाय-उपचार बताए हैं और रोग होने पर चिकित्सा के विविध आयाम विकसित किए हैं। आयुर्वेद ग्रंथों में मुखरोग एवं दंतरोग के कितने ही चिकित्सा-उपचारों का उल्लेख है। इस संदर्भ में अन्यान्य चिकित्सा-उपचारों की अपेक्षा यज्ञोपचार को सर्वाधिक प्रभावी व निरापद पाया गया है। रोगाणुनाशन एवं जीवनीशक्ति-संवर्द्धन में यह प्रक्रिया अद्वितीय है।

मुख-रोगों की विशिष्ट हवन सामग्री

मुख-रोगों विशेषकर दंतरोगों एवं मसूढ़ों के रोगों की हवन सामग्री में निम्नलिखित वनौषधियाँ मिलाई जाती हैं-

1. कचूर (कपूरकचरी)	2. शीतलचीनी	3. अकरकरा
4. खदिर (खैर) की छाल	5. बबूल की छाल	6. नीम छाल
7. अरिमेद (दुर्गंधखैर) की छाल	7. सिरीष की छाल	9. मौलश्री
10. पतंग	11. मंजीष्ठ	12. करील

13. चमेली की जड़	14. इलायची	15. रतनजोत
16. सुगंधबाला	17. सारिवा	18. अगर
19. दारुहलदी	20. पद्माख	21. लौंग
22. चंदन	23. तगर	24. जवासा
25. त्रिफला (आँवला, हरड़, बहेड़ा-समभाग)		26. धाय पुष्प
27. दालचीनी	28. नागरमोथा	29. मुलहठी
30. खस	31. जटामांसी	32. आक मूल
33. लोध्र	34. पिप्पली	35. रसौत
36. पीली कटसरैया के पत्ते	38. हलदी	39. अजमोद
40. अजवायन	41. अपामार्ग	42. असन
43. बरगद की छाल	44. कटेरी	45. कायफल
46. माजूफल	47. मेंहदी के पत्ते	48. सुपारी
49. काली मिरच	50. जावित्री	51. बायविडंग
52. पुनर्नवा	53. बच	54. सोंठ।

उपर्युक्त सभी ५४ चीजें बराबर मात्रा में लेकर साफ-स्वच्छ करके कूट-पीसकर उनका जौकुट पाउडर बना लेते हैं। इनमें से यदि कुछ चीजें तत्काल उपलब्ध न हों, तो उन्हें छोड़कर शेष को लेकर यज्ञोपचार आरंभ कर देना चाहिए। विशिष्ट औषधियों से तैयार की गई हवन सामग्री को 'मुख-रोग की विशिष्ट हवन सामग्री-क्रमांक-२' का लेबल लगाकर एक अलग डिब्बे में रख लेते हैं। हवन करते समय पहले से तैयार की गई 'कॉमन हवन सामग्री-क्रमांक-१' की बराबर मात्रा मिलाकर तब सूर्य गायत्री मंत्र से आहुति डालते हैं। समिधा के लिए आम, खदिर आदि की सूखी एवं साफ-स्वच्छ कृमि विहीन लकड़ियाँ सर्वाधिक उपयुक्त होती हैं।

उक्त विधि से हवन करने के साथ ही साथ यदि उपर्युक्त ५४ चीजों से बने जौकुट पाउडर का क्वाथ बनाकर सुबह-शाम उससे रोगी व्यक्ति को गरारे एवं कुल्ला कराया जाए, तो उसका लाभ तत्काल दिखाई देने लगता है। इसके लिए मात्र इतना ही करना पड़ता है कि मुख-रोग की विशिष्ट हवन सामग्री (क्र.-२) की १५ ग्राम मात्रा को एक पाव पानी में रात्रि में स्टील के एक भगोने में भिगो देते हैं और सुबह उसे मंद आँच पर चढ़ाकर क्वाथ

बनाते हैं। उबलते-उबलते जब चौथाई अंश शेष रह जाता है, तो उसे चूल्हे पर से उतारकर हलका कुनकुना रहने पर स्वच्छ कपड़े से छान लेते हैं। इसी क्वाथ में १. फिटकरी फूला का बारीक चूर्ण एवं २. कत्थे का कपड़छन चूर्ण ४-४ रत्ती मिलाकर रोगी व्यक्ति को गरारे कराते हैं। कुल्ला करने से पहले उसे दस-पाँच मिनट तक मुँह बंद करके अंदर ही अंदर चलाते रहना चाहिए। इससे दाँतों एवं मसूढ़ों के बीच छिपे-बैठे बैक्टीरिया नष्ट हो जाते हैं और कुल्ला करने पर बाहर आ जाते हैं। गरारे करने के पश्चात् उक्त क्वाथ को रोग की तीव्रता के अनुसार पिया भी जा सकता है। पीते समय क्वाथ में मात्र कत्थे का चूर्ण मिलाना चाहिए।

संतुलित आहार लेने के साथ ही नित्य-नियमित रूप से दाँतों की सफाई का ध्यान रखा जा सके, तो हमारे दाँत जीवनपर्यंत तक साथ दे सकते हैं। इसे एक विडंबना ही कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय आयुर्वेदीय स्वास्थ्य संरक्षण प्रक्रिया को भूलकर आज हम रंग-बिरंगे चमकीले टूथपेस्ट, टूथ पाउडर एवं विभिन्न प्रकार के बाजारू मंजनों पर निर्भर हो गए हैं। उनमें दंत-संरक्षण के लिए उपयोगी पदार्थ कम, विजातीय पदार्थ ज्यादा होते हैं, जिनके दुष्प्रभाव हमारे दाँतों एवं मसूढ़ों को ही झेलने पड़ते हैं। आयुर्वेद ग्रंथों में बताए गए सूत्रों या घरेलू नुस्खों के अनुसार यदि स्वयं ही मंजन बना लिया जाय, तो हमारे दाँत सही-सलामत तो रहेंगे ही, पायरिया जैसे रोगों के कारण दंतविहीन होने एवं कई प्राणघातक रोगों से सरलतापूर्वक बचा जा सकता है।

इस संदर्भ में दंतमंजन का एक उत्कृष्टतम फॉर्म्यूला विकसित किया गया है, जिसके परिणाम बहुत ही संतोषजनक रहे हैं। प्रयोक्ताओं ने इस मंजन के प्रयोग से कितने ही तरह के मुख रोगों, जैसे-मुँह के अल्सर (छाले), कैविटी, मसूढ़ों की सूजन, मुँह की दुर्गंध, दंतक्षय, पायरिया आदि से निजात पाई है। इसके प्रयोग से न केवल सभी तरह के मुख रोगों, दंत रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है, वरन् दाँत चमकीले एवं मजबूत बनते हैं। मसूढ़े दाँतों से कसे हुए रहते हैं। यह मंजन जीवाणुनाशक भी है।

दंतमंजन

इसमें निम्नलिखित सामग्री मिलाई जाती है-

1. कपूर सत्	-8 ग्राम	2. पिपरमेंट सत्	- 8 ग्राम
3. अजवायन सत्	-1 ग्राम	4. नीलगिरी तैल	-10 मि.ली.
5. लौंग तैल	-10 मि.ली.	6. गेरू	-1 कि.ग्रा.
7. बज्रदंती	-50 ग्राम	8. सेंधा नमक	-25 ग्राम
9. काली मिरच	-35 ग्राम	10. अकरकरा	-10 ग्राम
11. त्रिफला चूर्ण	-8 ग्राम	12. फिटकरी फूला	-25 ग्राम
13. छाड़-छरीला	-100 ग्राम	14. कायफल	-200 ग्राम
15. इलायची	-10 ग्राम	16. माजूफल	-100 ग्राम
17. लौंग पाउडर	-10 ग्राम	18. खड़िया मिट्टी	-100 ग्राम
19. तुंबरू(नेपाली धनिया)	-100 ग्राम	20. सोंठ	-5 ग्राम
21. हलदी चूर्ण	-10 ग्राम	22. हरड़	-10 ग्राम
23. आँवला	-8 ग्राम	24. नीम की छाल	-250 ग्राम
25. बबूल की छाल	-25 ग्राम	26. मौलश्री छाल	-25 ग्राम
27. कीकर या अरिमेद (विलायती बबूल) की छाल	-25 ग्राम		
28. अखरोट की छाल	-25 ग्राम	29. नागरमोथा	-50 ग्राम
30. शोधित कुचला	-25 ग्राम	31. नीलाथोथा फूला	-10 ग्राम
32. कपूरकचरी (कचूर)	-50 ग्राम	33. शिरीष की छाल	-100 ग्राम
34. वंशलोचन	-100 ग्राम		

मंजन बनाने की विधि-इस प्रकार है-

क्रमांक (१) से (५) तक अर्थात कपूर से लौंग तैल तक की चीजों को छोड़कर अन्य सभी सामग्रियों, जड़ी-बूटियों को कूट-पीसकर कपड़छन करके पाउडर बना लें और उन्हें आपस में मिलाकर एकरस कर लें। इसके बाद में कपूर, पिपरमेंट एवं अजवायन सत् को एक अलग बीकर या स्टील के बरतन में मिला लें, जिससे वह पानी जैसा बन जाएगा। उसे पाउडर में मिला दें। तदुपरांत क्रमशः नीलगिरी तैल और लौंग तैल को भी पाउडर में

डाल दें और अच्छी तरह से मिला लें। इस तरह सर्वोत्तम दंतमंजन तैयार हो गया। मात्रा-२ ग्राम लेकर अच्छी तरह दाँतों एवं मसूढ़ों पर हलके हाथ से मालिश करें, पीछे ब्रश से दाँत साफ कर लें। रात को सोने से पहले भी इसी मंजन से ब्रश करके दंतरोगी पूर्वोक्त क्वाथ से गरारा एवं कुल्ला करते रहें, तो दंतरोगों से सर्वथा मुक्ति मिल जाएगी। सभी आयुवर्ग के नीरोग एवं मुँह तथा दंतरोगी इस मंजन से अपनी स्वास्थ्यरक्षा सहजतापूर्वक कर सकते हैं तथा अपने धवल दंत पंक्तियों को जीवनपर्यंत चमकाते रह सकते हैं।

यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि उपरोक्त दंतमंजन में प्रयुक्त कुचला एवं नीलाथोथा को शोधन के पश्चात् ही मिलाया जाता है। कुचले को शोधने के लिए उसे गरम तवे या कड़ाही में डालकर अच्छी तरह भूनते या तल लेते हैं और गरम अवस्था में ही सिलबट्टे या मिक्सी में डालकर पीस लेते हैं अन्यथा ठंडी अवस्था में कुचला पाउडर नहीं होता और इतना कठोर हो जाता है कि पिसता नहीं। इसी तरह नीलाथोथा (तूतिया) को भी चूर्ण बनाकर कड़ाही में अच्छी तरह भूना जाता है, जिससे वह शुद्ध हो जाता है। फिटकरी का फूला बनाने के लिए उसे कड़ाही या तवे पर डालकर गरम करते हैं, जिससे उसके फूले तैयार हो जाते हैं।

२. नेत्र रोगों की यज्ञ चिकित्सा

मानवी काया में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एव बहुमूल्य अंग हैं-हमारी आँखें। आँखें न हों अथवा रोगग्रस्त हो जाएँ, तो मनुष्य के लिए दिन-रात बराबर हो जाते हैं और जीवन एक प्रकार से कष्टमय हो जाता है। आँखें शरीर की सबसे कोमल एवं सूक्ष्म अंग हैं। सुखमय जीवन के लिए इनका स्वस्थ होना बहुत जरूरी है। प्राय: अधिकतर नेत्ररोग कुपोषण, संक्रमण एवं चोट के कारण उत्पन्न होते हैं। उचित समय पर चिकित्सा-उपचार न करने पर धीरे-धीरे रोग बढ़ता जाता है और अंतत: व्यक्ति नेत्रहीनता का शिकार बन जाता है।

नेत्र रोगों के कारण

नेत्ररोगों के कई कारण होते हैं। प्राय: जिन कारणों से शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं, उन्हीं कारणों से आँखों में भी विविध प्रकार की बीमारियाँ

उत्पन्न होती हैं और दृष्टि को खराब कर देती हैं। चिकित्सा-विज्ञानियों के अनुसार नेत्र रोगों का प्रमुख कारण मस्तिष्कीय परिश्रम, देर तक लगातार पढ़ते-लिखते रहना, टी. वी. या सिनेमा देखना, आँखें गड़ा गड़ाकर दूर की वस्तुएँ देखना, सूर्य की ओर खुली आँखों से देखना, रात्रि को देर तक जागना नेत्रों में तनाव उत्पन्न करता है। इससे मांसपेशियाँ एवं तंत्रिकातंतु या स्नायुमंडल थक जाते हैं, परिणामस्वरूप किसी को पास की एवं किसी को दूर की वस्तुएँ दिखाई नहीं पड़तीं।

आयुर्वेद के प्रमुख ग्रंथ सुश्रुत संहिता के उत्तरतंत्र-१/२५-२७ में कहा गया है-

उष्णाभितप्तस्य जल प्रवेशाद् दूरेक्षणात्स्वप्नविपर्य्ययाच्च ।
प्रसक्तसंरोदनशोक कोप क्लेशाभिघातादतिमैथुनाच्च ॥
शुक्तारनालाम्ल कुलत्थ माषनिषेवणाद्वेगविनिग्रहाच्च ।
स्वेदाद्रजोधर्मनिषेवणाच्च छर्देर्विघाताद्वमनातियोगात् ॥
बाष्पग्रहात् सूक्ष्मनिरीक्षणांच्चनेत्रे विकारञ्जनयन्ति दोषाः ॥

अर्थात धूप या गरमी से व्याकुल होकर सहसा शीतल जल में प्रवेश करने या नहाने से, दूरस्थ वस्तुओं को अधिक देखने से, दिन में सोने से, रात्रि में जागने से तथा निरंतर रुदन, क्रोध, शोक, क्लेश, चोट लगने और अति स्त्री प्रसंग करने से नेत्र रोग उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त सिरका, कांजी, अम्लीय पदार्थ, कुलथी, उड़द आदि का निरंतर सेवन करने से, मल-मूत्रादि वेगों को रोकने से, आँसुओं के वेग रोकने से, अधिक पसीना आने से, अधिक धूम्रपान करने से, वमन के वेग को रोकने से या बहुत वमन करने से, बहुत बारीक-सूक्ष्म वस्तुओं के देखने का कार्य करने से वातादि दोष प्रकुपित होकर नेत्रों में अनेक प्रकार के जटिल रोगों को उत्पन्न करते हैं।

सुश्रुत ने अपने ग्रंथ के 'सूत्रस्थान' के व्याधिसमुद्देशीय अध्याय में नेत्ररोग के कारणों को सात भागों में विभक्त करते हुए उनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। आधुनिक चिकित्साविज्ञानी भी नेत्ररोग के कारणों को सात भागों में विभक्त करते हुए कहते हैं कि नेत्ररोग के निम्न कारण हो सकते हैं-१. आनुवंशिक दोष जैसे-Albinism या नेत्र शुक्लांगता, Night blindness या रतौंधी २. सहज विकार या जन्मबल प्रवृत्त (Congenital

defects)–जैसे–पलक उठानें में असमर्थता या केटारेक्ट, तारामंडल अथवा नेत्रगोलक का न होना आदि। ३. Physical Injuries अर्थात देहाभिघातजन्य चोट लगने, शीशे, बालू आदि के कण आँखों में पड़ने, बरफ पर चलने आदि के कारण उत्पन्न अंधता, मायोपिया या हाइपर मेट्रोपिया ४. Mechanical Injuries अर्थात रासायनिक अभिघातज रोग जैसे–ट्रोमेटिक केटारैक्ट या लेंस का अपने स्थान से हट जाना ५. Chemical Injuries अर्थात रासायनिक अभिघातज रोग ६. Parasitic Injuries अर्थात कीटाणुजन्य अभिघातज रोग ७. Degenrative Changes अर्थात अपक्रांतिज विकृति ८. Newgrowth अर्थात अर्बुदजन्य विकार जैसे ट्यूमर आदि।

यों तो नेत्ररोगों के उपर्युक्त अनेकों कारण बताए गऐ हैं, किंतु कुपोषण, रक्त में विद्यमान विषाक्तता या विजातीय तत्त्वों की अधिकता, आहार–विहार में असंयम, सोने–जागने में व्यवधान, मल–मूत्रादि वेगों का रोकना, दंतरोग, डायबिटीज, यौन–संसर्गज रोग आदि आँखों की खराबी के सबसे प्रमुख स्रोत हैं। संक्रमणजन्य बीमारियाँ भी नेत्रों को जब–तब प्रभावित करती रहती हैं, किंतु यह तब अधिक खतरनाक सिद्ध होती हैं, जब हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता या जीवनीशक्ति निर्बल होती है। मद्यपान, धूम्रपान, अत्यधिक उत्तेजक पदार्थों का सेवन, मिर्च–मसाले, अति उष्ण, तीखे, खट्टे, दाहकारी पदार्थ, बासी व पोषक तत्त्वों से रहित आहार आदि का सेवन नेत्ररोगों को जन्म देता है। दूषित रक्त से नेत्रों की दृष्टि दुर्बल होती है। पोषक तत्त्वों, विटामिन्स आदि की कमी से युक्त आहार रक्त को दूषित बनाते हैं। इससे आँखों को पर्याप्त रक्त आपूर्ति में कमी आती है और उसमें बिखरे तंत्रिका तंतु सही ढंग से अपना कार्य नहीं कर पाते हैं। फलतः आँखों में तनाव पैदा होता है और उसके विविध भाग, मांसपेशियाँ, नस–नाड़ियाँ, स्नायुमंडल कड़े पड़ जाते हैं। जिसका परिणाम दृष्टिदोष के रूप में सामने आता है और उसकी पूर्ति हमें चश्में आदि कृत्रिम साधनों से करनी पड़ती है। बहुत तेज प्रकाश अथवा मंद प्रकाश में पढ़ने, टेबुल पर झुककर या बहुत बारीक अक्षरों वाली पुस्तकें पढ़ने, समीप से टी. वी. आदि देखने से भी नेत्रविकार उत्पन्न होते हैं।

श्री वाग्भट्टाचार्य विरचित रसशास्त्र के प्रमुख आयुर्वेदिक ग्रंथ 'रसरत्न समुच्चय' के तेइसवें अध्याय में नेत्ररोगों की संख्या का वर्णन किया गया है। जिसका भावार्थ है-'नेत्र के कृष्ण पटल में पाँच, नेत्र की संधियों में नौ, नेत्र के संपूर्ण श्वेत पटल में तेरह, वर्त्मप्रदेश में सोलह, दृष्टिमंडल में चौबीस तथा नेत्र के शेष भाग में सत्ताइस। इस प्रकार आँखों में चौरान्नवे प्रकार के रोग होते हैं।' इसी तरह दोषानुसार नेत्ररोगों की गणना करते हुए सुश्रुत संहिता १/२८ में कहा गया है कि वात से दस, पित्त से दस, कफ से तेरह, रक्त से सोलह, सन्निपातज या सर्वगत पच्चीस तथा बाह्य कारणों से दो, ऐसे कुल मिलाकर छिहत्तर नेत्र रोग होते हैं।

यज्ञोपचार

सभी नेत्ररोगों में उनकी प्रकृति एवं तीव्रता के अनुसार 'आईड्राप्स' से लेकर विविध प्रकार की दवाइयों एवं आवश्यकता पड़ने पर शल्यक्रिया आदि का प्रचलन है। आयुर्वेद विशेषज्ञ नेत्र रोगों में-१. सेक-वनौषधियुक्त पानी की या घी आदि की सूक्ष्म धारा डालना २. आश्चोतन-पोटली प्रभृति से नेत्रों में दवा डालना या क्वाथ की बूँदें टपकाना या पोटली बनाकर सेंकना ३. पिंडी-जड़ी- बूटियों को पानी में पीसकर टिकिया बनाकर आँखों पर पट्टी बाँधना ४. विडालक-आँखों के बाहरी भाग पर लेप करना ५. तर्पण-आँखों के भीतर दवा भरना ६. पुटपाक-पकाई हुई दवा का रस अंजन की तरह आँख में आँजना आदि उपचार-उपक्रम अपनाते हैं।

आयुर्वेदिक चिकित्सा की ही एक शाखा यज्ञ चिकित्सा है। इसके अंतर्गत किए गये विविध प्रयोग-परीक्षणों में पाया गया है कि यज्ञोपचार प्रक्रिया अपनाने से प्राय: सभी प्रकार के नेत्ररोगों का शमन होता है। अन्यान्य चिकित्सा-पद्धतियों से उपचार कराने के पश्चात् भी यदि नेत्र रोगी नीचे वर्णित विधि के अनुसार हवनोपचार एवं क्वाथ का सेवन करता रहे, तो दोबारा रोग उभरने की गुंजाइश नहीं रहती। साथ ही दवाओं की भरमार से उत्पन्न होने वाली जटिलताओं से भी छुटकारा मिल जाता है। यज्ञोपचार प्रक्रिया सस्ती भी है और सरल भी, जिसे हर कोई घर बैठे सहजता से संपन्न कर सकता है।

नेत्ररोगों की विशिष्ट हवन सामग्री

इसमें निम्नलिखित चीजें मिलाई जाती हैं-

1. कपूर	2. लौंग	3. लाल चंदन
4. दारुहलदी	5. रसौत	6. हलदी
7. लोध्र	8. मुलहठी	9. देवदार
10. बच	11. नीम पत्र	12. धमासा
13. गोरखमुंडी	14. बबूल के पत्ते	15. कचूर
16. कमल।		

उपर्युक्त सभी सोलह चीजों को बराबर मात्रा में लेकर साफ-स्वच्छ करके सुखा लेते हैं और इन्हें कूट-पीसकर जौकुट पाउडर रूप में हवन सामग्री तैयार कर लेते हैं। इसे एक स्वच्छ डिब्बे में रखकर उस पर 'नेत्ररोग की विशिष्ट हवन सामग्री-नंबर-२' का लेबल चिपका देते हैं। हवनोपचार करते समय पहले से तैयार 'कॉमन हवन सामग्री-नम्बर-१' की आधी मात्रा मिलाकर तब हवन करते हैं। अर्थात ५० ग्राम यदि 'विशिष्ट हवन सामग्री नम्बर-२' की ली गई है, तो 'कॉमन हवन सामग्री नम्बर-१' की भी ५० ग्राम मात्रा ही ली जाती है। हवन करने का मंत्र सूर्य गायत्री मंत्र ही रहता है।

क्वाथ-

हवन करने के साथ ही निम्नलिखित 'नेत्ररोगनाशक क्वाथ' का सेवन भी नेत्ररोगी को नित्य नियमित रूप से करना चाहिए। इस क्वाथ में निम्न चीजें समभाग में मिलाई जाती हैं-

1. लाल चंदन	2. गिलोय	3. दारुहलदी	4. कुटकी
5. चिरायता	6. सोंठ	7. नीम छाल	8. चित्रक
9. वासा मूल	10. पटोल पत्र	11. आँवला	12. हरड़
13. बहेड़ा	14. नागरमोथा	15. हलदी	16. कुटज छाल
17. इंद्रजौ	18. गोरखमुंडी	19. शतावर	20. सारिवा।

उपर्युक्त सभी चीजों को समभाग में लेकर कूट-पीसकर उनका जौकुट पाउडर बना लेते हैं और ५० ग्राम चूर्ण को आधे लीटर पानी में

चढ़ाकर क्वाथ विधि से मंद आँच पर क्वाथ बना लेते हैं। उबलते-उबलते जब क्वाथ लगभग १०० मि.ली. रह जाता है, तो उतारकर ठंडा होने पर कपड़े से छान लेते हैं। यह क्वाथ की एक मात्रा है। इसे नित्य सुबह एक ही बार पीना है। इसी तरह नित्यप्रति ताजा तैयार क्वाथ पीते रहने और हवनोपचार करने से नेत्रों के सभी रोग दूर हो जाते हैं।

३. व्रण या घाव की सरल यज्ञ चिकित्सा

मनुष्य को प्राय: आएदिन चोट, मोच, खरोच, फोड़े-फुंसी, व्रण या घाव होने जैसी व्याधियों से दो-चार होना पड़ता है। कई बार प्राकृतिक आपदाओं जैसे-भूकंप, आगजनी आदि एवं आकस्मिक दुर्घटनाओं के कारण भी शरीर का कोई भाग दब जाने, छिल जाने या जल जाने से बाहरी एवं भीतरी अंगों में गहरे घाव बन जाते हैं, हड्डियाँ टूट जाती हैं। इसी तरह कई बार तीक्ष्ण शस्त्रों से कट जाने पर भी यही स्थिति बनती है। बच्चों में प्राय: फोड़े-फुंसी से लेकर खेल-खेल में चोट लगने से कहीं न कहीं हाथ-पैर में छोटे-बड़े घाव बनते रहते हैं। समय पर सही उपचार न मिल पाने के कारण इस तरह के घाव या व्रण संक्रमित होकर सड़ने लगते हैं और देखते ही देखते छोटा सा घाव गहरा होता चला जाता है। कभी-कभी यही व्रण या घाव संक्रमण विशेष के कारण गैंग्रीन, सेल्यूलाइटिस, टिटेनस जैसी प्राणघातक व्याधियों में परिवर्तित हो जाते हैं, जिनके कारण पीड़ित अंग को शल्य-क्रिया द्वारा अलग कराने जैसी कष्टकारक परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में व्रण को Ulcer तथा घाव को Wound के नाम से जाना जाता है। आयुर्वेद के प्रमुख ग्रंथ 'सुश्रुत संहिता' में 'व्रण को परिभाषित करते हुए कहा गया है-'जिस स्थान पर घाव हुआ हो, वहाँ आच्छादन करने से इसे 'व्रण कहते हैं।' यह एक ऐसी क्रिया है, जो शरीर की धातुओं का भक्षण करती है अर्थात ऊतकों का विनाश करती है। घाव भरने के पश्चात् भी 'व्रण' के स्थान पर एक चिह्न बन जाता है, जिसे Scar या व्रण चिह्न कहते हैं। यह जीवनपर्यंत बना रहता है।

व्रण दो प्रकार के होते हैं-१. निज व्रण या अल्सर एवं २. आगंतुज व्रण या घाव। निज व्रण प्राय: शरीर में वात, पित्त आदि दोषों के प्रकुपित होने

के कारण उत्पन्न होते हैं, इसलिए इन्हें दुष्ट या दोषज व्रण भी कहते हैं। इस व्रण के साथ में शोथ भी रहता है। सबसे पहले यह चोट आदि आघात लगने से स्थानीय सूजन के रूप में उभरता है और पकने पर अपने आप फट जाता है अथवा शल्य-क्रिया द्वारा चीरा आदि लगाने से बह जाता है। इस तरह बने घाव को ही अल्सर या व्रण कहते हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान-पैथालॉजी के अनुसार इसे ऊतकीयक्रम का विच्छेदन या ऊतकविनाश कह सकते हैं।

Wound या घाव को आघतज व्रण या सद्य:व्रण भी कहते हैं। ये बाह्य कारणों से उत्पन्न होते हैं और बाद में दोषों से युक्त हो जाते हैं। घाव किसी भी वस्तु, जैसे-शस्त्रादि से आघात लगकर या हिंस्र पशुओं के काटने आदि से उत्पन्न होता है। इसमें त्वचा के साथ-साथ पेशी व कोमल तंत्रिकातंतु भी कटकर, टूट-फूटकर नष्ट हो जाते हैं, जिससे गहरा घाव बन जाता है और तीव्रगति से रक्तधारा बहने लगती है। इसे ही आघातज व्रण कहते है। आयुर्वेद शास्त्रों के अनुसार इसी का दूसरा नाम सद्य:व्रण है-**"सद्योव्रणये सहसा संभवन्त्यभिघातत:"** अर्थात जो सहसा दुर्घटनाओं के कारण उत्पन्न होते हैं, वे सद्य:व्रण कहलाते हैं। इसके विपरीत आगन्तुज घाव बाहरी करणों से उत्पन्न होते हैं। महर्षि चरक ने अपने ग्रंथ चरक संहिता-चिकित्सा स्थान १३/५ में कहा है-

वधबंधप्रपतनाद्दंष्ट्रा दंत नख क्षतात् ।
आगन्तवो व्रणास्तद्वद्विषस्पर्शाग्निशस्त्रजा: ॥

अर्थात् मारपीट या चोट-आघात लगने से, रस्सी आदि से दृढ़तापूर्वक बाँधने से, ऊँचे स्थान जैसे-वृक्ष, भवन, छत आदि के ऊपर से गिरने से, विषैले या हिंसक पशु-पक्षियों के काटने से अथवा दाँत या नाखून से घाव हो जाने से, अगद अर्थात विष के लेप-प्रलेप से, औषधि आदि प्रयोगों से; और भी अनेक कारणों से आगंतुक व्रण या घाव हो जाते हैं। इसी प्रकार विष के स्पर्श से, आग से जलने से या शस्त्र आदि से कट जाने से घाव हो जाता है। इस तरह अपने स्वरूप तथा आकार की दृष्टि से घाव कई प्रकार के होते हैं-

१. छिन्न-भिन्न क्षत-इस प्रकार के घाव प्राय: बिना धार वाले ठोस औजारों, जैसे-ईंट-पत्थर, हथौड़ा, लाठी आदि से चोट लगने या गिरने पर चोट

लग जाने से अथवा मशीन से कट जाने पर उत्पन्न होते हैं। जानवरों के काटने पर भी इसी तरह के पीड़ायुक्त गहरे घाव बनते हैं।

२. **कटा हुआ क्षत**-तेज धार वाले अस्त्र या हथियार जैसे-चाकू, छुरी, तलवार, फरसा, काँच आदि से कटने पर इस तरह के घाव बनते हैं।

३. **विद्ध व्रण**-सुई, आलपिन, भाला, बंदूक के कुंदे आदि के लगने से शरीर को बींधते हुए छिद्रयुक्त गहरे घाव बनते हैं।

४. **गहरे घाव**-बंदूक की गोली आदि लगने से इस तरह के अस्थि तक में अंदर धँसे हुए गहरे घाव बनते हैं।

५. कुचल जाने से उत्पन्न **नीलाभ व्रण** एवं

६. **छिलने के घाव**।

व्रणोपचार

व्रणोपचार के क्षेत्र में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। विविध प्रकार की एण्टीबायोटिक औषधियों से लेकर इन्जेक्शन, एण्टीसेप्टिक क्रीम आदि तक घाव के स्वरूप एवं प्रकृति तथा उनकी साध्यता-असाध्यता के अनुसार प्रयुक्त होते हैं। आवश्यकता पड़ने पर शल्य क्रिया का भी सहारा लिया जाता है। इतने पर भी कई बार घाव इतने गहरे हो जाते हैं कि ठीक होने में महीनों लग जाते हैं। ग्रामीण इलाकों में, जहाँ चिकित्सा-सुविधाओं का प्राय: अभाव है, वहाँ इस संकट से उत्पन्न व्याधियों का व्यापक असर देखा जाता है।

ऐसी स्थिति में यज्ञोपचार प्रक्रिया अपनाकर उन समस्त व्याधियों से छुटकारा पाया जा सकता है, जो महँगी चिकित्सा से भी पिंड छोड़ने का नाम नहीं लेतीं। यज्ञ चिकित्सा व्रण या घाव को शीघ्र रोपित करने के साथ ही समस्त संक्रमणों से शरीर की रक्षा करती है। अन्यान्य चिकित्सा पद्धतियाँ एक ओर जहाँ जीवाणुओं-विषाणुओं का सफाया करती हैं, वहीं दूसरी ओर जीवनीशक्ति के संवर्द्धन में इनसे कोई विशेष सहायता नहीं मिलती। यही कारण है कि घाव ठीक होने के पश्चात् भी रोगी को सामान्य स्थिति में आने में अधिक दिन लग जाते हैं। यज्ञ चिकित्सा की विशिष्टता है कि यह

रोग-निवारण के साथ ही साथ जीवनीशक्ति के संवर्द्धन का प्रमुख कार्य करती है।

व्रण-घाव की विशिष्ट हवन सामग्री

इसमें निम्नलिखित चीजें मिलाई जाती हैं-

1. चमेली के पत्ते 2. पद्माख 3. दूर्वा मूल 4. बरगद की जटा
5. तुलसी की जड़ 6. तिल 7. नीम की गुठली 8. नीम के पत्ते
9. आमाहलदी 10. हलदी 11. दारुहलदी 12. चंदन
13. प्रियंगु 14. गुग्गुल 15. गंधबिरोजा 16. अगर
17. राल चूर्ण 18. सारिवा 19. देवदार 20. सर्ज 21. गोघृत।

गोघृत को छोड़कर उपर्युक्त सभी २० चीजें समभाग में लेकर कूट-पीस लेते हैं और उनका जौकुट पाउडर बना लेते हैं। इसे एक डिब्बे में सुरक्षित रखकर उस पर 'व्रण या घाव की विशिष्ट हवन सामग्री-क्रमांक-२' का लेबल चिपका देते हैं। हवन करने से पूर्व इसमें पहले से तैयार की गई 'कॉमन हवन सामग्री-क्रमांक-१' की बराबर मात्रा मिला लेते हैं और तब सूर्य गायत्री मंत्र से हवन करते हैं। हवन करते समय हवन सामग्री में उसकी चौथाई मात्रा गोघृत मिला लेते हैं। हवन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पीड़ित व्यक्ति के शरीर पर कम से कम वस्त्र रहने चाहिए, जिससे यज्ञीय ऊर्जा विस्तृत क्षेत्र पर अबाध रूप में पड़ सके।

व्रणरोपक तैल

हवनोपचार के साथ ही घाव पर वनौषधियों से तैयार किए गए तैल का प्रयोग अत्यधिक लाभकारी सिद्ध होता है। इसे हर कोई स्वयं तैयार कर सकता है। इसमें निम्नलिखित औषधियाँ मिलाई जाती हैं-

1. हलदी 2. दारुहलदी 3. कुटकी 4. कूठ
5. मुलहठी 6. मंजीष्ठ 7. पद्माख 8. हरड़
9. लोध्र 10. नीलमकल 11. करंज के बीज 12. करंज के पत्ते
13. चमेली के पत्ते 14. पटोल पत्र (परवल के पत्ते) 15. नीम के पत्ते
16. शुद्ध नीलाथोथा 17. मधुमक्खी के छत्ते का मोम 18. अनंतमूल
19. सर्ज 20. तिल तैल 21. जल।

उपर्युक्त चीजें-क्रमांक १ से १९ तक की (मोम को छोड़कर) सभी वस्तुओं को बराबर-बराबर मात्रा में अर्थात १५-१५ ग्राम लेकर साफ-स्वच्छ कर लेते हैं और सबको एक साथ पानी के साथ अच्छी तरह पीसकर कल्क या लुग्दी बना लेते हैं। करंज, चमेली आदि के पत्ते जहाँ तक संभव हो, हरे-ताजे व कोमल लेने चाहिए। अब एक लीटर तिल के तैल में चार लीटर जल मिलाकर कल्क एवं मोम को इस तैल मिश्रण में डालकर मंद आँच पर चढ़ाकर तैल विधि से पकाते हैं। उबलते-उबलते जब पानी जल जाता है और मात्र तैल शेष बच रहता है, तो उसे उतार कर ठंडा कर लेते हैं और कपड़े से छानकर कार्क लगी बोतल में सुरक्षित रख लेते हैं। यह तैल सभी प्रकार के व्रणों, शस्त्र आदि से कट जाने पर हुए घावों, पुराने सड़े-गले घावों, फुंसियों, खुजली, स्फोट, विषैले जीवों के काटने से उत्पन्न घावों, जले हुए भागों, कील-काँटे आदि चुभने, चमड़ी छिल जाने, नख, दाँत आदि से बने क्षत, जानवरों के काटने से बने घाव आदि पर लगाने से सभी प्रकार के उपद्रव शांत होते हैं और घाव शीघ्रता से भरता है। गहरे घावों में रुई को इस तैल में भिगोकर बाँधा जाता है। व्रण या घाव की प्रकृति-गहराई आदि के अनुसार इसे प्रयुक्त किया जा सकता है। व्रणरोपण में अद्‌भुत रूप से सक्षम यह तैल बनाने और प्रयुक्त करने में सरल भी है और लाभप्रद भी।

अध्याय-११

यज्ञ चिकित्सा से मनोरोगों का समग्र उपचार

★★★★★★★★★★★★

प्राचीनकाल में आरोग्य संवर्द्धन एवं रोग निवारण के लिए 'भैषज' यज्ञ किए जाते थे और लोग उनसे लाभ प्राप्त करते थे। ये यज्ञ ऋतुओं के संधिकाल में होते थे, क्योंकि इसी समय व्यापक स्तर पर व्याधियों का प्रकोप होता था। इन यज्ञों की विशेषता होती है कि इनमें होमी गई हवन सामग्री वायुभूत होकर न केवल शारीरिक व्याधियाँ दूर करती है, वरन् इसके प्रभाव से व्यक्ति मानसिक बीमारियों एवं मनोविकृतियों से भी छुटकारा पा लेता है। कषाय-कल्मष कटते हैं और व्यक्तियों में सत्प्रवृत्तियों को भर देने वाले उभार उमगते हैं। समग्र व्यक्तित्व-विकास में इससे अपूर्व सहायता मिलती है।

इसे विडंबना ही कहना चाहिए कि आज की समस्त चिकित्सापद्धतियाँ मात्र शारीरिक रोगों तक ही अपने आपको सीमित किए हुए हैं, जबकि मस्तिष्कीय उपचार की आवश्यकता शरीरोपचार से भी कहीं अधिक है। इन दिनों मनोविकारों, मानसिक रोगों की भरमार शारीरिक व्याधियों से कहीं अधिक है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि आज नब्बे प्रतिशत व्यक्तियों को तनाव, दबाव, अवसाद, अनिद्रा, चिंता, आवेश, क्रोध, उत्तेजना, मिरगी, उन्माद, सनक, निराशा, उदासीनता, आशंका, अविश्वास, भय, असंतुलन, शाइजोफ्रेनिया आदि में से किसी न किसी मनोव्याधि से ग्रस्त देखा जाता है। इन विकारों से व्यक्तित्व टूट जाता है। संतुलित एवं विवेकशील व्यक्तित्व विरले ही दिखाई देते हैं।

व्यक्तित्व संबंधी इन विकृतियों का निदान यज्ञ चिकित्सा में सन्निहित है। यहाँ तक कि कोई व्यक्ति उन्मत्त या पागल हो जाए और प्रलाप करने

लगे, तो उस स्थिति में भी वह यज्ञ चिकित्सा से स्वस्थ हो सकता है। यज्ञाग्नि में हवन की हुई औषधियों की सुवासित ऊर्जा उसके विकृत मस्तिष्क और उत्तेजित मन को ठीक कर सकती है। इसका प्रमुख कारण है कि यज्ञ में सुगंधित औषधियाँ होमी जाती हैं, उससे जो ऊर्जा निस्सृत होती है, वह हलकी होने के कारण ऊपर को उठती है। जब यह नासिका द्वारा अंदर खींची जाती है, तो सर्वप्रथम मस्तिष्क, तदुपरांत फेफड़ों में, फिर सारे शरीर में फैलती है। उसके साथ औषधियों के जो अत्यंत उपयोगी सुगंधित सूक्ष्म अंश होते हैं, वे मस्तिष्क के उन क्षेत्रों तक जा पहुँचते हैं, जहाँ अन्य उपायों से उस संस्थान का स्पर्श तक नहीं किया जा सकता। अचेतन मन की गहन परतों तक यज्ञीय ऊर्जा की पहुँच होती है और वहाँ जड़ जमाए हुए मनोविकारों, बीमारियों को निकाल बाहर करने में सफलता मिलती है।

मानव जीवन में मन की महत्ता

यज्ञोपैथी द्वारा मानसिक रोगों की चिकित्सा की ओर बढ़ने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि मानव में मन को प्रधानता क्यों दी गई है? शरीर का उससे संबन्ध क्या है? उपेक्षित होने, दुखी होने पर वह खीजता, पगलाता क्यों है? आदि बातों को जान लेने पर सहज ही समझा जा सकता है कि मानसिक रोगों का मूल कारण क्या है और उनसे कैसे बचा जा सकता है तथा आधि-व्याधि ग्रस्त होने पर उनका उपचार किस तरह किया जा सकता है? प्राचीनकाल में जिस मन की श्रेष्ठता एवं पवित्रता-प्रखरता के लिए, तेजस्विता के लिए वैदिक ऋषियों से लेकर तपस्वियों, मुनि-मनीषियों, सिद्ध-संतों तक ईश्वर से यह प्रार्थना करते रहे हैं कि-**"तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु"** अर्थात हमारा मन कल्याणकारी विचारों से, भावनाओं से ओत-प्रोत हो। आज उसी मन को मनुष्य ने ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, मोह, मान, मद, क्रोध, कामुकता, स्वार्थपरता आदि के अचिंत्य चिंतन से, कुविचारों से ठसाठस भर लिया है। मन-मस्तिष्क में दिन-रात अगणित दुर्भावनाजन्य कुविचार एवं कुटिल कुचालों के जीवाणु-विषाणु निरंतर कुलाँचें भरते रहते हैं। उसमें न तो आत्मचिंतन के लिए जगह बची है और न लोकमंगल के लिए कुछ सोचने तथा करने के लिए उमंग। मन-मस्तिष्क में भरा हुआ अमृत कलश उक्त प्रवृत्तियों, दुर्भावनाओं, वासनाओं से निरंतर उद्वेलित-आंदोलित होते रहने से

प्रदूषित एवं विषाक्त बनता जा रहा है। ऐसी स्थिति में शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य एवं सुख-शांति की कल्पना कैसे की जा सकती है? शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य के बिना लोक एवं परलोक की साधना संभव भी नहीं है। कठोपनिषद् के ऋषि कहते है-

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनःप्रग्रहमेव च॥

अर्थात मानवीय कायारूपी रथ में आत्मा रथी या स्वामी और बुद्धि सारथी या ड्राइवर है, लेकिन इन सबका नियंत्रण या बागडोर मन के हाथ में है। वस्तुतः मन ही मनुष्य का नियंत्रक है।

गहराई से पर्यवेक्षण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि शरीर मन का नौकर है, गुलाम है। मन जैसा चाहता है, शरीर को हर हालत में एक वफादार नौकर की तरह अपनी गतिविधियाँ संचालित करनी पड़ती हैं। यों तो अच्छे-बुरे कर्मों का दोष शरीर को दिया जाता है और दंड भी उसी को भुगतना पड़ता है, परंतु वास्तविकता कुछ और है। मन के कुसंस्कारी और अचिंत्य चिंतन के अभ्यासी हो जाने के कारण उसकी दिशाधारा अनैतिकता एवं प्रकृति व्यवस्था के प्रतिकूल बहने लगती है। काया तो उपकरण मात्र है। शास्त्रों में उसे वाहन की संज्ञा ठीक ही दी गई है। मन अच्छी-बुरी जिस भी दिशा में सोचेगा और चलेगा, शरीर एक वफादार नौकर की तरह अपने स्वामी मन के दिशा-निर्देशों का पालन करेगा। शरीर में स्वयं सोचने-समझने, तर्क-वितर्क करने या अवज्ञा करने की समझ एवं सामर्थ्य कहाँ है, उसे तो मन का आज्ञानुवर्ती होकर रहना ही पड़ता है। क्रियाएँ तो शरीर करता है, पर उसे अभिप्रेरित करने, आदेश देने की जिम्मेदारी पूर्णतः मन की है।

विविध प्रकार के आधुनिक शारीरिक-मानसिक शोध-अनुसंधानों के आधार पर भी अब यह सिद्ध हो गया है कि शरीर की ऐच्छिक एवं अनैच्छिक, प्रत्यक्ष और परोक्ष क्रियाओं पर पूरी तरह नियंत्रण चेतन व अचेतन मन का ही रहता है। रक्ताभिसरण, हृदय का आकुंचन-प्रकुंचन, श्वास-प्रश्वास, निमेष-उन्मेष, ग्रहण-विसर्जन, निद्रा-जागृति आदि अनैच्छिक कहलाने वाली क्रियाएँ अचेतन मन की छत्रछाया में ही संचालित होती हैं।

चेतन मन के द्वारा बुद्धिपूर्वक किए जाने वाले क्रियाकलापों और लोकव्यवहारों का ताना-बाना बुना जाता है। शरीर की समूची गतिविधियों का आधिपत्य मन-मस्तिष्क के हाथों में रहता है। उसकी चिंतन-चेतना की प्रक्रिया एवं स्तर जैसा होता है, उसका प्रभाव शरीर पर अवश्य परिलक्षित होता है। यदि मन उद्विग्न, आवेशग्रस्त, क्रोध से भरा हुआ, ईर्ष्या-द्वेष में डूबा हुआ होगा, तो उसका प्रभाव शारीरिक उत्तेजना, बेचैनी, हताशा, उदासी, अवसाद जैसे कितने ही मनोरोगों के रूप में प्रकट होगा।

मनोविकार और उनकी जटिलताएँ

मनोचिकित्सा विज्ञान के अनुसार मन की प्रमुख वृत्तियाँ दो हैं- १. इच्छा और २. द्वेष। इनके व्यतिरेक, अतियोग या मिथ्यायोग के कारण मनोविकृतियाँ पनपती और मानसिक व्याधियाँ उपजती हैं। सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान १/५४ में मानसिक वृत्तियों का उल्लेख करते हुए कहा गया है-

'मानसास्तु क्रोध शोक भय हर्ष विषादेर्ष्यासूयादैन्य
मात्सर्य लोभ कामप्रभृतय इच्छाद्वेषभेदैर्भवन्ति।'

अर्थात मानसिक व्याधियाँ क्रोध, शोक, भय, हर्ष, विषाद, ईर्ष्या, असूया, दैन्य, मात्सर्य, काम, लोभ आदि, जो इच्छा और द्वेष के भेद हैं, विकृत होने से उत्पन्न होती हैं। विषयों के प्रति उत्कट अभिलाषा को इच्छा कहते हैं। विभिन्न वस्तुओं के प्रति अलग-अलग तरह की भिन्न-भिन्न इच्छाएँ जागृत होती हैं। हर्ष, काम, लोभ आदि इसी के अंतर्गत आते हैं। द्वेष में विषयों से अप्रीति या अरुचि होती है। ये हैं-क्रोध, शोक, भय, विषाद, ईर्ष्या, असूया, मात्सर्य आदि। इसी तरह मद, मान, दंभ, मोह आदि भी मानसिक विकार की श्रेणी में आते हैं। मनोविज्ञान के अंतर्गत मन सहित मन की इन्हीं विविध वृत्तियों के संबंध में विचार किया जाता है, जबकि मानस रोग-विकार या असामान्य मन के निदान और उसके चिकित्सा-उपचार का अध्ययन मानस चिकित्सा विज्ञान या Psychiatry के अंतर्गत किया जाता है।

शारीरिक रोगों को व्याधि एवं मानसिक रोगों को आधि कहा जाता है। शारीरिक व्याधियों, जैसे-सरदी, जुकाम, बुखार, अस्थमा, टी. बी. एवं

हृदयरोग, मधुमेह, वातव्याधि आदि की चिकित्सा की अनेक प्राचीन व आधुनिक चिकित्सा पद्धतियाँ प्रचलित हैं। आयुर्वेद, यूनानी, होम्योपैथी, सिद्धचिकित्सा, एलोपैथी, क्रोमोपैथी, बायोकेमी, नेचरोपैथी, प्राणिक हीलिंग, मंत्र चिकित्सा आदि कितनी ही चिकित्सा पद्धतियाँ कायिक रोग निवारण में प्रयुक्त होती हैं, परंतु मानसिक रोगों का न तो कोई महत्त्व समझा जाता है और न ही उनके उपचार का कोई विशेष प्रबंध है। शारीरिक रोगों की अपेक्षा मानसिक रोगों से मनुष्य को कहीं अधिक हानि उठानी पड़ती है। आज के आपाधापी भरे प्रतिस्पर्द्धात्मक वातावरण एवं गलाकाट संस्कृति तथा एक दूसरे को रौंदकर आगे बढ़ने की नीत्सी मनोवृत्ति ने लोगों का जीवन दूभर कर दिया है। परिणामस्वरूप तनाव से लेकर पागलपन, आत्महनन, अवसाद जैसी कितनी ही घातक मानसिक बीमारियों की बाढ़-सी आ गई है। अचिंत्य चिंतन एवं भ्रष्ट आचरण ने लोगों के दैनिक जीवन में गहरी पैठ बना ली है और अंदर से उसे खोखला बना दिया है।

ऐसी स्थिति में काउन्सिलिंग द्वारा सामान्य मनोरोगों की चिकित्सा तो की जा सकती है और उसके कभी उत्साहजनक तो कभी निराशाजनक परिणाम भी सामने आते हैं। प्रचलित विधियों में चेतन-अचेतन मन की गहराइयों में जमी पड़ी सड़ी-गली मान्यताओं, मनोग्रंथियों को उखाड़ फेंकने और नई मान्यताएँ जमाने का स्नेह भरा प्रयत्न किया जाता है। इतने पर भी कहीं न कहीं मन-मस्तिष्क के किसी कोने में कोई चीज दबी रह जाती है, जो उपयुक्त खाद-पानी एवं वातावरण पाते ही दुबारा व्यक्ति के मन को आच्छादित कर लेती है और सारे प्रयासों पर पानी फिर जाता है।

मानसिक रोगों के उत्पत्ति का मूल कारण

योगवशिष्ठ में मन को ही समस्त विचारों का मूल माना और उसे परमात्मा की कल्पना का केंद्र कहा गया है। शुद्ध, सात्त्विक एवं निर्मल मन एक ओर जहाँ परमात्मचेतना का आश्रय स्थल है, वहीं दूसरी ओर जब वह रजोगुण और तमोगुण से भर जाता है, तो अनेकानेक विकृतियों का भांडागार बन जाता है। मानसिक रोगों को इन्हीं विकृतियों की देन कहा जा सकता है। इससे उत्पन्न व्यथाएँ शरीर के माध्यम से मन को ही भुगतनी पड़ती हैं। वस्तुतः मन ही कुकर्म करता और वही दंड भुगतता है। इसीलिए शास्त्रकारों

ने भली-बुरी परिस्थितियों के लिए मन को उत्तरदायी बताते हुए उसे ही बंधन-मोक्ष का कारण बताया है। आधुनिक मनोचिकित्सा विज्ञानी इतनी गहराई तक तो अभी नहीं पहुँच सके हैं, किंतु अपने गहन अध्ययन-अनुसंधानों के आधार पर उनने जो निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं, उसके अनुसार मानसिक वृत्तियों की अधिकता, निस्तेजता अथवा विकृति ही मानसिक रोगों की उत्पत्ति के प्रमुख कारण हैं। महर्षि चरक ने सदियों पूर्व इसी तथ्य का रहस्योद्‌घाटन करते हुए अपने ग्रंथ में कहा है-

'मानसः पुनरिष्टस्यालाभाल्लाभाच्चानिष्टस्योपजायते ।'

-च.सं.सू. (११/४९)

मनोनुकूल वस्तुओं के न प्राप्त होने पर तथा अप्रिय वस्तुओं के प्राप्त होने पर मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। शरीर और मन परस्पर घनिष्ठता से जुड़े होने के कारण एक ही विकृति का असर दूसरे पर अवश्य परिलक्षित होता है।

मानसिक रोगों का मूल कारण क्या है? इसका सटीक उत्तर हमें आयुर्वेद के प्राचीन ग्रंथ चरक संहिता में मिलता है। इस ग्रंथ के शरीरस्थान के एक प्रसंग में छात्र अग्निवेश अपने गुरु आचार्य चरक से पूछता है-"भगवन्! संसार में पाए जाने वाले अनेक रोगों का मूल कारण क्या है?" आचार्य उत्तर देते हैं-"लोगों के दुष्कर्म जिस स्तर के होते हैं, उसी के अनुरूप उन्हें पापों का प्रतिफल शारीरिक और मानसिक आधि-व्याधियों के रूप में प्राप्त होता हैं।" आँकड़े बताते हैं कि प्राचीनकाल में जब आज की तुलना में सुविधा-साधनों की इतनी भरमार नहीं थी, खाने-पीने के लिए पौष्टिक आहार एवं चिकित्सा-उपचार की व्यापक सुविधाएँ उतनी नहीं थीं, जितनी कि आज हैं । इतने पर भी तब यज्ञीय एवं धार्मिकता का वातावरण था। लोग उच्चस्तरीय आस्थाओं के साथ सोद्देश्य जीवन जीते थे और स्वस्थ्य एवं दीर्घजीवी होते थे। जब से लोग निरुद्देश्य जीवन जीने लगे हैं, उच्चस्तरीय आस्थाओं की अवहेलना करने लगे हैं, विलासी, बनावटी और अहंकारी गतिविधियाँ अपनाने लगे हैं, चिंतन में दुष्टता एवं आचरण में भ्रष्टता का समावेश हुआ है, तब से आंतरिक तनावों एवं अंतर्द्वंद्वों में असामान्य रूप से

बढ़ोत्तरी हुई है। यही कारण है कि आज अधिसंख्य व्यक्ति किसी न किसी प्रकार के मानसिक रोगों से त्रस्त पाए जाते हैं। गहराई से कुरेदने पर जब उनकी मानसिक परतें खुलती हैं, तो उन्हें देखकर मनोचिकित्सक दंग रह जाते हैं।

जिस तरह आहार-विहार के असंयम से कायिक रोग पनपते हैं, उसी तरह विचारणा, भावना, चिंतन-मनन एवं कर्म के लिए निर्धारित नीति-मर्यादा का उल्लंघन करने के कारण मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। शरीर और मन परस्पर गुँथे हुए हैं। शारीरिक रोग कालांतर में मानसिक और मानसिक रोग शारीरिक रोग बन जाते हैं। वस्तुतः शरीर तथा मन के प्रभावों की पारस्परिक क्रिया के बिना कोई आधि-व्याधि उत्पन्न नहीं हो सकती है। कारण स्पष्ट करते हुए सुश्रुत संहिता- सूत्रस्थान, १/५६ में कहा गया है-**'त एते मनः शरीराधिष्ठानाः'** अर्थात शरीर और मन ही रोगों के आश्रयस्थल हैं। वात, पित्त और कफ की विकृति जिस तरह शारीरिक रोगों का प्रधान कारण है, उसी तरह मनसिक रोगों के आदिकारण 'रज' और 'तम' जैसे मानसिक दोष हैं। चरक संहिता-विमानस्थान, ६/५ में कहा गया है-**'रजस्तमश्च मानसौ दोषौ. ..।'** अर्थात रज और तम मानस दोष हैं। इनके विकृत होने से काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मान, मद, शोक, चिंता, उद्वेग, भय, हर्ष आदि रोग उत्पन्न होते हैं। ये दोष जिन कारणों से प्रकुपित होते हैं और मनोरोग उत्पन्न करते हैं, उनका मूल हेतु 'प्रज्ञापराध' को माना गया है। चरकसंहिता-सूत्रस्थान, ७/५० में कहा गया है कि सभी तरह के पापकर्म प्रज्ञापराध से होते हैं-

'मनोविकारास्तेऽप्युक्ताः सर्वे प्रज्ञापराधजाः।'

आयुर्वेद शास्त्रों में मानसिक रोगों की उत्पत्ति के तीन प्रमुख कारण माने गए हैं-१. प्रज्ञापराध, २. असात्म्येंद्रियार्थ संयोग एवं ३. परिणाम।

१. प्रज्ञापराध

प्रज्ञापराध क्या है? इसे परिभाषित करते हुए चरक संहिता नामक उक्त ग्रंथ के शरीरस्थान, १/१०१ में कहा गया है-

धीधृतिस्मृतिविभ्रष्टः कर्म यत् कुरुतेऽशुभम् ।
प्रज्ञापराधं तं विद्यात् सर्वदोष प्रकोपणम् ॥

अर्थात धी, धृति और स्मृति के भ्रष्ट हो जाने पर मनुष्य जब अशुभ या अकल्याणकारी कर्म करता है, तब सभी शारीरिक एवं मानसिक दोषों को प्रकुपित करने वाले उन कर्मों को 'प्रज्ञापराध' कहा जाता है। प्रज्ञा कहते हैं-निर्मल बुद्धि को, नीर-क्षीर विवेक बुद्धि को। इसके ही तीनों भाग हैं-धी, धृति और स्मृति। 'धी' को ही बुद्धि कहते हैं। इसका कार्य है-निश्चयात्मक ज्ञान या यथार्थ ज्ञान उपार्जित करना; अर्थात जो वस्तु जिस रूप में होती है, उसका उसी रूप में ज्ञान कराना 'धी' का कार्य है। इसके विभ्रंश होने से यथार्थ ज्ञान नहीं होता। 'धृति' अर्थात ज्ञान को धारण करना या मन को उचित कार्य में प्रवृत्त करना धृति का कार्य है। धी-विभ्रंश व्यक्ति नित्य में अनित्य का, अनित्य में नित्य का, हित में अहित का और अहित में हित का अर्थात विषय विपरीत ज्ञान करता है। वह कार्य-अकार्य में, हित-अहित के बारे में सोच ही नहीं पाता। इसी तरह धृति-विभ्रंश व्यक्ति अनुचित कार्य में प्रवृत्त हुए मन को रोकने में भी समर्थ नहीं होता। स्मृति का कार्य है-उचित समय पर संग्रहीत ज्ञान का स्मरण कराना।

संक्षेप में 'धी' अर्थात बुद्धि से उचित रूप में ज्ञान न होना, कभी यथार्थ तो कभी अयथार्थपूर्ण ज्ञान का होना और अनुचित रूप से कर्मों में प्रवृत्त होना 'प्रज्ञापराध' कहलाता है। अचिंत्य चिंतन का, विकृत विचारणा व भावना का प्रत्यक्ष प्रभाव आचरण व व्यवहार पर पड़ता है और तदनुरूप ही कर्तृत्व का निर्धारण होता है। विषम ज्ञान और विषम प्रवृत्ति दोनों ही मन के दोष हैं और प्रज्ञापराध के मूल हैं। इस तरह मन व मेधा का अयुक्त या अनुचित प्रयोग तथा अयुक्त बुद्धि का परिणाम प्रज्ञापराध है । बुद्धि विपरीत हो जाने पर व्यक्ति स्वतः विपरीत प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख होता है और प्रज्ञापराधजन्य कार्य करने लगता है ।

प्रज्ञापराध की श्रेणी में आने वाले कर्म या कार्य

मानसिक रोगों के प्रकार, उनकी जटिलता व तदनुरूप यज्ञोपचार आदि के बारे में विस्तृत रूप से जानने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि ऐसे कौन-कौन से कार्य या कर्म हैं, जो 'प्रज्ञापराध' की श्रेणी में आते हैं और मनोरोगों को जन्म देते हैं। प्रज्ञापराध के अंतर्गत आने वाले कर्मों का विस्तृत विवरण हमें चरक संहिता-शरीर स्थान, १/१०३-१०८ एवं च. सं.

सूत्रस्थान, ८/१७-२९ में मिलता है। उसके अनुसार अत्यधिक कामसेवन, कर्म के समय की उपेक्षा करना, वमन-विरेचन आदि पंचकर्मों का अनुचित रूप से प्रयोग, विनम्रता और सदाचार का त्याग, देवता, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्धजन, सिद्धपुरुष, पूज्यजनों एवं आचार्य आदि का अपमान 'प्रज्ञापराध' के अंतर्गत आता है। इसी तरह जानते हुए भी अहित अर्थों का सेवन करना, उन्माद उत्पन्न करने वाले कारणों का अधिक सेवन करना, असमय अर्थात मध्य रात्रि में, दुर्दिन आदि समयों में निर्जन स्थानों में भ्रमण, दुष्टों एवं नीच कर्म करने वालों से मित्रता, ईर्ष्या, अभिमान, भय, क्रोध, लोभ, मोह और भ्रम का होना, ईर्ष्या आदि से प्रेरित होकर निंदित कर्म करना या शारीरिक चेष्टाएँ करना और इसी प्रकार के अन्य कर्म, जो रजोगुण और तमोगुण से आविष्ट मन एवं आत्मा द्वारा किए जाते हैं। ये सभी कर्म 'प्रज्ञापराध' के अंतर्गत आते हैं और मानसिक एवं शारीरिक रोगों को जन्म देते हैं।

इसके अतिरिक्त सद्‌वृत्तों का पालन न करना भी 'प्रज्ञापराध' माना जाता है। प्राय: व्यक्ति जिन वर्जनीय सद्‌वृत्तों को भूलवश या प्रमादवश अथवा जानबूझकर अपनाता है, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं-झूठ बोलना, दूसरों के अधिकारों का अपहरण, परस्त्रीगमन, दूसरे की लक्ष्मी या धन का अपहरण, शत्रुता का भाव रखना, पापाचरण, परदोष दर्शन, नारी अपमान, अधार्मिक या पतित मनुष्यों का साथ, भ्रूण हत्या करने वाले या क्षुद्र लोगों की संगति, विकृत चेष्टाएँ करना, उत्तम पुरुषों का विरोध, दुष्ट प्रकृति के लोगों की मित्रता, कुटिलता, दूसरों को भयाक्रांत करना आदि। ये सब 'प्रज्ञापराध' के अंतर्गत माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त अधिक निद्रा, अधिक जागरण, अधिक मदिरा पीना, अधिक आहार करना, बिना एकाग्र मन हुए अग्नि की उपासना करना, अपवित्र होकर मारण, मोहन, उच्चाटन आदि अभिचार कर्म करना, अतिशीघ्र या अतिविलंब या अत्यंत मंद स्वर से या अनियमित एवं विकृत स्वर से अध्ययन करना, समय व्यर्थ नष्ट करना, स्वयं के अथवा किसी संस्था के स्थापित नियमों को भंग करना, रात्रि में अनुचित स्थान में भ्रमण करना, मदिरापान, द्यूतक्रीड़ा, वेश्यागमन, दूसरों का तिरस्कार करना, निंदा-चुगली करना, ब्राह्मणों का अपमान करना, उद्दंडता, अधैर्य, दु:खदायी आचार-विचार अपनाना, इंद्रियों के वशीभूत होना, शोक निमग्न होना, प्रकृति विरुद्ध कार्य

करना आदि वर्जनीय सद्वृत्त 'प्रज्ञापराध' की श्रेणी में गिने जाते हैं तथा मानसिक रुग्णता के जनक कहे जाते हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि मनुष्य के चिंतन, चरित्र एवं व्यवहार तथा गुण, कर्म, स्वभाव में जब गिरावट आने लगती है, तो उसकी वृत्तियाँ एवं कर्म निम्नगामी बन जाते हैं । कालांतर में यही वृत्तियाँ संस्कार एवं आदतों के रूप में मन की अतल गहराई में जमकर बैठ जाती हैं और नानाविधि जटिलताएँ उत्पन्न कर उसे रोगी बनाती हैं । इस तरह प्रज्ञापराधजन्य मानसिक रोग उन्हें माना जाता है, जो वर्तमान पंचभौतिक काया से किए जाते हैं और उनका प्रतिफल भी प्राय: इसी जन्म में भुगतना पड़ता है। कुछ कर्मों के फल जन्मांतर काल में भी भुगतने पड़ते हैं, जिन्हें दार्शनिक भाषा में कर्मफल कहा जाता है। प्रज्ञापराध अधर्म का मूल माना गया है और यही अधर्म कर्मज व्याधियों को जन्म देता है। चरक संहिता-सूत्रस्थान, २८/४३ में कहा भी गया है-**'प्रज्ञापराधाद्ध्यहितानर्थान् पंच निषेवते।'** अर्थात मूर्ख मनुष्य प्रज्ञापराध के द्वारा अहितकर पाँचों ज्ञानेंद्रियों के पंचविषयों का सेवन करता है। अधारणीय मल-मूत्रादि वेगों को रोकता है और अधिक दुस्साहसपूर्ण कार्यों को करता है। तात्कालिक सुखों के लोभ में पड़कर भविष्य में कष्टकारी दुष्परिणाम प्रस्तुत करने वाले अहितकर या असुखकर भावों में अनुरक्त होता है और उनका सेवन करता है, जबकि आगे चलकर वे दु:खदायी परिणाम ही प्रस्तुत करते हैं।

२. असात्मेन्द्रियार्थ संयोग

मानसिक रोगों का दूसरा कारण असात्मेन्द्रियार्थ संयोग है। इंद्रियों के विषयों का, यथा-शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध के असात्म्य अर्थात अहितकर संयोग को 'असात्मेन्द्रियार्थ' संयोग कहते हैं। 'असात्म्य' उसे कहते हैं, जो आत्मा के अनुकूल न हो अर्थात अहितकर हो और 'सात्म्य' उसे कहते हैं, जो आत्मा के लिए हितकारी या अनकूल हो। वस्तुत: 'असात्मेन्द्रियार्थ' संयोग एक क्षोभपूर्ण स्थिति है, जिसके कारण कायिक एवं मानसिक दोष-रज और तम प्रकुपित होकर अनेक प्रकार की मनोविकृतियाँ उत्पन्न करते हैं। हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं-कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और घ्राण तथा इनके क्रमश: पाँच विषय हैं-शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। जब इन पाँच ज्ञाने

ेन्द्रियों का अपने-अपने विषयों के साथ अधिक मात्रा में संयोग होता है अर्थात इनका हम अधिक मात्रा में उपयोग करते हैं, तो वह 'अतियोग' कहलाता है। जब बहुत कम मात्रा में अथवा बिलकुल ही उपयोग या संयोग नहीं होता, तो 'हीनयोग' या 'अयोग' कहलाता है। जब इनका अप्रिय, उत्तेजक या अहितकर संयोग होता है, तो 'मिथ्यायोग' कहलाता है। इस प्रकार पंचेन्द्रियों के हिसाब से 'असात्मेन्द्रियार्थ संयोग' भी पंद्रह प्रकार का होता है। इसी तरह कर्मों का अतियोग, हीनयोग या मिथ्यायोग होता है, जिसे प्रज्ञापराध की श्रेणी में रखा गया है।

३. परिणाम

मानसिक रोगों की उत्पत्ति का तीसरा प्रमुख कारण है-'परिणाम।' काल अर्थात समय को परिणाम कहते हैं। समय ही वह तत्त्व है, जो सभी प्रकार के भले-बुरे कर्मों को धर्म-अधर्म के रूप में परिणत कर यथासमय उनका परिणाम प्रस्तुत करता है। काल के लक्षणों का अतियोग, हीनयोग या मिथ्यायोग अर्थात काल वैभिन्न्य भी मानस रोगोत्पत्ति का निमित्तकारण बनता है। भिन्न-भिन्न ऋतुओं तथा समयभेद से क्षोभ या तनावपूर्ण स्थिति उत्पन्न होकर दोषों को प्रकुपित करके रोग उत्पन्न करती है। इसके अतिरिक्त मनोबल की कमी या हीनसत्वता, चित्तवृत्ति का अनियंत्रण, आहार-बिहार की अनियमितता या व्यतिरेक, आचार-व्यवहार की निकृष्टता, भावनाओं-संवेदनाओं का उबाल-उफान या अनियंत्रण, व्यक्तित्व की विकृतियाँ आदि कितने ही कारण मानसिक रोगों की उत्पत्ति के गिनाए जा सकते हैं। कभी-कभी व्यक्ति आनुवंशिक कारणों से भी मनोरोगी बन जाता है। कर्मक्षेत्र अर्थात कार्य-व्यवसाय की सफलता-असफता, वातावरण या सामाजिक-पारिवारिक परिवेश, प्रेम की असफलता, अति संवेदनशीलता, अंतः स्रावी ग्रंथियों के विकार, आघात, तंत्रिकातंत्र की गड़बड़ी, कायिक रोग एवं कई बार वैयक्तिक कारण भी मानसिक रोगों के निमित्तकारण बन जाते हैं। धर्म, अर्थ एवं काम का अहितकर सेवन भी मानसिक रोगों का मूल कारण है। शास्त्रकारों ने इसके हितकर स्वरूप का सेवन करने का इसीलिए निर्देश दिया है और अहितकर स्वरूप से बचने की हिदायत दी है।

मानसिक रोगों के विविध रूप

वस्तुतः मानसिक रोगों की चिकित्सा तब तक सफल नहीं हो सकती, जब तक यह निर्धारण न हो जाय कि इस तरह का लक्षणों युक्त मनोरोग किस वर्ग या श्रेणी के अंतर्गत आता है और उसकी जड़ें कितनी गहरी हैं। यह निर्धारण हो जाने पर रुग्णता की गहराई तक पहुँचने और अन्यान्य मानसोपचार के साथ यज्ञोपचार करने में आसानी हो जाती है। यों तो आज के आपाधापी व तनावभरे संघर्षपूर्ण माहौल में बहुत खोजबीन करने पर बिरले व्यक्ति ही पूर्ण रूप से स्वस्थ मिलते हैं। अधिसंख्य जन समुदाय तो छोटी-बड़ी किसी न किसी प्रकार की मनोव्यथा से पीड़ित ही दिखाई देता है। ऐसी स्थिति में आयुर्वेद के प्रख्यात ग्रंथ सुश्रुत संहिता के कथनानुसार उस पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति के दर्शन दुर्लभ ही प्रतीत होते हैं, जिसके बारे में इसी ग्रंथ के सूत्रस्थान-१५/४७ में कहा गया है-

समदोषःसमाग्निश्च समधातु मल क्रियः।
प्रासन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यमिधीयते ॥

अर्थात स्वस्थ व्यक्ति उसे ही कह सकते हैं, जिसके तीनों शारीरिक दोष-वात, पित्त एवं कफ तथा मानसिक दोष-रज, तम एवं अग्नियाँ समान हों। रस-रक्तादि सप्त धातुओं तथा त्रिविध मलों-पुरीष, मूत्र, स्वेद की क्रियायें समान हों, साथ ही साथ जिसकी आत्मा, मन और इन्द्रियाँ प्रसन्न हों। इस सूत्र के अनुसार एक सुविज्ञ मनोचिकित्सा विज्ञानी का उद्देश्य किसी मनोरोगी के शरीर में धातुसाम्यता लाना तथा मानसिक, आध्यात्मिक एवं इन्द्रियपरक सुखावस्था उत्पन्न करना अर्थात पूर्ण स्वस्थ करना होता है।

आधुनिक चिकित्सा मनोविज्ञान के अनुसार मानसिक रोग कई प्रकार के होते हैं। इन्हें तीन प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है- 1- Psychotic या मानसिक रोग 2- Neuro-Psychiatric disorder या Neurotic disease अर्थात नाड़ी मनोविकृति एवं 3- Psychosomatic disease अर्थात मनोदैहिक रोग। इनके अतिरिक्त मनोरोग का एक चौथा रूप भी है, जिसे Behavioral disturbances अर्थात व्यावहारिक व्यतिक्रम कहते हैं। इस तरह शारीरिक, मानसिक, मनोदैहिक एवं व्यावहारिक गड़बड़ियों

समेत मनोरोगों के चार स्वरूप पाये जाते हैं, जिनका अध्ययन मनोचिकित्सा विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। इनमें से कितने ही मानसिक रोग इतने अधिक जटिल होते हैं कि सांवेगिक या सामाजिक या व्यक्तिगत रूप से मनोरोगी को इतना अधिक व्यथित कर देते हैं अथवा असंतुलित कर देते हैं कि उसकी चिकित्सा करना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में मनोरोगों की सूक्ष्मता या गहराई में जाना और उसके छोटे से छोटे रूप की जानकारी रखना अनिवार्य हो जाता है। इसके लिए मानसिक रोगों के आधुनिकतम वर्गीकरण का विहंगम अवलोकन कर लेना आवश्यक है।

यों तो मानसिक रोगों के वर्गीकरण करने की अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक प्रमुख वैज्ञानिक पद्धति है, जिसे-DSM अर्थात Diagnostic & Statistical Manual of Mental Disorder कहते हैं। इसकी स्थापना अमेरिकन मनोरोग विज्ञानी संघ द्वारा सन् १९५२ ई. में की गयी थी। अब तक इसके चार संस्करण प्रकाशित हो चके हैं और इन दिनों DSM-IV संस्करण चल रहा है। इसमें मानसिक रोगों की अधिक स्पष्ट व्याख्या की गयी है। इससे ही मिलता-जुलता दूसरा वर्गीकरण विश्व स्वास्थ्य संगठन-WHO द्वारा IGD-10 के माध्यम से किया गया है, जिसका पूरा नाम है-International Stastical Classification of Disease and Related Helth Problems. DSM-IV के अनुसार मानसिक रोगों को मोटे तौर पर सत्रह प्रमुख वर्गों में बाँटा गया है, जिसके अतंर्गत तीन सौ से भी अधिक प्रकार के विशिष्ट मानसिक रोगों को सम्मिलित किया गया है। कहीं-कहीं लक्षण विशेष के आधार पर एक ही तरह के मनोरोग की दो श्रेणियाँ बना दी गयी हैं। उदाहरण के लिए Depressive Disorder और OCD (Obsessive Compulsive personality Disorder) को लिया जा सकता है। पहले को जहाँ Axis-I में रखा गया है, वहीं दूसरे को Axis-II श्रेणी के अंतर्गत लिया गया है। इस वर्गीकरण में मनुष्य के शैशव अवस्था से लेकर वृद्धावस्था तक के क्रमिक विकास के साथ पनपनेवाली विविध प्रकार की मानसिक बीमारियों का वर्णन है। संक्षेप में यहाँ पर केवल उन्हीं मानसिक रोगों की यज्ञ चिकित्सा का वर्णन किया जा रहा है, जो सामान्य रूप से सर्वत्र दिखाई देते हैं। इनमें प्रमुख रूप से-ओ. सी.डी. अर्थात् मनोग्रस्तिबाध्यता, स्किजोफ्रेनिया, एपिलेप्सि या मिरगी रोग,

उन्माद या पागलपन जैसे रोग सम्मिलित हैं। इन दिनों ऐसे ही मनोरोगों की सर्वाधिक भरमार है। इसके अतिरिक्त अन्यान्य मस्तिष्कीय रोगों यथा-हाइपरटेंशन या तनाव, डिप्रेशन या अवसाद, अनिद्रा रोग, मंदबुद्धि आदि मनोरोगों को भी इस अध्याय में सम्मिलित किया गया है।

मानसिक रोगों की यज्ञ चिकित्सा

वस्तुत: अभी तक ऐसी कोई समग्र चिकित्सापद्धति विकसित नहीं हुई, जो सीधे मनुष्य के मन की गहन परतों में प्रविष्ट कर सके और वहाँ जमे हुए या जड़ जमाए हुए दोषों, विकारों को उखाड़ बाहर कर सके। मन की सूक्ष्म परतों तक सद्‌भावनापूर्वक की गई मनोचिकित्सा के साथ-साथ धर्मानुष्ठानपरक मंत्रोपचार, यज्ञोपचार जैसे उपाय-उपचार एवं पापनिष्क्रमण की प्रायश्चित प्रक्रिया ही कारगर सिद्ध होती है। आयुर्वेद में इसे देवव्यपाश्रय चिकित्सा कहते हैं। प्राचीन आयुर्वेद चिकित्सापद्धति में जहाँ मानस रोगों के औषधि उपचारपद्धति का वर्णन है, वहाँ उनके मूल कारणों की ओर भी संकेत करते हुए बताया गया है कि यज्ञ एवं प्रायश्चित जैसे धर्मानुष्ठानपरक उपाय-उपचारों के माध्यम से जीवनक्रम को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने का उपक्रम भी रोग निवारण के लिए आवश्यक है। जिस प्रकार शरीर में भरी हुई विषाक्तता का निष्कासन एवं मारण रोगनिवारण के लिए आवश्यक है, उसी तरह उससे कहीं अधिक यह भी आवश्यक है कि मन की गहन परतों में छिपे हुए अचिंत्य चिंतन के, कुकर्मों के, भ्रष्टाचरण के परत दर परत चढ़े हुए कुसंस्कारों के निष्कासन के लिए प्रायश्चित प्रक्रिया के साथ-साथ जप, ध्यान एवं यज्ञोपचार जैसी धर्मानुष्ठानपरक उपचार-प्रक्रिया का आश्रय लिया जाय। यज्ञ चिकित्सा को घरेलू उपचार भी कह सकते हैं। इससे शारीरिक एंव मानसिक आधि-व्याधियों का निराकरण होता, जीवनीशक्ति बढ़ती तथा दोनों ही क्षेत्रों की क्षमता में अभिवृद्धि होती है।

१. O.C.D. या मनोग्रस्तिबाध्यता का सरल यज्ञोपचार

मनोवेत्ताओं एवं चिकित्सा विज्ञानियों ने दुश्चिन्ता को सर्वाधिक कष्टदायी मनोरोग बताया है । चिता तो मरे हुए व्यक्तियों को भस्मीभूत करती है, किंतु चिंता मनुष्य को जीवित रहते हुए ही तिल-तिल कर जलाती रहती

है। कारण चिंता एंव उद्वेग से उत्पन्न भय, आशंका, तनाव आदि विकृतियाँ व्यक्ति के सामान्य जीवन को तहस-नहस करके अनेकों कठिनाइयाँ पैदा कर देती हैं। जैसे-जैसे दुश्चिंता-विकृति का स्तर बढ़ता जाता है, व्यक्ति के दैनिक जीवन का समायोजन कुप्रभावित होता है। वह न सोचने-विचारने योग्य बातें सोचता और न करने योग्य कृत्यों को बार-बार दोहराता है। यद्यपि इस दुश्चिंतन विकृति के कई रूप होते हैं, किंतु उनमें से सबसे अधिक व्यथित करने वाला मनोरोग है-'मनोग्रस्तिबाध्यता विकृति।' साइकियाट्री की भाषा में इसे Obsessive Compulsive Disorder या O.C.D कहते हैं।

आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान में O.C.D का उल्लेख अतत्वाभिनिवेश नामक मानसिक रोग के रूप में किया गया है। यह एक बहुत हठी मानसिक रोग है, जिसमें बुद्धि विपरीत हो जाती है और व्यक्ति सत्य को असत्य, असत्य को सत्य, हित को अहित एवं अहित को हित समझने लगता है। दुश्चिंता विकृति का यह रूप एक तरह का जिद्दी प्रज्ञापराध माना गया है, जिसमें बुद्धि, स्मृति एवं धैर्य का समापन या विभ्रंश हो जाता है। चरक संहिता, चिकित्सा स्थान-१५/५६ में इस महारोग को महागद के रूप में उल्लेख करते हुए कहा भी गया है-

करोति विषमां बुद्धिं नित्यानित्ये हिताहिते ।
अतत्त्वाभिनिवेशं तमाहुराप्ता महागदम् ॥

यह मानसिक रोग संसार में सभी प्रकार के दुःखों का हेतु है। वस्तुतः यह मनोरोग दो शब्दों से मिलकर बना है-अतत्त्व एवं अभिनिवेश। तत्त्व का अर्थ है-तथ्य, सत्य या वास्तविक अर्थात जिसका अस्तित्व होता है। तत्त्व के अभाव को अतत्त्व, असत्य या अवास्तविक कहते हैं। अभिनिवेश का अर्थ है-आग्रहपूर्वक स्वीकारना, ग्रहण करना अर्थात दृढ़ आग्रह या हठ। इस तरह जिसका अस्तित्व न हो, उसके प्रति दृढ़ आग्रह या हठ को 'अतत्त्वाभिनिवेश' कहते हैं। यह महाव्याधि बुद्धि संबंधी विकृति का परिचायक है, क्योंकि इसमें मुख्य रूप से बुद्धि विभ्रंश पाया जाता है। किसी वस्तु या विषय का यथास्वरूप ज्ञान कराना बुद्धि का काम है, किंतु इस रोग में वह विकारग्रस्त हो जाती है या विपरीत हो जाती है। इस मनोविकृति से ग्रस्त व्यक्ति बाह्य दृष्टि से तो पूरी तरह स्वस्थ दिखाई पड़ता है, परंतु मानसिक दृष्टि

से वह व्यर्थ की चिंताओं से सदा उद्विग्न रहता है। उसके मन में कब कौन से उलटे-सीधे विचार अबाध गति से प्रवाहित होने लग जायँ, कहा नहीं जा सकता है। मानस पटल भ्रमग्रस्त एवं द्वन्द्व से भरा हो, तो व्यक्तित्व का लड़खड़ा जाना स्वाभाविक है।

O.C.D. के लक्षण

मनोचिकित्सा विज्ञानियों के अनुसार O.C.D अर्थात मनोग्रस्तिबाध्यता विकृति दुश्िंचताजन्य वह मानसिक विकृति है, जो व्यक्ति के विचार एवं व्यवहार में बाध्यतापूर्वक निरंतर घूमती रहती है। ये सभी विचार एवं क्रियाएँ न केवल असंगत, अतार्किक, निरर्थक एवं मूर्खतापूर्ण होती हैं, वरन घृणास्पद भी होती हैं। O.C.D भी अतत्त्वाभिनिवेश की तरह दो शब्दों से मिलकर बना है-Obsession एवं Compulsion. Obsession या मनोग्रस्ति ऐसे पुनरावर्ती विचार या आवेगों को कहा जाता है, जो चिंतन चेतना की गहराई में प्रवेश करते हैं और प्रायः बेतुके, हास्यास्पद एवं अर्थहीन होते हैं। वे प्रायः मन में बार-बार बिना बुलाए या स्वैच्छिक रूप से उभरते रहते हैं, जिन्हें हटाना-मिटाना या नियंत्रित करना कठिन होता है। इस तरह के विचारों में अधिकतर स्वास्थ्य, खान-पान या काम भावना से संबंधित विचार होते हैं। कितने ही व्यक्ति इस विचार से ग्रस्त रहते हैं कि उन्हें अमुक रोग हो गया है, कोई उन्हें मारना चाहता है। आत्महनन या परहनन के विचार, विचारों को दूसरों द्वारा पढ़े जाने का भय, परिवार या बच्चों के साथ दुर्घटना या कुछ अनहोनी होने का भय आदि असंगत व अतार्किक विचारतरंगें मन में बार-बार उठती रहती हैं। चाहकर भी व्यक्ति इन्हें रोक नहीं पाता।

Compulsion या बाध्यता इस मनोविकृति का दूसरा पक्ष है। यह एक तरह की व्यवहारात्मक प्रतिक्रिया है, जिसमें मनोरोगी अपनी इच्छा के विरुद्ध किसी क्रिया को बार-बार करने के लिए बाध्य रहता है। ऐसी क्रियाएँ अवांछित ही नहीं, वरन् असंगत भी होती हैं। साफ-सुथरा होने पर भी बार-बार हाथ धोना, घर, नल, बाथरूम आदि दैनिक उपयोगी वस्तुओं की बार-बार अनावश्यक सफाई करना, सीढ़ियाँ चढ़ते-उतरते समय बार-बार उनकी गणना करना, आते-जाते वाहनों के नंबर नोट करना, ताला बंद करने अथवा गैस का बर्नर बंद करने के बाद, बिजली का स्विच ऑफ करने के

बाद उसे बार-बार चेक करना, पॉकेट में बार-बार हाथ डालकर देखना कि अमुक चीज उसमें पड़ी है या नहीं, ऐसी कितनी ही निरर्थक क्रियाएँ या व्यवहार इस तरह का मनोरोगी करता रहता है। वस्तुत: मनोग्रस्ति एवं बाध्यता दोनों क्रियाएँ एक ही हैं और साथ-साथ चलती हैं। कहीं विचार हावी रहते हैं, तो कहीं क्रियाएँ व्यवहार में प्रकट होती हैं। इस तरह अवांछित विचार या चिंतन जब आवर्ती कार्य-व्यवहार में परिणत हो जाते हैं, तो इसे मनोग्रस्तिबाध्यता विकृति या O.C.D. कहते हैं।

O.C.D अर्थात मनोग्रस्तिबाध्यता के कारण

यों तो यह मनोविकृति कुछ जौविक कारणों से भी कभी-कभी उत्पन्न होती देखी जाती है-जैसे मस्तिष्कीय बीमारियाँ, ब्रेन ट्यूमर, ब्रेन फीवर, सिर में चोट लगना आदि। परन्तु वस्तुत: यह मनुष्य के अचेतन मस्तिष्क में जड़ जमा लेने वाले अचिंत्य चिंतन, दुष्कृत्यों, दुरावों एवं पापाचरण की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न एक चक्र है, जो कुछ असंगत, अतार्किक एवं मूर्खतापूर्ण विचारों एवं क्रिया-व्यवहार के रूप में बार-बार प्रकट होता है। यह बारम्बारता व्यक्ति की अंतर्निहित दुश्चिंता को कुछ क्षणों के लए शांत कर देती है, लेकिन थोड़ी देर बाद या परिस्थितिवश वह फिर से उग्र हो जाती है। यह एक तरह की रक्षात्मक प्रक्रिया है, जो बार-बार प्रकट होती है और दुश्चिंता को असहनीय स्थिति तक पहुँचने से रोकती है। कितने ही व्याधिग्रस्त व्यक्ति दुश्चिंताजन्य इस तीव्रता को रोकने के लिए जानबूझकर कोई न कोई प्रतिक्रियात्मक व्यवहार या क्रियायें करने लगते हैं, जैसे जोर-जोर से किसी मंत्र का जप करने लगना, दांतों तले अँगुली दबाना या नाखून चबाने लगना आदि। समय पर उपचार न करने से यह महाव्याधि व्यक्ति की ज्ञानशक्ति को क्रमश: कमजोर बना देती है और वह कर्तव्याकर्तव्य विचार शून्य हो जाता है। चिंतन चेतना क्षीण हो जाने पर व्यक्ति किसी काम का नहीं रह जाता।

यज्ञोपचार

कहा जाता है कि ओ.सी.डी. अर्थात मनोग्रस्तिबाध्यता विकृति का पूर्ण चिकित्सा-उपचार करना कठिन है। बिहैवियर थेरेपी या साइकोट्रापिक

मेडिसिन इसके लिए पर्याप्त नहीं है। ऐसी स्थिति में धर्मानुष्ठानपरक प्रायश्चित प्रक्रिया एवं यज्ञोपचार ही एक प्रमुख माध्यम है, जो इस महारोग से व्यक्ति को पूरी तरह मुक्त कराता है। क्योंकि यह एक बहुत ही जटिल मानसिक रोग है और इसका सीधा संबंध बुद्धि, मेधा एवं स्मृति से है, इसलिए इसके यज्ञोपचार में मेधावर्द्धक, संज्ञास्थापक, निद्राजनक एवं रसायन द्रव्यों-वनौषधियों का विशेष रूप से उपयोग किया जाता है। खान-पान में भी मेध्य वस्तुओं को वरीयता दी जाती है। इसके अतिरिक्त रोगी को धैर्य बँधाने, पूर्ण स्वस्थ हो जाने जैसे आश्वासनपरक बचनों द्वारा ज्ञान कराने, ध्यानयोग, प्रायश्चित प्रक्रिया द्वारा दुष्कर्मों से पिंड छुड़ाने एवं सुहृदजनों का आत्मीयतापूर्ण सहयोग भी अपेक्षित होता है।

ओ.सी.डी. की विशिष्ट हवन सामग्री

अतत्त्वाभिनिवेश या मनोग्रस्तिबाध्यता विकृति के यज्ञोपचार में प्रयुक्त होने वाली विशिष्ट हवन सामग्री में निम्नलिखित वनौषधियाँ सम्मिलित की जाती हैं-

1. ब्राह्मी	-100 ग्राम	2. शंखपुष्पी	-100 ग्राम
3. मीठी बच	-100 ग्राम	4. मुलहठी (मधुयष्ठी)	-100 ग्राम
5. गिलोय	-100 ग्राम	6. शतावर	-100 ग्राम
7. मंडूकपर्णी	-100 ग्राम	8. जटामांसी	-100 ग्राम
9. मीठा कूठ	-100 ग्राम	10. भोजपत्र	-100 ग्राम
11. मालकांगनी के बीज	-100 ग्राम	12. अश्वगंधा	-100 ग्राम
13. खुरासानी अजवायन	-100 ग्राम	14. तगर	-100 ग्राम
15. सर्पगंधा	-50 ग्राम	16. जौ	-100 ग्राम
17. काला तिल	-100 ग्राम	18. गोघृत	-500 ग्राम

19. खाँडसारी गुड़ या शक्कर-750ग्राम।

गोघृत एवं खाँडसारी गुड़ या शक्कर को छोड़कर उपरोक्त सभी चीजों को कूट-पीसकर जौकुट पाउडर बना लेते हैं। तदुपरांत घृत एवं शक्कर को उसमें अच्छी तरह से मिलाकर एक पात्र में सुरक्षित रखकर उस पर 'ओ.सी.डी. या मनोग्रस्तिबाध्यता विकृति की विशिष्ट हवन सामग्री-नंबर-२'

का लेबल लगा देते हैं। 'कॉमन हवन सामग्री-नम्बर-१' को अलग से पहले ही तैयार कर लेते हैं।

हवन करने से पूर्व नं.-१ व नम्बर-२ की हवन सामग्री की बराबर मात्रा लेकर दोनों को अच्छी तरह सम्मिश्रित कर लेते हैं और तब सूर्यगायत्री मंत्र से हवन करते हैं। सुबह-शाम दोनों समय हवनोपचार करने से जल्दी लाभ मिलता है। हवनोपचार के साथ ही निम्नलिखित वनौषधियों से निर्मित चूर्ण भी रोगी व्यक्ति को खिलाते हैं।

मनोग्रस्तिबाध्यता नाशक चूर्ण

1. ब्राह्मी -50 ग्राम 2. शंखपुष्पी-50 ग्राम 3. मंडूकपर्णी -50 ग्राम
4. मीठी बच -50 ग्राम 5. अश्वगंधा-50 ग्राम 6. शतावर-50 ग्राम
7. जटामांसी -50 ग्राम 8. खुरासानी अजवायन-50 ग्राम
9. गिलोय -50 ग्राम 10. मीठी कूठ -20 ग्राम
11. सर्पगंधा -15 ग्राम 12. तगर -10 ग्राम।

इन सभी घटक द्रव्यों को अच्छी तरह कूट-पीसकर कपड़छन पाउडर तैयार कर लेते हैं और इसे सम्मिश्रित करके सुरक्षित एयरटाइट डिब्बे में रख लेते हैं। इसमें से नित्यप्रति ३-३ ग्राम या एक-एक चम्मच पाउडर सुबह, दोपहर व शाम को गोदुग्ध या जल के साथ रोगी को खिलाते हैं। उक्त पाउडर को जौकुट रूप में बनाकर उसे क्वाथ रूप में भी प्रयुक्त कर सकते हैं। क्वाथ में अल्प मात्रा में शहद मिलाकर सेवन कराते हैं।

२. Schizophrenia-या विखण्डित मनस्कता की अग्निहोत्र चिकित्सा

स्किजोफ्रेनिया भी मनोरोग का एक बहुत ही जटिल रूप है। इस मनोरोग में व्यक्ति भ्रांति, मिथ्या विश्वास तथा विभ्रम से ग्रस्त रहता है। इसमें कभी वह बिलकुल निष्क्रिय रहता है, तो कभी बहुत उत्तेजित रहता है। कभी अपने को बहुत महान समझने लगता है। समझदारों की तरह सामान्य व्यवहार करना, तो कभी अवसादग्रस्तों की तरह व्यवहार करना-दोनों ही स्वरूप उसके व्यक्तित्व में सम्मिलित देखे जाते हैं। कभी उसे लगता है कि कोई उसे कष्ट पहुँचा रहा है, तो कभी सोचता है कि उसके विचारों को कोई पढ़ रहा है, आदि लक्षण विखण्डित मनस्कता वाले व्यक्ति में देखे जा सकते हैं।

स्किजोफ्रेनिया का यज्ञोपचार O.C.D. की तरह ही किया जाता है और इसमें वही उपरोक्त हवन सामग्री एवं उक्त चूर्ण प्रयुक्त किये जाते हैं।

उपरोक्त दोनों ही मनोरोगों में यज्ञोपचार सहित संपूर्ण प्रक्रिया को पथ्यापथ्य पूर्वक तब तक चलाते रहना चाहिए,जब तक रोगी पूर्णतया रोगमुक्त न हो जाय। रोग की तीव्रता के अनुसार उपरोक्त औषधियों के अनुपात में घट-बढ़ की जा सकती है।

३. यज्ञोपैथी द्वारा मिरगी रोग की चिकित्सा

मिरगी रोग वातनाड़ी संस्थान या स्नायुमंडल का सर्वाधिक खतरनाक रोग माना जाता है, क्योंकि कुछ समय के लिए यह मनुष्य को अचानक संज्ञाशून्य बना देता है। कब और किस स्थिति में बेहोशी का दौरा पड़ जाए, कहा नहीं जा सकता। चलते-फिरते, उठते-बैठते, बोलते-बतियाते एकाएक रोगी का शरीर अकड़ने लगता है और वह बेहोश होकर गिर पड़ता है। उसकी स्मृति नष्ट हो जाती है, कुछ याद नहीं रहता। आक्षेप, कंपन, बेहोशी का अचानक आक्रमण, निस्पंदन, चैतन्यहीनता एवं निद्रा का आवेश आदि इसकी प्रमुख पहचान है।

मिरगी रोग का आक्रमण महिलाओं की अपेक्षा प्राय: लड़कों एवं युवाओं को ज्यादा होता है। किशोरियों एवं महिलाओं में पाए जाने वाले इसी प्रकार के लक्षणों वाले रोग को 'हिस्टीरिया' या योषापस्मार या अपतंत्रक कहते हैं। इसका संबंध गर्भाशय संबंधी विकृतियों से होता है। यह दौरा कुछ मिनटों से लेकर प्राय: आधा घंटे तक रहता है। इसके बाद रोगी अपनी पूर्ववत् सामान्य अवस्था में आ जाता है। थकावट, कमजोरी या तंद्रा जैसे लक्षण अवश्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं।

आयुर्वेद शास्त्रों में मिरगी रोग को 'अपस्मार' के नाम से जाना जाता है। यह दो शब्दों से मिलकर बना है-'अप' और 'स्मार'। 'अप' का अर्थ है-नष्ट करने वाला और 'स्मार' का अर्थ है-स्मरणशक्ति या याददाश्त। अर्थात जो रोग स्मरणशक्ति का नाश करता है, उसे अपस्मार कहते हैं। चरक संहिता, चिकित्सा स्थान १५/१ के अनुसार-'**स्मृतेरपगमंप्राहुरपस्मारं भिषग्विदः।**' अर्थात स्मृति को विनष्ट करने वाले रोग को भैषज्य विद्याविशारद अपस्मार कहते हैं।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इसे ही 'एपिलेप्सि' कहते हैं। इसका सीधा संबंध तंत्रिकातंत्र से है। उसके अनुसार प्रमस्तिष्क के कार्यों में विकृति आने तथा मेटाबोलिक क्रिया से रक्त में एसिटाइल कोलीन नामक रसायान की उत्पत्ति से यह रोग पनपता है। ई.ई.जी. एवं सी.टी. स्कैन आदि के द्वारा मस्तिष्कीय ऊर्जा तरंगों के व्यतिक्रम तथा तंत्रिका तंतुओं के विकार भी इसके स्वरूप को दरसाते हैं।

मिरगी रोग का सबसे प्रमुख लक्षण यह है कि जब दौरा पड़ने को होता है, तो रोगी के मन और बुद्धि में विभ्रम होने से आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है। गरदन अकड़कर टेढ़ी हो जाती है और एक तरफ घूम जाती है। आँखें पथराई-सी, फटी-फटी-सी हो जाती हैं। मुट्ठियाँ बँध जाती हैं। रोगी हाथ-पैर पटकने लगता है। शरीर काँपने लगता है और मुँह से झाग निकलने लगता है। दाँत भिच जाते हैं, जिससे कभी-कभी जीभ के कट जाने का भय रहता है। श्वास-प्रश्वास में कठिनाई होती है। इस तरह की अनेक वीभत्स चेष्टाएँ घटित होती हैं। कुछ समय बाद बेहोशी स्वत: दूर होने लगती है और रोगी व्यक्ति सामान्य स्थिति में आ जाता है। प्राय: दौरे के बाद सचेत होकर रोगी गहरी नींद में सो जाता है।

रोगोत्पत्ति का कारण

इस रोग की उत्पत्ति के मूल कारण अज्ञात हैं, लेकिन यह प्राय: दस से बीस वर्ष की आयु के बीच शुरू होता है। अत्यधिक मद्यपान करने, असंयमित जीवन जीने, अत्यधिक शारीरिक-मानसिक परिश्रम करने, सिर में चोट लगने, पेट में कृमि होने तथा महिलाओं में ऋतुस्त्राव संबंधी गड़बड़ी होने आदि कारणों से भी यह रोग पनपता है। आयुर्वेद शास्त्रों के अनुसार यह कष्टसाध्य रोग है, क्योंकि इसमें शारीरिक और मानसिक दोनों दोष एक साथ प्रकुपित होकर हृदय का आश्रय लेते हैं। माधव निदान में कहा गया है **'चिंताशोकादिभिर्दोषा: ....प्रकुर्वते ॥'** अर्थात चिंता, शोक, भय आदि मानसिक कारणों से प्रकुपित हुए वात-पित्तादि दोष हृदय के मनोवाही स्त्रोतों में स्थित होकर स्मरणशक्ति का विनाश करके अपस्मार या मिरगी रोग उत्पन्न करते हैं। आहार-विहार के दोष, विरुद्ध एवं मलिन आहार-विहार, तांत्रिक प्रयोगों का विषम रीति से उपयोग, ब्रेन ट्यूमर, सिस्ट निर्माण, मेनिन्जाइटिस, ब्रेनहैमरेज,

न्यूरोसिफलिस, शिरोभिघात, अतिरक्तदाब, मद्यपान, गर्भाक्षेप, हाइपोग्लाइसीमिया आदि कारणों से भी यह रोग उत्पन्न होता है।

मिरगी रोग के प्रकार

पित्तज, वातज, कफज एवं सन्निपातज ये चार भेद मिरगी रोग के हैं। इनमें से पंद्रह दिन बाद पित्तज अपस्मार का वेग या प्रकोप आता है। बारह दिन बाद वातज अपस्मार का दौरा पड़ता है एवं एक महीने बाद कफज अपस्मार का दुबारा दौरा पड़ता है। कभी-कभी दोषों की कमी-वेशी से निश्चित समय से पहले या बाद में भी मिरगी के दौरे पड़ सकते हैं, पर प्राय: निश्चित समय पर ही इसकी पुनरावृत्ति होती है।

यज्ञोपचार

मिरगी रोग की चिकित्सा की कई विधियाँ प्रचलित हैं, पर देखा यही जाता है कि उनसे आंशिक सफलता ही मिल पाती है। ऐसी स्थिति में यज्ञोपचार प्रक्रिया को समन्वित कर लेने पर रोगोन्मूलन में पूर्ण सफलता मिलना एक सुनिश्चित तथ्य है।

मिरगी रोग की विशिष्ट हवन सामग्री

मिरगी रोग की विशिष्ट हवन सामग्री में निम्नलिखित वनौषधियाँ मिलाई जाती हैं-

1. अश्वगंधा	-100 ग्राम	2. अपामार्ग के बीज	-100 ग्राम
3. अतीस	-50 ग्राम	4. अंबर	-100 ग्राम
5. अर्कमूल	-50 ग्राम	6. छोटी इलायची	-100 ग्राम
7. उस्तखुद्दूस	-100 ग्राम	8. कर्पूर	-100 ग्राम
9. कमलगट्टा	-100 ग्राम	10. कपूरकचरी या कचूर	-100 ग्राम
11. काली मिरच	-100 ग्राम	12. कनेर के फूल	-100 ग्राम
13. कुलंजन	-100 ग्राम	14. कूठ-कड़वा	-100 ग्राम
15. कौवा ठोड़ी	-100 ग्राम	16. गिलोय	-100 ग्राम
17. गोक्षरू	-100 ग्राम	18. गुलाब पुष्प	-100 ग्राम
19. गुग्गुल	-100 ग्राम	20. गोरोचन	-10 ग्राम

21. गोरखमुंडी	-100 ग्राम	22. चंदन-लाल	-100 ग्राम
23. चावल	-100 ग्राम	24. छाड़-छरीला	-100 ग्राम
25. जटामांसी	-100 ग्राम	26. जायफल	-100 ग्राम
27. जीरा	-100 ग्राम	28. तुलसी	-100 ग्राम
29. तगर	-100 ग्राम	30. दारुहलदी	-100 ग्राम
31. दूर्वा	-100 ग्राम	32. धूप	-100 ग्राम
33. नागरमोथा या मोथा	-100 ग्राम	34. पीपल	-100 ग्राम
35. पुष्करमूल	-100 ग्राम	36. कुष्मांड(पेठा)बीज	-100 ग्राम
37. ब्राह्मी	-100 ग्राम	38. मीठी बच	-100 ग्राम
39. बाँदा	-100 ग्राम	40. बिच्छूघास	-100 ग्राम
41. भोजपत्र	-100 ग्राम	42. भिलावा	-50 ग्राम
43. भूतकेशी	-100 ग्राम	44. मूर्वा	-100 ग्राम
45. मुलहठी	-100 ग्राम	46. रास्ना	-100 ग्राम
47. राल	-100 ग्राम	48. राई	-100 ग्राम
49. शतावर	-100 ग्राम	50. शंखपुष्पी	-100 ग्राम
51. सर्पगंधा	-50 ग्राम	52. सहजने के बीज	-100 ग्राम
53. श्वेत या पीली सरसों	-100 ग्राम	54. हिंगुपत्री	-100 ग्राम
55. हींग	-20 ग्राम	56. हरड़	-100 ग्राम
57. गोघृत	-500 ग्राम	58. शर्करा	-500 ग्राम।

उपरोक्त सभी चीजों को एकत्र करके क्र.-१ से क्र.-५६ तक की औषधियों को कूट-पीसकर जौकुट पाउडर बना लेते है और अंत में सभी को मिलाकर एकरस कर लेते हैं। इसे एक डिब्बे में रखकर उस पर 'मिरगी रोग की विशिष्ट हवन सामग्री-नंबर-२' का लेबल लगा देते हैं। 'कॉमन हवन सामग्री- नम्बर-१' पहले से ही तैयार रखते हैं।

हवनोपचार करते समय दोनों तरह की सामग्रियों में से १००-१०० ग्राम सामग्री लेकर उन्हें अच्छी तरह मिला लेते हैं और तब सूर्य गायत्री मंत्र से २४ आहुतियों का हवन करते हैं। अधिकतम १०८ बार तक आहुतियाँ दी जा सकती हैं। सूर्योदय एवं सूर्यास्त की दोनों संधिवेलाओं में यह उपक्रम अपनाया जा सकता है।

मिरगी रोग लंबे समय तक बने रहने एवं कठिनाई से ठीक होने वाला रोग है। अत: यज्ञोपचार के साथ-साथ निम्नोक्त क्वाथ एवं अन्यान्य आयुर्वेदिक औषधियाँ भी दी जाती हैं। इन औषधियों में-ब्राह्मी रसायन, महपैशाचिकघृत, पंचगव्यघृत, महापंचगव्यघृत आदि प्रमुख हैं।

मिरगी रोग या अपस्मारनाशक क्वाथ-

अपस्मारनाशक क्वाथ इस तरह बनाया जाता है-

1. ब्राह्मी	2. शंखपुष्पी	3. शतावर	4. मुलहठी
5. पुष्करमूल	6. पिप्पलामूल	7. सोंठ	8. दारुहलदी
9. मीठी बच	10. नागरमोथा	11. कूठ	12. कुटकी
13. कचूर	14. चिरायता	15. हरीतकी	16.सिरस की छाल
17. रक्तरोहेड़ा	18. गोरखमुंडी	19. तगर	20. नारंगी के पत्ते
21. बाँदा	22. दवना	23. पेठे का बीज।	

इन सभी तेइस औषधियों को समभाग में लेकर उनका जौकुट पाउडर बना लेते हैं और सभी को सम्मिश्रित करके सुरक्षित रख लेते हैं। इसमें से २५ ग्राम पाउडर लेकर चौथाई लीटर पानी में क्वाथ विधि से क्वाथ बनाते हैं। चौथाई भाग शेष रहने पर उसे ठंडा करके बारीक कपड़े से छान लेते हैं। इसकी आधी मात्रा सुबह एवं आधी मात्रा शाम को सेवन करते हैं। यह क्रम तब तक नियमित रूप से जारी रखते हैं, जब तक मिरगी रोग के आक्रमण का बीच का अंतर बढ़ने लगता है एवं रोग पूरी तरह से ठीक नहीं हो जाता। काढ़े का कड़वापन दूर करने के लिए केवल पीते समय क्वाथ में एक चम्मच शहद मिला लेने से रोगी की अरुचि समाप्त हो जाती है और सहजता पूर्वक वह उसे पी लेता है।

४. उन्माद रोग की यज्ञ चिकित्सा

उन्माद का अर्थ होता है-पागलपन या मनोविक्षिप्त। हिकमत में इसे 'मालीखोलिया' या 'मैलनकली' कहते हैं। एलोपैथी में इसे 'इन्सैनिटी', 'मेनिया' या 'मैडनेस' कहते हैं। मनोचिकित्सा विज्ञानी इसे 'साइकोसिस' नाम से पुकारते हैं। यह एक जटिल मानसिक रोग है, जो सामान्यत: मन, बुद्धि

और स्मृति के विभ्रम से उत्पन्न होता है। चरक संहिता-चिकित्सास्थान ७/५ के अनुसार मन, बुद्धि, संज्ञा, ज्ञान, स्मृति, शील, चेष्टा और आचार के विभ्रम को उन्माद या पागलपन कहते हैं। अष्टांग हृदय-उत्तर स्थान ६/१ के अनुसार-'**उन्मादोनाम मनसो दोषैरुन्मार्गगैर्मदः।**' अर्थात जब वात-कफादि दोष उन्मार्गगामी होकर मन में स्थिति हो मद उत्पन्न करते हैं, तब इस मानसिक व्याधि को 'उन्माद कहते हैं। यह व्याधि वात से, पित्त से, सन्निपात से, मानसिक दुःख से एवं विष के प्रभाव से उत्पन्न होने के कारण छह प्रकार की होती है। अर्थात वातज उन्माद, पित्तज, कफज, सन्निपातज, शोकज एवं विषोन्माद। इसका एक प्रकार भूतोन्माद भी है।

उन्माद या पागलपन का कारण

उन्माद रोग के कारणों का उल्लेख करते हुए उक्त ग्रंथ के अगले सूत्रों में बताया गया है कि अहितकर अन्नपान के सेवन करने से अथवा विकृत-अपवित्र आहार ग्रहण करने से, विषम उपयोग करने से, विषम चेष्टा करने से अल्प सत्त्व वाले शरीर में व्याधि का वेग उत्पन्न हो जाने से पागलपन उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त पूज्यजनों का अपमान अथवा पूजा का व्यतिक्रम होने से, तांत्रिक प्रयोगों का विपरीत प्रकार से आचरण करने से, धन-संपदा के नष्ट हो जाने से उत्पन्न चित्त विक्षोभ से अथवा विष या उपविष के प्रयोग से शारीरिक और मानसिक दोष प्रकुपित होकर हीन सत्त्व वाले मनुष्य के हृदय में प्रवेश करके मन के वहन करने वाले मार्गों को बिगाड़कर तथा बुद्धि को कलुषित करके उन्माद रोग उत्पन्न करते हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार बहुत अधिक परिश्रम या उद्वेग, ज्यादा खाना-पीना या इंद्रिय परिचालन, अत्यधिक मद्यपान या गाँजा, भाँग, ब्राउनशुगर, स्मैक आदि नशीले पदार्थों का अधिक सेवन, स्वास्थ्य क्षरण, निराशा, भय, अत्यधिक कामवासना और मिरगी रोग आदि पागलपन के प्रमुख कारण हैं। इसके अतिरिक्त आनुवंशिकता, सिफलिस, मस्तिष्क अथवा मेरुदंड की यांत्रिक बीमारियाँ, शरीर में गहरी चोटें लगना, अनुचित शिक्षा, हमेशा भयावह घटनाओं वाले उपन्यास आदि साहित्य पढ़ना इस रोग के अन्य कारण हैं।

उन्माद रोग के लक्षण

उन्माद रोगी के क्रिया-कलाप और विचारशक्ति में मुख्य रूप से जो भ्रांतियाँ दिखाई देती हैं, उनमें से प्रमुख हैं-हाथ-पैर का व्यर्थ संचालन, आँखों की भंगिमा व चेहरे के भाव में परिवर्तन, देखने-सुनने की गलत प्रक्रिया, अंट-शंट बकना, बड़बड़ाना, स्मृतिलोप, अन्यमनस्कता, रोना, क्रोध, भय, प्रसन्नता, शोक आदि मानसिक भावों की अधिकता, आत्महनन की इच्छा, लगातार प्रलाप करना, सिरदरद रहना आदि इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। इसमें रोगी को कर्त्तव्याकर्त्तव्य का भान नहीं रहता। वह स्वयं नहीं समझ सकता कि वह पागल है। जिस तरह सारथी रहित रथ पथभ्रष्ट होकर इधर-उधर घूमता है, उसी तरह उन्माद रोगी भी विचारहीन क्रियाओं को करता हुआ इधर-उधर भटकता फिरता है।

यज्ञोपचार

उन्माद रोग के शमन के लिए आयुर्वेदिक औषधियों के अतिरिक्त आधुनिक चिकित्सा में अनेकों औषधियाँ, टॉनिक, इंजेक्शन आदि प्रचलित हैं। इतने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि रोग पूरी तरह से निर्मूल हो जायेगा। ऐसी स्थिति में यज्ञोपचार का आश्रय लेने पर रोगोन्मूलन की प्रक्रिया तीव्रगति से एवं सफलतापूर्वक संपन्न होती है। उन्माद रोग की हवन सामग्री में सात्त्विक, सुगंधित, बल्य एवं मेध्य रसायनयुक्त वनौषधियाँ मिलाई जाती हैं। क्योंकि यह रोग कई प्रकार का होता है, अतः इसमें मेध्य रसायनों के अतिरिक्त रक्षोघ्न एवं भूतघ्न औषधियाँ भी मिलाई जाती हैं। इस हविष्याग्नि से निकलने वाली धूम्र ऊर्जा-यज्ञीय ऊर्जा नासिका छिद्रों एवं रोमकूपों के माध्यम से शरीर के अंदर पहुँचकर रोगी के मन-मस्तिष्क के स्नायुमंडल को शीतलता प्रदान कर उसे चैतन्यता प्रदान करती है। इससे मस्तिष्कीय अंतःस्रावी ग्रंथियाँ स्वास्थ्यप्रद, सुखद एवं मधुर रसायनों का स्राव करने लगती हैं, जिसके प्रभाव से व्यक्ति स्वस्थ होने लगता है और धीरे-धीरे सामान्य अवस्था में आ जाता है।

उन्माद रोग की विशिष्ट हवन सामाग्री

इसमें निम्नलिखित वनौषधियाँ मिलाई जाती हैं-

1. आक-मूल	2. अपामार्ग	3. अजवायन	4. अजमोद
5. अश्वगंधा	6. अतिबला	7. अपराजिता	8. काली अनंतमूल
9. इलायची	10. इंद्रजौ	11. इंद्रायण	12. कायफल
13. कूठ	14. कुचला	15. केसर	16. कुटकी
17. कपास के बीज	18. काली मिरच	19. काला जीरा	20. सफेद जीरा
21. करंज के बीज	22. कुलंजन	23. काकड़ासिंगी	24. कपूर
25. कुश	26. खस की जड़	27. लाल गुंजा	28. गोरखमुंडी
29. गजपीपल	30. गिलोय	31. गुग्गुल	32. चंदन
33. चित्रक	34. चीड़ का बुरादा		35. जटामांसी
36. ज्योतिष्मती के बीज		37. जलकुंभी (पिस्टिया)	
38. तिल	39. तगर	40. तालीसपत्र	
41. तुलसी	42. दालचीनी	43. दूर्वा	
44. देवदार	45. धूप सरल	46. निशोथ	47. नागकेसर
48. नागरमोथा	49. नीमपत्र	50. पेठे के बीज	51. प्रियंगु
52. पिप्पलामूल	53. पिप्पली	54. पाठा	55. मीठी बच
56. बहेड़ा	57. बला	58. भिलावा	59. मुलहठी
60. मंजीष्ठ	61. मैनफल	62. मेढ़ासिंगी (मेषश्रृंगी)	
63. मंडूकपर्णी	64. राल	65. रेवंदचीनी	66. लोध्र
67. लाख	68. लौंग	69. शंखपुष्पी	70. शतावर
71. सर्पगंधा	72. सरसों	73. सिरस के बीज	
74. सोंठ	75. सौंफ	76. सहिजने के बीज	
77. सुगंधकोकिला	78. सोमलता	79. हींग	80. हिंगुपत्री
81. हलदी	82. दारुहलदी	83. हरड़	84. त्रायमाण
85. आँवला	86. सरसों	87. कहरुबा (अंबर)।	

उपर्युक्त सामाग्री में से जितनी औषधियाँ आसानी से उपलब्ध हो सकें, उन्हें समान मात्रा में लेकर कूट-पीसकर उनका दरदरा जौकुट पाउडर बना लेते हैं। तदुपरांत सभी को मिलाकर एकरस करके एक पात्र में संरक्षित

रख लेते हैं और उस पर 'उन्माद रोग की विशिष्ट हवन सामग्री-नम्बर-२' का लेबल लगा देते हैं। 'कॉमन हवन सामग्री-नम्बर-१' अलग से पहले से ही तैयार रखते हैं।

यज्ञोपचार करते समय नम्बर-१ व नम्बर-२ के डिब्बों में से समान मात्रा में हवन सामग्री अलग पात्र में निकालकर उसे अच्छी तरह मिला लेते हैं। तदुपरांत इस तैयार सामग्री का दसवाँ भाग घृत एवं दसवाँ भाग शर्करा मिला लेते हैं और उसी से गायत्री महामंत्र या सूर्यगायत्री मंत्र से कम से कम चौबीस आहुतियाँ देते हैं। औषधियाँ जितनी ताजी और वीर्यवान होंगी, उतनी ही अधिक लाभकारी होंगी। सुबह एवं सायंकाल दो बार हवन करना अनिवार्य है। आवश्यकतानुसार पीछे भी दिन में दो-तीन बार एवं रात में एक-दो बार किसी पात्र में अग्नि रखकर थोड़ी-सी उक्त विशिष्ट हवन सामग्री थोड़ी देर के लिए रोगी के कक्ष में धूप की तरह जलाई जा सकती है।

उन्मादनाशक चूर्ण

हवनोपचार के साथ ही निम्नांकित औषधियों से बने उन्मादनाशक चूर्ण को भी रोगी को नित्य खिलाते रहना चाहिए। इस चूर्ण में मिलाई जाने वाली औषधियाँ इस प्रकार हैं-

1. अजमोद
2. अश्वगंधा
3. मंडूकपर्णी
4. शंखपुष्पी
5. गिलोय
6. मुलहठी
7. मीठी बच
8. मीठा कूठ
9. मालकांगनी के बीज
10. सोमलता
11. पेठे के बीज
12. जटामांसी
13. सर्पगंधा
14. गोरखमुंडी
15. तुलसी
16. अजवायन
17. सफेद जीरा
18. काला जीरा
19. जलकुंभी
20. मेढ़ासिंगी एवं
21. काली अनंतमूल।

उपरोक्त सभी चीजें समभाग में लेकर कूट-पीसकर उनका कपड़छन पाउडर बना लेते हैं। इसमें से तीन-चार ग्राम चूर्ण अर्थात् एक चम्मच पाउडर रोग की तीव्रता के अनुसार सुबह, दोपहर एवं शाम अर्थात् दिन में तीन बार गोदुग्ध के साथ उन्माद रोगी को नित्य सेवन कराते रहना चाहिए।

अन्यान्य चिकित्सा-उपचार

उन्माद या पागलपन में ब्राह्मीघृत, महापैशाचिक घृत आदि का भी सेवन कराया जाता है। दस वर्ष या उससे अधिक पुराना घृत उन्माद रोग की सर्वाधिक सफल औषधि है। इसे नस्य एवं पान दोनों ही रूपों में प्रयुक्त किया जाता है। वृहद निघण्टु रत्नाकर के उन्मादरोग कर्मविपाक प्रकरण में कहा गया है-**'सार्पिः पानं सूर्य जपहोममंत्रादिरिष्यते'** अर्थात् उन्माद रोग में-विशेषकर भूतोन्माद में रोगी को घृतपान कराना चाहिए तथा सूर्य जप-गायत्री महामंत्र का जप एवं हवन आदि कर्म करना चाहिए। इससे उन्माद रोग या पागलपन का दौरा समाप्त हो जाता है और रोगी धीरे-धीरे सामान्य व स्वस्थ हो जाता है।

(५) 'स्ट्रेस' या तनाव एवं 'हाइपरटेंशन' की विशेष हवन सामग्री

तनाव से छुटकारा पाने के लिए निम्नलिखित अनुपात में औषधियों की जौकुट हवन सामग्री बनाई जाती है-

1. ब्राह्मी	-100 ग्राम	2. शंखपुष्पी	-100 ग्राम
3. शतावर	-100 ग्राम	4. सर्पगंधा	-100 ग्राम
5. गोरखमुंडी	-100 ग्राम	6. मालकांगनी-बीज	-100 ग्राम
7. मौलश्री-छाल	-100 ग्राम	8. गिलोय	-100 ग्राम
9. सुगंधकोकिला	-100 ग्राम	10. नागरमोथा	-200 ग्राम
11. घुड़बच	-50 ग्राम,	12. मीठी बच	-50 ग्राम
13. तिल	-100 ग्राम	14. जलकुंभी(पिस्टिया)	-100 ग्राम
15. जौ	-100 ग्राम	16. चावल	-100 ग्राम
17. घी	-100 ग्राम	18. खाँडसारी गुड़	-50 ग्राम।

इन सभी १८ चीजों को कूट-पीसकर उनका जौकुट पाउडर बना लेते हैं। इस प्रकार से तैयार की गई विशेष हवन सामग्री से चंद्र गायत्री मंत्र के साथ हवन करने से तनाव एवं उससे उत्पन्न अनेकों बीमारियाँ तथा हाइपरटेंशन से प्रयोक्ता को शीघ्र लाभ मिलता है।

हवन के लिय यहाँ पर "चंद्र गायत्री मंत्र" का प्रयोग किया गया है। क्योंकि चंद्रमा का मन से सीधा संबंध है, अतः मानसिक रोगों, मनोविकृतियों, मन में संचित विष आदि उष्णताओं का शमन चंद्र गायत्री से होता है।

अंतरात्मा की शांति, चित्त की एकाग्रता, पारिवारिक क्लेश, द्वेष, वैमनस्य, मानसिक उत्तेजना, क्रोध, अंतर्कलह आदि को शांत करके शीतल मधुर संबंध उत्पन्न करने के लिए भी चंद्र गायत्री विशेष लाभप्रद होती है।

चंद्र गायत्री मंत्रः इस प्रकार है-

'ॐभूर्भुवःस्वःक्षीर पुत्राय विद्महे,
अमृत तत्वाय धीमहि तन्नः चंद्रः प्रचोदयात्।'

इस मंत्र द्वारा रोगानुसार विशेष प्रकार से तैयार की गई हवन सामग्री से नित्यप्रति कम से कम चौबीस बार हवन करते रहने से शीघ्र ही मनोविकृतियों से छुटकारा मिल जाता है। हवन करने वाले का चित्त स्थिर और शांत हो जाता है। मानसिक दाह, उद्वेग, तनाव आदि विकृतियाँ उसके पास फटकती तक नहीं। चंद्रमा की समिधा पलाश है, अतः यदि पलाश मिल सके तो अत्युत्तम है। अन्यथा कोई क्षीर वृक्ष जैसे-वट, पीपल, गूलर, बेल, चंदन, देवदार, शमी आदि का प्रयोग किया जा सकता है।

यहाँ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि तनाव की उपरोक्त हवन सामग्री में वर्णित क्रमांक-१ से लेकर क्रमांक-१२ तक अर्थात ब्राह्मी से लेकर मीठी बच तक की औषधियों का बारीक पिसा एवं कपड़े द्वारा छना हुआ चूर्ण सम्मिश्रित रूप से अलग एक डिब्बे में रख लेते हैं और उसमें से एक-एक चम्मच चूर्ण सुबह एवं शाम को जल या दूध के साथ रोगी को सेवन कराते हैं।

६. 'डिप्रेशन'-दबाव-अवसाद आदि मानसिक रोगों की विशेष हवन सामग्री

इसमें निम्नलिखित वनौषधियाँ मिलाई जाती हैं-

1. अकरकरा 2. मालकांगनी(ज्योतिष्मती)के बीज
3. तीमरू (तेजबल) 4. मीठी बच 5. घुड़बच 6. जटामांसी
7. नागरमोथा 8. गिलोय 9. तेजपत्र 10. सुगंधकोकिला
11. जौ 12. तिल 13. चावल 14. घी
15. खाँडसारी गुड़ या शक्कर।

उक्त औषधियों का जौकुट पाउडर तैयार कर लेते हैं। उस तैयार हवन सामग्री से कॉमन हवन सामग्री के साथ हवन करते और साथ ही नंबर-(1) से नंबर-(10) तक की औषधियों का अधिक बारीक पिसा हुआ चूर्ण रोगी को सुबह-शाम एक-एक चम्मच चूर्ण जल या दूध के साथ नित्य खिलाते रहते हैं। इससे जल्दी लाभ मिलता है।

इसके साथ ही डिप्रेशन या दबाव से पीड़ित व्यक्ति को शीघ्र स्वस्थ एवं सामान्य स्थिति में लाने के लिए यह आवश्यक है कि उसके मन के अनुकूल बातें की जाय। प्रसन्नतादायक खुशनुमा वातावरण बनाया जाय, उसके साथ हँसते-हँसाते रहा जाय और उसका उत्साहवर्द्धन किया जाय।

(७) अनिद्रा रोग की विशेष हवन सामग्री

वर्तमानकाल की यह सर्वाधिक भयावह बीमारी है। इसके शमन के लिए जिन वनौषधियों को मिलाकर विशिष्ट हवन सामग्री बनाई जाती है, वह इस प्रकार है-

1. काकजंघा 2. पिप्पलामूल 3. भारंगी 4. जटामांसी
5. जलकुंभी (पिस्टिया) 6. ब्राह्मी 7. शंखपुष्पी 8. सर्पगंधा
9. सुगंधकोकिला 10. ज्योतिष्मती-बीज।

इस हवन सामग्री का उपयोग यदि क्षीरवृक्ष अर्थात् गूलर, पाकर, पलाश, वट, पीपल आदि की समिधाओं के साथ किया जाए, तो अनिद्रा रोग में भी शीघ्र लाभ होता है। हवन करने के साथ ही उक्त सभी दस औषधियों के बारीक पिसे हुए चूर्ण को घी और शक्कर के साथ सुबह-शाम एक-एक चम्मच खिलाते रहना चाहिए, पूर्ण लाभ तभी मिलता है। हवन करते समय 'कॉमन हवन सामग्री-नंबर-१' को भी उक्त रोग की विशिष्ट हवन सामग्री में मिला लेते हैं।

आहार-विहार में परिवर्तन भी अनिद्रा रोग को दूर करने में सहायक होता है। दाल-बाटी एवं बैंगन का भुरता खाने से अच्छी गहरी नींद आती है और अनिद्रा रोग से छुटकारा मिलता है।

८. सामान्य मस्तिष्क रोगों की विशेष हवन सामग्री

सामान्य मस्तिष्क रोगों की सर्वमान्य विशेष हवन सामग्री में निम्नांकित वनौषधियाँ मिलाई जाती हैं-

1. देशी बेर का गूदा (पल्प) 2. मौलश्री की छाल 3. पीपल की कोपलें
4. इमली के बीजों की गिरी 5. काकजंघा 6. बरगद के फल
7. खिरैंटी के बीज(बीजबंद) 8. गिलोय 9. गोरखमुंडी
10. शंखपुष्पी 11. मालकांगनी(ज्योतिष्मती)-बीज
12. ब्राह्मी 13. मीठी बच 14. शतावर
15. जटामांसी 16. सर्पगंधा।

इन सभी सोलह चीजों के जौकुट पाउडर को हवन सामग्री के रूप में प्रयुक्त करने के साथ ही कुछ मात्रा में सभी चीजों को मिलाकर सूक्ष्मीकृत कपड़छन चूर्ण तैयार कर लेते हैं। इस चूर्ण में से एक चम्मच सुबह एवं एक चम्मच शाम को घी-शक्कर या जल के साथ रोगी व्यक्ति को नित्य खिलाते हैं। हवन करते समय उपरोक्त विशिष्ट हवन सामग्री में कॉमन हवन सामग्री-नंबर-१ को भी मिला लेते हैं और तब हवन करते हैं।

९. मंदबुद्धि मिटाने की विशेष हवन सामग्री

मंदबुद्धि मिटाने, मानसिक जड़ता हटाने तथा मस्तिष्कीय क्षमता बढ़ाने के लिए निम्नलिखित औषधियों से बने हविर्द्रव्य से हवन करना चाहिए-

1. शतावर 2. ब्राह्मी 3. ब्रह्मदंडी 4. गोरखमुंडी
5. शंखपुष्पी 6. मंडूकपर्णी 7. मीठी बच 8. मालकांगनी के बीज।

उक्त सभी आठों वनौषधियों को बराबर मात्रा में लेकर उनका जौकुट पाउडर बना करके हवन सामग्री तैयार कर लेते हैं। इसकी कुछ मात्रा बारीक चूर्ण के रूप में अलग से निकालकर कपड़े से छानकर एक अलग डिब्बे में रख लेते हैं। हवन करने के पश्चात् इस चूर्ण में से सुबह-शाम एक-एक चम्मच चूर्ण शहद के साथ रोगी को खिलाना चाहिए। हवन करते समय पूर्व वर्णित 'कॉमन हवन सामग्री-नंबर-१' को भी समान मात्रा में मिला लेनी चाहिए।

मानसिक रोगों मे प्रयुक्त होने वाली समिधाएँ

मस्तिष्कीय रोगों के यज्ञोपचार में समिधाओं का भी अपना विशेष महत्त्व है। अतः जहाँ तक संभव हो, इन रोगों में क्षीर वृक्ष एवं सुगंधित वृक्ष अर्थात् वट, पीपल, गूलर, पाकर, बेल, चंदन, देवदार, खैर, शमी, पलाश आदि का प्रयोग करना चाहिए। उद्विग्न-उत्तेजित मन-मस्तिष्क को शीतलता प्रदान करने में इनसे पर्याप्त सहायता मिलती है।

अध्याय-१२

यज्ञ चिकित्सा के बुद्धि एवं मेधावर्धक प्रयोग

★★★★★★★★★★

गायत्री महाशक्ति की सतोगुणी शक्ति को सरस्वती कहते हैं। मानसिक जड़ता मिटाने एवं निर्मल बुद्धि प्रदान करने में विद्या की अधिष्ठात्री इसी महाशक्ति का हाथ होता है। बुद्धि-बैभव की, वाणी की, विद्या की, प्रतिभा की देवी सरस्वती ही है। मस्तिष्कीय क्षमताओं की अभिवृद्धि, बौद्धिक विकास, प्रतिभा-प्रखरता, स्मरणशक्ति की अभिवृद्धि, परीक्षा में उत्तीर्ण होने और अच्छे अंक लाने के लिए सरस्वती गायत्री का प्रयोग किया जाता है। असफलता, निराशा, चिंता और खिन्नता उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करके सफलता का आशाजनक वातावरण उत्पन्न करने की स्थिति विनिर्मित करने में सरस्वती शक्ति का विशेष महत्त्व है। सरस्वती गायत्री मंत्र द्वारा विशिष्ट प्रकार की औषधियों से बने हविर्द्रव्य से हवन करने पर मनोवांछित दिशा में सफलता मिलती है। यज्ञ द्वारा सरस्वती महाशक्ति का आह्वान, अनुमोदन करके उनके अनुदानों से प्रत्येक आयु वर्ग का व्यक्ति लाभान्वित हो सकता है। सस्रवती गायत्री मंत्र इस प्रकार है-

"ॐ सरस्वत्यै विद्महे ब्रह्मपुत्र्यै धीमहि, तन्नो देवी प्रचोदयात्।"

विभिन्न प्रयोजनों की सिद्धि के लिए, अभीष्ट लाभ प्राप्त करने के लिए इस मंत्र के साथ जिन वस्तुओं या औषधियों के साथ हवन करना चाहिए, उनमें से कुछ प्रयोग इस प्रकार हैं-

१. विद्यार्थियों, बुद्धिजीवियों के लिए बुद्धि, स्मरणशक्ति एवं मेधा संवर्द्धक 'सरस्वती पंचक' प्रयोग

परमपूज्य गुरूदेव द्वारा लिखित अतिदुर्लभ सरस्वती पंचक का यह प्रयोग सभी के लिए उपयोगी व लाभकारी है। नर, नारी, बच्चे, युवा, वृद्ध सभी आयु वर्ग के व्यक्ति इसके सेवन से लाभ उठा सकते हैं। जिन लोगों को अपने मन-मस्तिष्क से ज्यादा काम लेना पड़ता है, जैसे विद्यार्थी, कॉम्पिटीशन में बैठने वाले, लेखक, वकील, कलाकार आदि के लिए 'सरस्वती पंचक' सबसे उत्तम टॉनिक है। दिमागी थकान, सिरदरद, तनाव, उदासी, उत्तेजना, हिस्टीरिया, पागलपन, अनिद्रा आदि मस्तिष्कीय रोगों में लाभकारी होने के साथ ही यह हृदय की धड़कन को भी सामान्य बनाता है। उन विद्यार्थियों के लिए यह विशेष रूप से लाभकारी सिद्ध होता है, जो अपनी 'मेमोरी' अर्थात् स्मरणशक्ति को बढ़ाना और उसे अक्षुण्ण रखना चाहते हैं, मेधावी और प्रतिभावान बनना चाहते हैं। मंदबुद्धि बच्चों के लिए भी यह वरदान साबित होता है।

सरस्वती पंचक

यह निम्नलिखित पाँच औषधियों को मिलाकर बनाया जाता है-

1. ब्राह्मी 2. शंखपुष्पी 3. शतावर 4. गोरखमुंडी और 5. मीठी बच।

इन सभी पाँचों औषधियों को समान मात्रा में अर्थात् १००-१०० ग्राम लेकर कूट-पीसकर उनका बारीक पाउडर बनाकर कपड़े से छान करके एक डिब्बे में रख लेते हैं। इस पाउडर में से बच्चों को आधा-आधा चम्मच एवं बड़ों को एक-एक चम्मच सुबह-शाम दूध के साथ (आवश्यकता पड़ने पर दूध में मिश्री मिलाई जा सकती है) नित्य देते रहने पर उपर्युक्त सभी लाभ दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

२. सरस्वती पंचक की विशिष्ट हवन सामग्री

सरस्वती पंचक खाने के साथ ही साथ नित्य प्रातःकाल इन्हीं औषधियों से विशेष रूप से बनाई गई हवन सामग्री से हवन करते रहने पर द्विगुणित लाभ मिलता है। हवन सामग्री बनाने के लिए निम्नलिखित चीजें

बराबर मात्रा में ली जाती हैं-

1. ब्राह्मी 2. शंखपुष्पी 3. शतावर 4. गोरखमुंडी
5. मीठी बच 6. तिल 7. चावल 8. जौ
9. गुड़ या शक्कर 10. घी।

इन दस चीजों को मिलाकर तैयार की गई हवन सामग्री के बराबर ही पहले से बनी हुई 'कॉमन हवन सामग्री-नंबर-१' अर्थात् अगर-तगर आदि ग्यारह औषधियों से युक्त हवन सामग्री को लेकर मिश्रित करके तब हवन करना चाहिए।

३. निर्मल बुद्धि प्राप्त करने के लिए विशेष हवन सामग्री

चिरग्रहणी निर्मल बुद्धि प्राप्त करने के लिए कई एकल शास्त्रीय विधान भी हैं । देवी भागवत् में उल्लेख है-

पयो हुत्वाप्नुयान्मेधामाज्यं बुद्धिमवाप्नुयात् ।
अभिमंत्र्य पिबेदब्रह्मं रसं मेधामवाप्नुयात् ॥

अर्थात् दूध का हवन करने से तथा घृत की आहुतियाँ देने से बुद्धि-वृद्धि होती है। ब्राह्मी के रस को गायत्री मंत्र से अभिमंत्रित करके मंत्रोच्चार करते हुए पान करने से चिरग्रहणी निर्मल बुद्धि प्राप्त होती है।

४. बुद्धि प्राप्ति हेतु ब्राह्मी प्रयोग

विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती है। विद्या प्राप्त करने के लिए इसी महाशक्ति की आराधना आवश्यक है। विलक्षण बुद्धि चाहने, प्रज्ञा संपन्न बनने के लिए ब्राह्मी का प्रयोग अनुष्ठानपूर्वक करना चाहिए।

ब्राह्मी तीन प्रकार की होती है-१.ब्राह्मी-सफेदफूल-सतोगुणी २. मंडूकपर्णी (ब्राह्मी)-लालफूल-रजोगुणी ३. बेकोपामोनिएरा (जलनीम)-दक्षिण भारतीय ब्राह्मी-नीलाफूल-तमोगुणी।

इच्छानुसार कोई भी व्यक्ति ब्राह्मी का प्रयोग कर सकता है। इन्हें बगीचे या गमले में घर पर भी उगाया जा सकता है।

प्रयोग विधि

१. आवश्यक सामग्री-जल, चावल, हलदी, पुष्प, अगरबत्ती।

२. तिथि-माघ शुक्ल त्रयोदशी को संध्या शाम के समय ब्राह्मी को निमंत्रण देना चाहिए।

३. निमंत्रण मंत्र-"**ॐ कुमार अंजनायै नमः।**"

४. विधि-इक्कीस बार '**ॐ कुमार अंजनायै नमः।**'

इस मंत्र को बोलकर छह इंच से लेकर एक फुट के घेरे में ब्राह्मी के पौधों के आस-पास चहुँओर एक घेरा बना देना चाहिए। फिर उस पौधे के नीचे श्रद्धाभावपूर्वक हलदी, चावल, अगरबत्ती लगाकर प्रणाम करना चाहिए।

५. रात्रि में कंबल या कुश की चटाई के ऊपर अथवा साफ धुले बिस्तर पर शयन करना चाहिए।

६. प्रात: काल चतुर्दशी में ४ बजे सुबह उठकर चाहे स्नान करें या न करें. बिना किसी से कुछ बोले ब्राह्मी के निमंत्रित पौधों को २१ बार निम्न मंत्र को बोलकर उखाड़ लेना चाहिए-

७. ब्राह्मी उखाड़ने का मंत्र है-"**ॐ ऐं बुद्धि वृद्धिन्यै नमः।**"

८. ब्राह्मी उखाड़ने के पश्चात् उसे गंगा जल या साफ जल में अच्छी तरह साफ करके मिक्सी, खरल या सिलबट्टे में नीचे लिखे मंत्र को २१ बार बोलते हुए पीसते है।

९. ब्राह्मी पीसने का मंत्र- "**ॐ ऐं ह्रीं ब्राह्मयै नमः।**"

इसके पश्चात् गंगातट या नदी किनारे स्नान करके निम्न मंत्र का १०८ बार जप करना चाहिए।

१०. जप करने का मंत्र-

"ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं वाग्वादिनी सरस्वती मम
जिह्वाग्रे वद् वद् सर्वां विद्यां देहि देहि स्वाहा।"

तदुपरांत कमर तक पानी में खड़े होकर सरस्वती माता की कृपा से मुझे विद्या अवश्य प्राप्त होगी-इस तरह बोलते एवं भाव करते हुए उक्त रस को पी लेना चाहिए।

रस पीने के बाद तीन घंटे तक कुछ नहीं खाना चाहिए। तत्पश्चात् खा लें। जो बालक, युवा या वृद्ध इस मंत्र का प्रतिदिन १०८ बार जप करता है, उसमें अद्‌भुत चमत्कारिक प्रतिभा दिखाई देती है। छोटे बच्चों हेतु माता-पिता संकल्पित होकर स्वयं जप करने के बाद उपर्युक्त विधि से ब्राह्मी का रस निकालकर बच्चे को पिला सकते हैं। उल्टी न होने पाए, इसलिए थोड़ा-थोड़ा करके चम्मच से पिलाएँ और उसमें मिश्री आदि मिला दें।

५. विद्या प्राप्ति हेतु सिद्ध हयग्रीव मंत्र के साथ गिलोय प्रयोग

इस प्रयोग को कभी भी शुभ दिन से शुरू किया जा सकता है। जप करने का मंत्र इस प्रकार है-

"ॐ ऐं ह्रीं ह्रीं हयग्रीवाय नमों मां विद्यां
देहि देहि बुद्धि वर्द्धय वर्द्धय हुँ फट स्वाहा ।"

इस मंत्र का चौबीस हजार बार जप करना चाहिए। इसके पश्चात् गायत्री पद्धति से हवन करना चाहिए। आहुति हेतु मंत्र यही रहेगा। इसके लिए प्रयुक्त होने वाली हवन सामग्री में निम्न औषधियाँ बराबर मात्रा में मिलाई जाती हैं-

1. गिलोय 2. अपामार्ग 3. शंखपुष्पी 4. ब्राह्मी
5. मीठी बच 6. सोंठ 7. शतावर।

हवन करते समय इन सातों की कुल मात्रा के बराबर 'कॉमन हवन सामग्री-नंबर-१' भी मिला लेते हैं।

हवन करने के पश्चात् उक्त सातों औषधियों के सम्मिश्रित कपड़छन चूर्ण को, जो पहले से ही अलग से एक डिब्बे में रख लिया जाता है। रोज एक माला जप करने के बाद घी-शक्कर के साथ ५ ग्राम चूर्ण का सेवन नियमित रूप से करते हैं। डेढ़ माह बाद अंतर स्पष्ट देखा जा सकता है।

६. विद्वान बनने हेतु जिह्वा पर लिखने की विधि

यह प्रक्रिया वर्षा ऋतु के केवल अषाढ़ महीने में तब सम्पन्न की जाती है, जब उत्तराषाढ़ा नक्षत्र हो। उस समय दिन में पवित्री करण आदि करते हुए शान्त मन व स्थिर चित्त से निम्नलिखित मंत्र को १०८ बार जप लेना चाहिए। जप का मंत्र इस प्रकार है-

"ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं वाग्वादिनी सरस्वती मम
जिह्वाग्रे वद वद ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं नमः स्वाहा।"

जप करने के पश्चात् रात्रि में ११ से १२ बजे के बीच इसी मंत्र का उच्चारण करते हुए जिस व्यक्ति या बच्चे को विद्वान बनाना हो, उसकी जिह्वा पर लाल चंदन से-जो घिसकर पहले से ही तैयार रखा जाता है, 'ह्रीं' मंत्र लिख देते हैं। कुछ दिन के पश्चात् उसके लक्षण स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

अध्याय-१३

यज्ञ द्वारा पर्यावरण संशोधन एवं ऋतु अनुकूलन

★★★★★★★★★★★★

अ. यज्ञ द्वारा पर्यावरण परिशोधन

पर्यावरण संरक्षण की वैदिक अवधारणा

जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं के संरक्षण के महत्त्व को प्राचीन काल से ही स्वीकार किया जाता रहा है। मानवीय सभ्यता की विकास यात्रा में पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से वेदों का महत्त्व अक्षुण्ण रहा है। वेदों में पर्यावरण संरक्षण की विस्तृत व्याख्या मिलती है। ये व्याख्याएँ निश्चित रूप से आज भी विश्व में पर्यावरण संकट के संदर्भ में ग्लोबल वार्मिंग सहित उठ रही नित्य नवीन चुनौतियों का समाधान करने में सक्षम हैं।

वेद वस्तुतः उस परम व्यवस्था की ओर संकेत करते हैं, जिसके अधीन यह प्रकृति अपने क्रिया-व्यापार संचालित करती है। प्रकृति के भी कुछ नियम हैं। इन नियमों का उल्लघंन होने पर ही विश्रृंखलता आती है और विनाश की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। वेदों के भिन्न-भिन्न सूक्तों में प्रकृति की महत्ता की ओर इंगित किया गया है। इन सूक्तों के प्रत्येक शब्द में भावसंवेदना एवं ज्ञान के उच्च स्वर ध्वनित होते हैं। ऋग्वेद में अग्नि के रूप, रूपांतर, कार्य एवं गुणों की विस्तृत व्याख्या की गई है। यजुर्वेद में वायु के विविंध रूपों एवं गुण-धर्म की तात्त्विक व्याख्या की गई है। इसी प्रकार सामवेद में जलतत्त्व की एवं अथर्ववेद में पृथ्वी तत्त्व की व्याख्या की गई है। पर्यावरण के निर्माण में भी इन्हीं चार तत्त्वों की मुख्य रूप से भूमिका

होती है। इस प्रकार वेद पर्यावरण संरक्षण की अत्यंत सूक्ष्म एवं समग्र व्याख्या करते हैं।

यजुर्वेद में प्रधान रूप से यज्ञों के विधि-विधानों का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ में यज्ञों को ही पर्यावरण शुद्धि का केंद्र माना गया है। एक मंत्र में कहा गया है कि वायु को शुद्ध करने वाले, संसार के धारक एवं सुख का विस्तार करने वाले यज्ञ का त्याग मत कर। एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि हे अग्नि! लोकमंगल के लिए तुम सर्वत्र व्याप्त हो जाओ। विषाक्त अन्न-जल से मेरी रक्षा करो। पृथ्वी को संबोधित करते हुए एक अन्य मंत्र में कहा गया है-''हे पृथ्वी! तुम रत्न धन की खान हो और कृषि कर्मों की सूत्रधारिणी हो।"

सामवेद को संगीतात्मक ग्रंथ माना गया है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने **'वेदानां सामवेदोस्मि'** कहकर इस ग्रंथ को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। सामवेद में प्राकृतिक वैभव के साथ ही वनस्पति एवं पशुजगत के संरक्षण के महत्त्व को भी उभारा गया है। एक सूक्त में ऋषि का कथन है-"अत्यधिक वर्षा करने वाले इंद्र की जलवृष्टि से सूर्य की किरणें वृक्षों और वनस्पति का पोषण करने में सहायक होती हैं।" एक अन्य सूक्त में याचना की गई है कि हे इंद्र! सूर्य रश्मियों और वायु से हमारे लिए औषधियों की उत्पत्ति करो। इस प्रकार सामवेद के उदाहरणों में वानस्पतिक उत्कर्ष के द्वारा सर्वत्र स्वस्थ जीवन की कामना व्यक्त की गई है।

पर्यावरण संरक्षण की एक अनिवार्य इकाई पशुजगत के प्रति भी सामवेद में अनुराग भरा दृष्टिकोण प्राप्त होता है। वस्तुतः अहिंसा इस दृष्टिकोण का मूल तत्त्व है। एक मंत्र में इंद्र को संबोधित करते हुए कहा गया है- "हे इंद्र! तुम धन वृद्धि करते हो। तुम्हारे दिव्य धन को नष्ट करने की शक्ति किसी में नहीं।" पुनश्च गायों को संबोधित करते हुए कहा गया है-"गौओं! तुम सब रूपों वाली, प्रातः-सायं दूध देने वाली, बछड़ों सहित उच्च भाव को प्राप्त करो।" इस प्रकार सामवेद में अनेक काव्यात्मक बिंबों के माध्यम से प्रकृति के साथ पशुधन संरक्षण के मनोरम चित्र अंकित किए गए हैं। **'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्यां'** अर्थात मैं भूमि का पुत्र हूँ और यह पृथ्वी मेरी माता है, जैसी उद्घोषणाओं में प्रकृति के प्रति अपार श्रद्धा व्यक्त हुई है।

अथर्ववेद को एक अतुलनीय औषधि शास्त्र के रूप में मान्य किया जाता है। इसमें मानव जीवन के लिए अमृतोपम जड़ी-बूटियों का विशद वर्णन मिलता है। जीवन के समस्त विकारों को दूर कर स्वस्थ, शांत एवं सुखी जीवन जीने की प्रेरणा तथा प्रकृति के साथ भावनात्मक लगाव का संदेश देता अथर्ववेद मानव के वैयक्तिक एवं सामाजिक परिवेश को निर्यंत्रित करने के नियम प्रतिपादित करता है।

जीवन सुख-समृद्धि से ओत-प्रोत हो, पर यह तभी संभव है, जब वनस्पति जगत फले-फूले। दिव्य औषधियाँ सहज सुलभ हों, पशुधन सुरक्षित रहे और मानव, पशु एवं वनस्पति एक स्नेहिल तादात्म्य के साथ संगठित रहें। वैदिक सूक्तों में पर्यावरण के संबंध में हमारे ऋषियों का यही दृष्टिकोण प्रमुखतः उभरकर हमारे सामने आता है। एक सूक्त में ऋषि की प्रार्थना है-"मधुमयी पृथ्वी से उत्पन्न लता मैं तुझे खोजता हूँ। मुझे मधुरता प्रदान कर। मेरा शरीर, मेरा अंतःकरण और अधिक मधुर हो। मेरी वाणी एवं मेरे कार्यों में मधुरता बरसे। तेरी समीपता से मैं मधु से भी मधुर हो जाऊँ।" यह संपूर्ण मावन जाति को माधुर्य का संदेश देता है।

'जीवेम् शरदः शतम्' की अवधारणा प्रकृति के साथ माधुर्ययुक्त संवाद में ही संभव है। इस संवाद में संबंधों की कृत्रिमता के लिए, छल-कपट के लिए कोई स्थान नहीं है। इसका स्वरूप देवोपासना से किसी भी तरह कम नहीं। वेदों में वर्णित प्रकृति केवल जड़ पदार्थ नहीं है, अपितु वह ईश्वर की लीला भूमि है। प्रकृति के कण-कण में ईश्वरीय चेतना ही क्रीड़ा-कल्लोल कर रही है।

पर्यावरण को संरक्षित रखने के लिए वैदिक ऋषियों ने यज्ञीय जीवन के जिस मार्ग का अन्वेषण किया था, उसकी महत्ता आज भी उतनी ही है, जितनी तब थी। ध्वंस के द्वारा प्रकृति अपना संतुलन स्वयं स्थापित करे, इससे बेहतर यह है कि हम प्राकृतिक नियमों का पालन कर उसे ध्वंस की ओर नहीं, अपितु सृजन की ओर उन्मुख करें। यज्ञ, प्रकृति प्रेम, अहिंसा-ये वेदों की वे शिक्षाएँ हैं, जिन पर चलकर विषाक्त हो चुके पर्यावरण को हम अमृतमय बना सकते हैं और "इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य" की संकल्पना को साकार कर सकते हैं।

यज्ञीय प्रक्रिया द्वारा पर्यावरण प्रदूषण का परिशोधन

यज्ञ करने-कराने एवं उसके दर्शन-सिद्धांत को जीवन में अपनाने-धारण करने से मानवी मन, बुद्धि एवं चेतना का शोधन, परिष्कार तो होता ही है, साथ ही साथ मंत्रपूरित यज्ञीय धूम्र, यज्ञीय ऊर्जा चहुँओर विस्तारित-अवशोषित होकर वायु, जल, वनस्पति, वातावरण एवं पर्यावरण का परिशोधन कर उसमें नवीन ऊर्जा का संचार करती है। यज्ञ द्वारा पंचमहाभूतों के विकारों की निवृत्ति होती है। यह एक उच्चस्तरीय एवं समग्र चिकित्सापद्धति भी है।

प्रचीनकाल में अपने देश में तीन प्रकार की चिकित्सा पद्धतियाँ प्रचलित थीं-१. आसुरी चिकित्सापद्धति २. मानवीय चिकित्सापद्धति एवं ३. दैवी चिकित्सापद्धति। इनमें से जो चिकित्सा शस्त्रों से की जाती थी, उसे आसुरी चिकित्सा कहा जाता था। कषायादि औषधियों से की जाने वाली चिकित्सा मानवी चिकित्सा एवं मंत्र, यज्ञ या हवनोपचार से जो चिकित्सा की जाती थी, उसे दैवीय चिकित्सा कहते थे। मूर्द्धन्य ऋषि-मनीषियों ने अपने गहन अध्ययन- अनुसंधानों एवं अनुभवों के आधार पर यज्ञ चिकित्सापद्धति का विकास किया था। यज्ञ चिकित्सा एक मात्र ऐसी चिकित्सापद्धति है, जिससे मानव सहित समूचे जीव जगत एवं वनस्पति जगत से लेकर पृथ्वी, जल, वायु, आकाश आदि समस्त सृष्टि घटकों, पंचमहाभूतों के विकारों का शमन होता है। यज्ञीय ऊर्जा से अनुप्राणित होकर सभी सृष्टि घटक अपने-अपने कार्यों से सृष्टि व्यवस्था को संतुलन प्रदान करते हैं।

आज मनुष्य ने अपने आचरण, व्यवहार एवं कृत्यों से अपने चहुँओर के वातावरण सहित पृथ्वी, जल, वायु, आकाश आदि सभी क्षेत्रों में विषाक्तता भर करके अपने लिए सभी प्रकार की मुसीबतें खड़ी कर ली हैं। ऋतु अनकूल सरदी, गरमी, धूप, वर्षा आदि अपने-अपने प्रकृति से विचलित दृष्टिगोचर होने लगे हैं। नित नई शारीरिक-मानसिक व्याधियाँ प्रकट हो रही हैं। अनावृष्टि, अतिवृष्टि, भूकंप, ज्वालामुखी विस्फोट, तूफान, चक्रवात, भूस्खलन जैसी भयावह प्राकृतिक विभीषिकाएँ चाहे जब अपना रौद्र रूप प्रदर्शित करती रहती हैं। अपने ही कृत्यों से आज का मानव समुदाय तनावग्रस्त, चिंतित, छल-प्रपंचों में संलिप्त, आचरण एवं नीतिविहीन, ईर्ष्या-द्वेष में आकंठ डूबा हुआ दृष्टिगोचर होता है।

प्रचीन ऋषियों ने यज्ञीय दर्शन एवं हवन का वृहद प्रचलन करके उक्त सभी समस्याओं का निराकरण करते हुए सभ्य समाज की नीव रखी थी और इस प्रयोग में वे पूर्णतः सफल भी हुए थे। कालांतर में यह विद्या सीमित होती चली गई और व्यक्तिगत हवन या यदा-कदा छोटे-मोटे यज्ञ समारोहों में सिमटकर रह गई। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने गायत्री महायज्ञों के रूप में इसका पुनर्जीवन किया, जिसकी परिणति वृहद अश्वमेध यज्ञों के रूप में पिछले दिनों सर्वसामान्य के समक्ष आ चुकी है। वैश्विक नवनिर्माण में इसकी फलश्रुति भी लोगों से छिपी नहीं हैं। यज्ञ चिकित्सा को विश्व की समस्त चिकित्सा पद्धतियों में शिरोमणि के पद पर प्रतिष्ठित करने की अनवरत शोध-प्रक्रिया का उनके निर्देशन में जो शुभारंभ हुआ था, वह बीज अब वटवृक्ष के रूप में अपना विराट स्वरूप प्रकट करने जा रहा है। इसमें वनस्पतिजगत एवं प्राणिजगत सहित समूचे मानव जाति का कल्याण सन्निहित है।

यज्ञ द्वारा पर्यावरण परिशोधन के कुछ वैज्ञानिक साक्ष्य

रुग्णता के अनुरूप उपाय-उपचार किए जाएँ तो ही रोग मिटता है। अतः विराट स्तर पर संव्याप्त पर्यावरणीय विषाक्तता के उपचार के लिए तदनुरूप व्यापक स्तर पर सूक्ष्म, किंतु सक्रिय प्रभाव डालने वाले उपाय-उपचारों का ही आश्रय लेना पड़ेगा। वैज्ञानिक दृष्टि से प्रमाणित प्राचीन वैदिक यज्ञोपचार प्रक्रिया ही आज के विकृत पर्यावरण के परिशोधन का एकमात्र साधन है। मंत्रपूरित यज्ञ की सूक्ष्म ऊर्जा तरंगें प्रकृति के समस्त घटकों के भीतर तक पहुँचकर वहाँ विद्यमान प्रदूषणता व विषाक्तता को मिटा सकती हैं और उसके स्थान पर उपयोगी तत्त्वों का प्राणसंचार कर सकती हैं।

पिछले दिनों देश के विभिन्न प्रांतों में संपन्न हुए विराट गायत्री महायज्ञों एवं अश्वमेध यज्ञों की उपादेयता एवं प्रभावोत्पादकता का वैज्ञानिक तरीके से गहन अध्ययन, अनुसंधान एवं प्रयोग-परीक्षण देश के मूर्द्धन्य वैज्ञानिकों द्वारा किया गया। पाया गया कि प्रकृति में वातावरण में पहुँची हुई यज्ञीय गैस या ऊर्जा और मंत्रपूरित ध्वनि तरंगों की संयुक्त शक्ति से अपने अयन मंडल में तथा ब्रह्मांडीय शक्तियों के भीतर भारी हलचल उत्पन्न होती है। इस हलचल के परिणामस्वरूप पृथ्वी पर नए तत्त्वों का आकर्षण होता

है, वर्षा आदि की अनुकूल परिस्थितियाँ बनती हैं। मौसम की अनुकूलता एवं वातावरण में शक्तिवर्द्धक प्राण पर्जन्य की बहुलता होती है। जल एवं भूमि पर भी यज्ञीय ऊर्जा के सकारात्मक परिणाम देखे गए। यज्ञस्थल एवं उसके आसपास के क्षेत्रों में फसलोत्पादक क्षमता में वृद्धि आँकी गई। वैज्ञानिक विश्लेषणों में पाया गया कि जल एवं वायुमंडल में विद्यमान विषाक्तता, जीवाणु-विषाणुओं की उपस्थिति, कार्बन मोनोऑक्साइड, कार्बन डायऑक्साइड, सल्फर डायऑक्साइड, नाइट्रिक एसिड, व इससे उत्पन्न विषैली गैसों के अनुपात में भारी कमी आई। यज्ञीय प्रक्रिया से उपस्थित जनसमुदाय में सकारात्मक प्राणऊर्जा का भरपूर संचार किया जा सकता है। इसका प्रतिफल नूतन प्राणसंचार एवं उत्साह-उमंग के रूप में तत्काल देखा जा सकता है। इसका विस्तृत विवरण परिशिष्ट-३ में देखा जा सकता है।

अमेरिका एवं जर्मनी जैसे भौतिकवादी देशों के वैज्ञानिकों ने भी अपने विस्तृत अध्ययन-अनुसंधानों के आधार पर अब अग्निहोत्र, हवन या यज्ञीय उर्जा की प्रभावोत्पादकता एवं महत्ता को स्वीकार किया है। उनका निष्कर्ष है कि वातावरण में विद्यमान विषाक्तता या पर्यावरण प्रदूषण के उपचार का एकमात्र साधन यज्ञ है। यांत्रिक उपकरणों एवं वृक्षारोपण आदि के माध्यम से उत्पन्न होने वाले तात्कालिक प्रदूषण को रोका जा सकता है, किंतु अब तक जो जहर वातावरण में भरा जा चुका है, उसका शुद्धिकरण इससे नहीं हो सकता। स्वास्थ्यवर्द्धक, सूक्ष्म पोषक तत्त्वों एवं प्रदूषण निवारक तत्त्वों के वायुमंडल में संप्रेषण का एकमात्र सशक्त माध्यम यज्ञ ही है। यज्ञीय ऊर्जा से पोषित सूर्य किरणों को धरती पर विद्यमान जलीय स्रोत अच्छी तरह अवशोषित कर लेते हैं। इससे प्रकृति की ऑक्सीजन रिसाइकिलिंग प्रणाली संतुलित बनती है। ग्रहीय ऊर्जा चक्रीय गति को संतुलित बनाए रखने में भी यज्ञ की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

पर्यावरण परिशोधन की विशिष्ट हवन सामग्री

पर्यावरण प्रदूषण को दूर करने के लिए जो हवन सामग्री बनाई जाती है, उसमें निम्नलिखिति वनौषधि द्रव्य मिलाए जाते हैं-

1. अगर	2. अनंतमूल	3. अपामार्ग	4. आम के सूखे पत्ते
5. आँवला	6. बड़ी इलायची	7. इंद्रजौ	8. बड़ी कटेरी

9. कपूर	10. किशमिश	11. कूठ	12.केशर
13.गिलोय	14. गुग्गुलु	15. गंधक	16.गंधतृण
17.चमेली या चंपापुष्प		18. चौलाई की जड़	
19. चंदन का बुरादा	20. छुआरा	21. जटामांसी	22.जायफल
23.जौ	24. तगर	25. तज	26.तालीसपत्र
27.तुलसी	28. तेजपत्र	29. दवना	30.दालचीनी
31.देवदार का बुरादा	32. दूर्वा	33. निर्गुंडी	34.नागरमोथा
35.निशोथ	36. नीम की सूखी पत्ती या छाल		
37.नागकेसर	38. नेर या गुलपिटा की पत्ती		39.प्रियंगु
40.फरहद या परिभद्र	41. बच	42. बला	43.बाकुची
44.बिल्वगिरी	45. ममीरी	46. मरुआ तुलसी	
47.मौलश्री	48. मंजीष्ठ	49. राल	50.लाख
51.लोबान	52. लोध्र	53. लौंग	54.शिरस छाल
55.सरसों	56. साल गोंद	57. सुगंधबाला	
58.सर्ज	59. सुपारी	60. हलदी	61.हरीतकी
62.गोघृत	63. गुड़ या शक्कर अथवा शहद।		

गुड़ एवं घृत को छोड़कर उपर्युक्त सभी वनौषधियों को बराबर मात्रा में लेकर उन्हें कूट-पीसकर दरदरा जौकुट पाउडर बना लेते हैं। तदुपरांत समूची सामग्री को अच्छी तरह मिलाकर एकरस कर लेते हैं और उसे सुरक्षित रख लेते हैं। हवन करते समय बराबर मात्रा में 'कॉमन हवन सामग्री नंबर-१' एवं उक्त हवन सामग्री का दसवाँ भाग घृत तथा दसवाँ भाग ही गुड़ या शक्कर या शहद मिलाकर तब गायत्री महामंत्र बोलते हुए हवन करते हैं। हवन सदैव प्रात: अरुणोदय काल में एवं शाम को सूर्यास्त के समय करना चाहिए। यह संधिवेला का समय होता है, जो हवन या यज्ञ के लिए सर्वाधिक सुरक्षित एवं प्रभावोत्पादक माना जाता है।

अथर्ववेद के १९/५५/३-४ मंत्र में कहा गया है-' **सायंसायं गृहपतिर्नो. ....सौमनसस्य दाता।।**' अर्थात संध्याकाल में जो हवन होता है, उससे उत्पन्न यज्ञीय ऊर्जा का प्रभाव प्रात:काल तक बना रहता है और वायु को शुद्ध बनाए रखता है तथा सुखकारी होता है। इसी तरह जो हवनीय द्रव्य प्रात:काल

अग्नि में हवन किया जाता है, वह द्रव्य यज्ञीय ऊर्जा के रूप में सायंकाल तक वातावरण में विद्यमान रहकर वायु को परिशोधित करता और बल, बुद्धि एवं आरोग्य प्रदान करता है। अग्निहोत्र, हवन या यज्ञ से पर्यावरण परिशोधित होता और प्राण पर्जन्य की अभिवृद्धि होती है। इसका लाभ समूची सृष्टि को मिलता है।

(ब) ऋतुओं के अनुसार हवन चिकित्सा

ऋतुओं का मनुष्य की शारीरिक-मानसिक स्थितियों, जैविक क्रियाओं एवं त्रिदोषों अर्थात वात, पित्त, कफ पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। इसलिए आयुर्वेद-ग्रंथों में षड्ऋतुओं एवं ऋतुसंधियों के अनुकूल आहार-विहार अपनाने का निर्देश किया गया है। इसे ऋतुचर्या कहते हैं। इसका कठोरता से पालन करने पर व्यक्ति को ऋतु परिवर्तन से होने वाले कुप्रभावों का कोई विशेष असर नहीं झेलना पड़ता। शरीर में धातुसाम्यता बनी रहती है। साथ ही सामूहिक चिकित्सा पद्धति के रूप में यज्ञ चिकित्सा अपनाकर न केवल शारीरिक-मानसिक बीमारियों से बचा जा सकता है, वरन् इससे ऋतु परिवर्तनजन्य दुष्प्रभावों का शमन होकर अनुकूल वातावरण का लाभ भी मिलता है।

प्रकृति में परिवर्तन का क्रम क्रमशः नियमित रूप से एवं धीमी गति से चलता है। कोई भी ऋतु एकदम से नहीं आ धमकती। ऋतुएँ प्रायः धीरे-धीरे बदलती हैं और उसी क्रम से एक निश्चित कालक्रम में अपना प्रभाव प्रकट करती हैं।

षड्ऋतुएँ

सर्वविदित है कि एक वर्ष में बारह महीने होते हैं। अपने देश में वर्ष में ६ ऋतुएँ होती हैं अर्थात प्रत्येक दो माह में एक ऋतु। जैसे- १. माघ-फल्गुन या जनवरी, फरवरी, मार्च में-शिशिर ऋतु २. चैत्र-वैशाख या मार्च, अप्रैल, मई में-वसंत ऋतु ३. ज्येष्ठ-आषाढ़ या मई जून, जुलाई में-ग्रीष्म ऋतु ४. श्रावण-भाद्रपद या जुलाई, अगस्त, सितंबर में-वर्षा ऋतु

५. आश्विन-कार्तिक या सितंबर, अक्टूबर, नवंबर में-शरद ऋतु एवं ६. मार्गशीर्ष-पौष या नवंबर, दिसंबर, जनवरी में-हेमंत ऋतु। आयुर्वेद शास्त्रों में सूर्य एवं चंद्रमा को काल विभाजन मान कर वर्ष को उत्तरायण एवं दक्षिणायन नामक दो भागों में बाँटा गया है। इनमें शिशिर, वसंत एवं ग्रीष्म ऋतुएँ उत्तरायण के अंतर्गत आती हैं, जबकि वर्षा, शरद एवं हेमंत ऋतुएँ दक्षियणायन में आती हैं। दक्षिणायन में सूर्य दक्षिण दिशा की ओर जाता है, अतः तीन ऋतुओं के इस काल को विसर्गकाल कहते हैं। उत्तरायण में सूर्य उत्तर दिशा की ओर स्थित होता है, अतः शेष तीन ऋतुओं का यह समय आदानकाल कहलाता है।

आयुर्वेदाचार्यों ने आदानकाल को 'आग्नेय' नाम से भी संबोधित किया है। इस काल में सूर्य अपनी तप्त किरणों से संसार के जलीय अंश को सोख लेता है, जिससे वायु तीक्ष्ण और रूक्ष होकर प्रकृति के स्नेहांश का शोषण कर लेती है। फलस्वरूप तीनों ऋतुएँ-शिशिर, वसंत और ग्रीष्म में सूर्य किरणें क्रमशः अधिकाधिक प्रचंड होती जाती हैं। जैसे-जैसे सूर्य किरणों की यह तीव्रता बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे कफ का नाश एवं वायु की वृद्धि हो जाती है। आदानकाल में वायु तथा आकाश की प्रधानता के कारण तिक्त रस, वायु तथा पृथ्वी की प्रधानता के कारण कषाय रस एवं वायु और अग्नि की प्रधानता के कारण कटु रस की बढ़ोत्तरी होती है और यही मनुष्य की दुर्बलता का कारण बनते हैं। सूर्य मकर संक्रांति से ६ महीने तक उत्तरायण में रहता है। सुश्रुत संहिता में कहा गया है- **'भानोर्मकरसंक्रान्तेः षणमासा उत्तरायणम्।'**

वर्षा, शरद एवं हेमंत ऋतुओं को दक्षिणायन या विसर्गकाल कहते हैं। इस समय सूर्य दक्षिण दिशा में स्थित होता है, फलतः वायु की रूक्षता कम हो जाती है। वर्षा होने के कारण तापमान गिर जाता है। वातावरण सौम्य होता है। इस काल में चंद्रमा की प्रधानता होती है। उसका बल बढ़ा हुआ होता है, जिससे वह अपनी सौम्य किरणों से समूचे जगत को तृप्त करता है। इन दिनों अम्ल, लवण एवं मधुर रसों की अभिवृद्धि होती है। इसलिए इन ऋतुओं में, विशेषकर सरदियों में खट्टे, नमकीन, मीठे एवं मधुर रसयुक्त तथा चिकनाईयुक्त आहार लेने का आयुर्वेद ग्रंथों में निर्देश है।

यों तो हर ऋतु में तदनुरूप भिन्न-भिन्न प्रकार के वायुमंडल रहते हैं। सरदी, गरमी, नमी, वायु का हलका या भारीपन, विषैली गैसें, धुआँ धूलकण आदि की उपस्थिति, विविध प्रकार के जीवाणुओं-विषाणुओं की उत्पत्ति, वृद्धि एवं समाप्ति का क्रम चलता रहता है। इसलिए कई बार वातावरण अस्वास्थ्यकर हो जाता है, जैसा कि इन दिनों हो रहा है। ऋतु परिवर्तन से उत्पन्न समस्याओं से हवन या यज्ञ द्वारा सरलता पूर्वक निपटा जा सकता है और स्वास्थ्य को अक्षुण्ण बनाये रखा जा सकता है।

ऋतुओं के अनुसार समिधाएँ

ऋतुओं के अनुसार यज्ञीय समिधाओं के लिए निम्नलिखित बृक्षों की सूखी लकड़ियाँ विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होती हैं-

१. शिशिर ऋतु में गूलर या बरगद की
२. वसंत ऋतु में शमी की
३. ग्रीष्म ऋतु में पीपल की
४. वर्षा ऋतु में ढाक या बिल्व की
५. शरद ऋत में गूलर, पाकर या आम की
६. हेमन्त ऋतु में खैर की समिधाएँ प्रयुक्त की जाती हैं।

ऋतु अनुकूल समिधाओं की उपलब्धता के अभाव में आम, पीपल, ढाक, गूलर आदि की समिधा भी प्रयुक्त कर सकते हैं। चंदन सरीखी सुगंधित समिधाएँ मिला लेने से वातावरण परिशोधन एवं रोगोपचार में अधिक सहायता मिलती है। यहाँ इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि समिधा चयन में उन्हीं लकड़ियों को लेना चाहिए जो सूखी हों। सड़ी, गली, घुन लगी हुई, गंदे स्थानों पर पड़ी हुई, कीड़े-मकोड़ों से भरी हुई समिधा नहीं प्रयुक्त करनी चाहिए। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हवन सामग्री में मिलाई जाने वाली वनौषधियाँ सड़ी-गली एवं हीनवीर्य नहीं होनी चाहिए, वरन् ताजी, वीर्यवान, साफ व सूखी होनी चाहिए। ताजी वनौषधियाँ ६ महीने के बाद क्रमशः अपनी गुणवत्ता तथा रोगनिवारक क्षमता खोने लगती हैं। अतः जहाँ तक संभव हो, वनौषधियाँ अधिक से अधिक ताजी ही लेनी चाहिए। प्रत्येक ऋतु एवं रोग विशेष की विशिष्ट हवन सामग्री के जौकुट पाउडर में तिल, जौ, गोघृत एवं शक्कर या खाँडसारी गुड़ मिलाकर हवन

करने से वातावरण परिशोधन के साथ ही प्रयोक्ता एवं समीपस्थ लोगों को बलवर्द्धक, मानसिक शांतिदायक और रोगनाशक तत्त्वों का लाभ मिलता है।

१. शिशिर ऋतु में हवन चिकित्सा

शिशिर ऋतु के दिनों में सरदी का प्रकोप ज्यादा होता है। चंद्रबल घटने और सूर्य बल बढ़ने के कारण हवा में रूखापन एवं तीखापन रहता है। हवाएँ ठंडी एवं तेज गति से बहती हैं, जिसे शीतलहर कहते हैं। महावट की वर्षा भी इन्हीं दिनों होती है। चरक संहिता, सुश्रुत संहिता एवं अष्टांग संग्रह आदि आयुर्वेद ग्रंथों में इसका वर्णन करते हुए कहा भी गया है-

शिशिरे शीतमधिकं मेघमारुत वर्षजम् ।
रौक्ष्यं चादानजं तस्मात्कार्यः पूर्वोधिकं विधिः॥

अर्थात हेमंत ऋतु की अपेक्षा शिशिर ऋतु में बादल, वर्षा एवं तेज हवा के कारण ठंडक अधिक बढ़ जाती है। शीतलहरी का प्रकोप होता है। आदानकाल होने के कारण वातावरण में रूखापन आ जाता है, जिसका प्रभाव मानव शरीर पर पड़े बिना नहीं रहता। इस ऋतु में वायु प्रकुपित होती है। शीताधिक्य होने से वातव्याधि, दरद, खाँसी, जुकाम, निमोनिया आदि का प्रकोप बढ़ जाता है। गठियावात-जोड़ों का दरद इन दिनों अधिक कष्टदायी बन जाता है। इन विकृतियों से बचने एवं अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने के लिए यज्ञोपचार प्रक्रिया को अपनाना ही वह श्रेष्ठ उपाय है, जो मनुष्य की सर्वविधि रक्षा करता है। शिशिर ऋतु में प्रयुक्त होने वाली हवन सामग्री में वे औषधियाँ सम्मिलित की गई हैं, जो इस उद्‌देश्य को भली प्रकार पूर्ण करती हैं।

शिशिर ऋतु की विशिष्ट हवन सामग्री

इसमें निम्नलिखित वनौषधियाँ मिलाई जाती हैं-

1.	शतावर	-100 ग्राम	2.	दारुहलदी	-100 ग्राम
3.	चिरायता	-100 ग्राम	4.	मुलहठी	-100 ग्राम
5.	बड़ी इलायची	- 100 ग्राम	6.	कपूरकचरी	- 100 ग्राम
7.	बायविडंग	- 100 ग्राम	8.	मोचरस	-100 ग्राम
9.	गिलोय	- 100 ग्राम	10.	चिरौंजी	-100 ग्राम

11. गोरखमुंडी	- 100 ग्राम	12. काकड़ासिंगी	-100 ग्राम
13. पद्माख	- 100 ग्राम	14. सुपारी	-100 ग्राम
15. जटामांसी	- 50 ग्राम	16. भोजपत्र	- 50 ग्राम
17. रेणुका(संभालू के बीज)	-50 ग्राम	18. कौंच बीज	-50 ग्राम
19. शंखपुष्पी	-50 ग्राम	20. गुग्गुल	-150 ग्राम
21. छुआरा	-200 ग्राम	22. काला तिल	-200 ग्राम
23. अखरोट	- 200 ग्राम	24. तुलसी के बीज	-200 ग्राम
25. चंदन चूरा (बुरादा)	-200 ग्राम	26. तुंबरू	-250 ग्राम
27. राल	-250 ग्राम	28. मुनक्का	-250 ग्राम।

उपर्युक्त सभी अट्ठाइस चीजों को एकत्र कर उन्हें धूप में सुखा लेते हैं और कूट-पीसकर जौकुट पाउडर बना लेते हैं। इसी पाउडर में घृत, गुड़ या शक्कर, जौ आदि मिलाकर हवन सामग्री तैयार कर लेते हैं। इसे एक पात्र में सुरक्षित रखकर उस पर 'शिशिर ऋतु की विशिष्ट हवन सामग्री-क्रमांक-२' का लेबल चिपका देते हैं। हवन करते समय पहले से तैयार 'कॉमन हवन सामग्री-क्रमांक-१' को बराबर मात्रा में मिलाकर सूर्य गायत्री मंत्र या गायत्री महामंत्र से हवन करते हैं।

समिधा

शिशिर ऋतु में हवन हेतु गूलर अथवा बरगद की समिधा उपयोग में लाते हैं।

२. वसंत ऋतु में हवन चिकित्सा

वसंत को ऋतुराज कहा जाता है। यह शीतऋतु के समापन और ग्रीष्मऋतु के आगमन का मध्यवर्ती शीतोष्ण काल है, जिसमें कभी गरमी पड़ती है, तो कभी सरदी। इसमें दोनों ऋतुओं का मिलाजुला असर होता है। यह ऋतु प्राणियों एवं वनस्पति जगत को नवीन प्राणऊर्जा, उल्लास, उमंग एवं स्फूर्ति से भर देती है। चारों तरफ प्रकृति में लहलहाते नूतन पल्लव, रंग-बिरंगे फूल व पुष्पमंजरियाँ, सुरभित वायु प्राणियों को, विशेषकर मनुष्यों को कुछ नया कर गुजरने को आमंत्रित करती हैं। वसंत पंचमी का प्रेरणाप्रद महापर्व जीवन को नया संदेश देने इसी ऋतु में आता है।

श्रीमद्भगवद्गीता के दसवें अध्याय के पैंतीसवें श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण ने वसंत ऋतु को अपनी विभूति बताते हुए **'ऋतूनां कुसुमाकरः'** कहकर उसकी महत्ता को प्रतिपादित किया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि नवसृजन, स्वास्थ्य-संवर्द्धन एवं सौंदर्यवृद्धि की दृष्टि से वसंत सर्वोत्तम ऋतु है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ सुश्रुत संहिता-सूत्रस्थान ६/२९ में वसंत ऋतु का वर्णन करते हुए कहा गया है कि 'इस ऋतु में सभी दिशाएँ निर्मल वन-उपवनों से सुशोभित होती हैं। दक्षिण दिशा से बहता हुआ सुरभित मलय पवन एवं नए-नए भूरे-लाल रंग के कोमल पल्लवों से वातावरण बहुत ही सुहाना लगता है।'

वसंत ऋतु में एक ओर जहाँ उपर्युक्त ढेर सारी खूबियाँ हैं, वहीं दूसरी ओर इस ऋतु में अनेक रोग भी पनपते हैं। ऋतुचर्या एवं आहार-विहार का सम्यक रूप से पालन न करने से मनुष्य अनेक तरह की बीमारियों का शिकार बन सकता है। यों तो ऋतु के अनुसार शारीरिक दोषों की घट-बढ़ होती रहती है, जैसे कि भावप्रकाश, पूर्वखंड, प्रकरण ६/३३ में कहा गया है-

वर्षासु शिशिरे वायुः पित्तं शरदि उष्णके।
वसंते तु कफः कुप्येदेषा प्रकृतिरार्त्तवी ॥

अर्थात वर्षा ऋतु और शिशिर ऋतु में वात का प्रकोप होता है। शरद और ग्रीष्म ऋतु में पित्त का प्रकोप होता है तथा वसंत ऋतु में कफ का प्रकोप होता है।

वसंत ऋतु में मौसम अस्थिर रहता है। दिन गरम, तो रातें ठंडी होती हैं। इस ऋतु में सूर्य का बल बढ़ने लगता है और चंद्रमा का बल घटने लगता है, जिससे शरीर में जलीय अंश की कमी होने लगती है। फलतः शरीर में रूखापन आने लगता है और दुर्बलता बढ़ती है। चरक संहिता, सूत्र स्थान-६/२२ के अनुसार हेमंत ऋतु में संचित हुआ कफ वसंत में सूर्य की गरमी से चलायामन होकर अर्थात स्त्रोतों द्वारा शरीर में फैलकर जठराग्नि को मंद कर देता है। इससे मंदाग्नि सहित कई तरह की बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार मौसम में कभी गरमी तो कभी सरदी की अधिकता के कारण भी सरदी, जुकाम, बुखार, नजला, खाँसी, टॉसिल्स आदि रोग उत्पन्न

होते हैं। इन दिनों वायुमंडल में तरह-तरह के फूलों की गंध व परागकणों की भरमार होती है, जो पर्यावरण में विद्यमान विषाक्तता के साथ मिलकर और भी अधिक जहरीले बन जाते हैं। इससे एलर्जीजन्य श्वास-कास, अस्थमा-ब्रोंकाइटिस जैसी बीमारियों का प्रकोप बढ़ जाता है।

वसंत ऋतु में ऋतुदोष के अनुसार एवं आहार-विहार की अनियमितता से उत्पन्न बीमारियों से बचने के लिए सर्वोत्तम उपाय यज्ञोपचार है। वसंत ऋतु की विशेष हवन सामग्री इस प्रकार है-

वसंत ऋतु की विशिष्ट हवन सामग्री

इसमें निम्नलिखित वनौषधियाँ मिलाई जाती हैं-

1. अगर	-100 ग्राम	2. तगर	-100 ग्राम
3. इंद्रजौ	-100 ग्राम	4. भूरिछरीला(दगड़फूल)	-100 ग्राम
5. तालीसपत्र	-100 ग्राम	6. तेजपत्र	-100 ग्राम
7. शीतलचीनी (कबावचीनी)	-100ग्राम	8. श्वेत चंदन	-100 ग्राम
9. लाल चंदन	-100 ग्राम	10. जायफल	-100 ग्राम
11. कमलगट्टा (मखाना)	-100 ग्राम	12. कडुई बच(घोड़बच)	-100 ग्राम
13. बनकचूर	-100 ग्राम	14. दालचीनी	-100 ग्राम
15. तेजबल की जड़ व छाल	-100 ग्राम	16. खस	-100 ग्राम
17. गोक्षरू	-100 ग्राम	18. चिरायता	-100 ग्राम
19. वासा	-100 ग्राम	20. कंटकारी	-100 ग्राम
21. लाजवंती	-50 ग्राम	22. कुलिंजन	-50 ग्राम
23. शंखपुष्पी	-50 ग्राम	24. मंजीष्ठ	-150 ग्राम
25. यष्ठीमधु	-100 ग्राम	26. तुलसीपत्र (श्यामा)	-100 ग्राम
27. सुगंधवाला	-50 ग्राम	28. हाऊबेर	-100 ग्राम
29. पटोलपत्र	-100 ग्राम	30. नीमपत्र	-100 ग्राम
31. संभालू के पत्ते	-100 ग्राम	32. कपूर	-100 ग्राम
33. कपूरकचरी	-125 ग्राम	34. द्राक्ष (मुनक्का)	-250 ग्राम
35. देवदार	- 250 ग्राम	36. गिलोय	-250 ग्राम
37. गुग्गुल	-250 ग्राम	38. धूप	-250 ग्राम

39. पुष्करमूल -250 ग्राम 40. नागकेशर -100 ग्राम
41. गूलर की छाल -250 ग्राम 42. केशर -10 ग्राम
43. जावित्री -15 ग्राम 44. शक्कर या खाँडसारी गुड़-750 ग्राम
45. गोघृत -500 ग्राम।

उपर्युक्त सभी चीजों-क्रमांक-१ से लेकर क्रमांक ४३ तक की वनौषधियों को उनकी निर्धारित मात्रा में लेकर साफ करके सुखा लेना चाहिए। तत्पश्चात् कूट-पीसकर उनका जौकुट पाउडर बना लेना चाहिए और सबको एक साथ अच्छी तरह मिलाकर एवं स्वच्छ डिब्बे में रखकर उस पर 'वसंत ऋतु की विशिष्ट हवन सामग्री-क्रमांक-२' का लेबल चिपका देना चाहिए। हवन करने से पहले पूर्व में तैयार "कॉमन हवन सामग्री-क्रमांक-१" की बराबर मात्रा लेकर अच्छी तरह मिला लेते हैं। हवन सूर्य गायत्री मंत्र या गायत्री महामंत्र से किया जाता है।

समिधा

वसंत ऋतु के लिए हवन में प्रयुक्त की जाने वाली समिधाओं में शमी की सूखी लकड़ी सर्वाधिक उपयुक्त मानी गई है।

विशेष ज्ञातव्य-शिशिर एवं वसंत आदि ऋतुओं में ऋतु प्रतिकूल रहन-सहन एवं आहार-विहार अपनाने से सरदी, जुकाम, खाँसी, निमोनिया, वातविकार, मंदाग्नि, कफजनित व्याधि-विकार, एलर्जी, दमा, त्वचाविकार आदि कई रोग उत्पन्न हो सकते हैं। अत: रोग विशेष की हवन सामग्री को ऋतु विशेष की हवन सामग्री के साथ मिलाकर भी हवन किया जा सकता है अथवा उसे चूर्ण रूप में या क्वाथ रूप में सेवन किया जा सकता है। ऋतु परिवर्तन के समय आहार-विहार के साथ औषधि-सेवन एवं पथ्य-परहेज का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए।

३. ग्रीष्म ऋतु में हवन चिकित्सा

ग्रीष्म ऋतु का आगमन वसंत ऋतु के मध्यकाल अर्थात अप्रैल के मध्य में आरंभ होकर धीरे-धीरे बढ़ता हुआ जून-जुलाई में अपने चरमोत्कर्ष पर जा पहुँचता है। तब सूर्यकिरणें अपनी पूर्ण प्रचंडता पर होती हैं। ज्येष्ठ की तपती दुपहरी एवं लू के चलते थपेड़ों से वृक्ष-वनस्पति सहित समूचा प्राणि

समुदाय झुलसने लगता है। प्रचंड गरमी के कारण जहाँ एक ओर वनस्पतियाँ सूखने लगती हैं, वहीं मानवीय काया भी शुष्क एवं शक्तिहीन होने लगती है। इन दिनों ऋतु परिवर्तन के कारण प्रकृति में विविध प्रकार के रोगकारक जीवाणु-विषाणु उत्पन्न हो जाते हैं, जिनके आक्रमण से विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। प्रायः ऋतु परिवर्तन का ध्यान न रखने और तदनुरूप आहार-विहार का सेवन न करने से मनुष्य का वात, पित्त व कफ पहले से दूषित होता है। कमजोर पड़ गई जीवनीशक्ति रोगाणुओं का आक्रमण झेल नहीं पाती और व्यक्ति बीमारियों का शिकार हो जाता है।

आयुर्वेद के ग्रंथ 'भावप्रकाश' में कहा गया है कि जिस समय दोषों की वृद्धि, कोप तथा शमन हुआ करता है, उसे ऋतु कहते हैं और वह समय सूर्य के मेष-वृष आदि बारह राशियों में भ्रमण करने से छह प्रकार की ऋतुओं वाला होता है। इसमें जब सूर्य मेष और वृषभ राशि में होता है, तब ग्रीष्म ऋतु होती है। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य कर्क रेखा के समीप होता है, जिसके कारण सूर्यकिरणें पृथ्वी पर लंबवत् पड़ती हैं। इन दिनों पृथ्वी भ्रमण करती हुई सूर्य के समीप आ जाती है, इसलिए धरती का वह भाग, जो सूर्य की ओर होता है, अधिक गरम हो जाता है। इस ऋतु में दिन बड़े एवं रात्रि छोटी होने लगती है।

'ग्रीष्मोरूक्षाऽतिकटुकःपित्तकृत कफनाशनः'-भावप्रकाश (४/३२४) के इस सूत्र के अनुसार ग्रीष्म ऋतु रूक्ष, पदार्थों में तीक्ष्णता उत्पन्न करने वाली, पित्तकारक एवं कफनाशक है। इन दिनों वायु बहुत तीव्र और रूखी होती जाती है। फलस्वरूप संसार के जलीय अंश का अवशोषण हो जाता है। सूर्यकिरणों की प्रचंडता जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, उसी क्रम से उनमें तीव्रता बढ़ती है और कफ का नाश एवं वायु की वृद्धि होती है। वायु योगवाही है, जो सूर्यकिरणों को और अधिक उद्दीप्त बना देता है। यही कारण है कि ग्रीष्म ऋतु अति रूक्षता उत्पन्न करती है और तिक्त, कटु, कषाय आदि रूक्ष रसों की वृद्धि करती हुई मनुष्य को उत्तरोत्तर दुर्बल बना देती है। इसीलिए इस ऋतु में पतले, मधुर, शीतल, द्रव तथा स्निग्ध-चिकने खान-पान का सेवन करना हितकारी माना गया है। ग्रीष्मकाल में वात का संचय होता है और वर्षा ऋतु में कोप करता है। इन दिनों पित्त भी प्रकुपित होता है। तीव्र

गरमी के कारण शरीर दुर्बल और कमजोर बन जाता है। जठराग्नि मंद पड़ जाती है, जिससे आहार का समुचित पाचन व अवशोषण नहीं हो पाता, प्यास खूब लगती है, आलस्य सताता है।

अनुसंधानकर्त्ता आयुर्वेद विज्ञानियों का निष्कर्ष है कि गरमी के दिनों में खाद्य पदार्थ, वनौषधियाँ, वृक्ष-पादप एवं जल सारहीन, रूखे और अत्यधिक लघु हो जाते हैं। फलतः इनके सेवन से शरीर में वायु का संचय, पित्त प्रकोप एवं कफ का क्षय हो जाता है। वर्षाकाल में यही संचित वायु प्रकुपित होकर वात व्याधियों को जन्म देती है। इन दोषों का निर्हरण-निर्मूलन हवन चिकित्सा से सहजता से हो जाता है। चरक संहिता, सूत्रस्थान ११/६३ का निर्देश है कि दोषों अर्थात वात, पित्त, कफ के संचयकाल में ही उनके उपशमन का उपाय करना चाहिए। सुश्रुत ने भी कहा है कि संचयकाल में ही दोषों को दूर न करने से आगे चलकर वे अधिक बलशाली हो जाते हैं और कई प्रकार के रोगों को जन्म देते हैं।

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि वृक्ष-वनस्पतियों से आच्छादित वनों या घने जंगलों की हरियाली धरती के जिस भू-भाग में जितनी अधिक मात्रा में होती है, वहाँ वर्षा भी उसी अनुपात से अधिक होती है। पर्यावरण प्रदूषण का संकट व उससे उपजने वाली नित नूतन बीमारियों का प्रकोप भी उस क्षेत्र में कम होता है। पर्यावरण प्रदूषण एवं बढ़ती गरमी के कारण इन दिनों ग्रीष्म ऋतु वाली अवधि में सर्वाधिक बीमारियों का प्रकोप देखा जाता है। गरमियों में अंधड़, तूफान, बवंडर आदि के कारण भी एक स्थान में एकत्रित बीमारियों के कीटाणु-विषाणु, दुर्गंध आदि धूलकणों के साथ दूसरे स्थानों में फैल जाते हैं, जिनसे कभी-कभी महामारियाँ फैल जाने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। गरमी के कारण वातावरण में प्राणवायु या ऑक्सीजन की कमी तो रहती ही है, इन दिनों ऋतु-प्रभाव के कारण हमारे शरीर में जीवनीशक्ति या रोग प्रतिरोधी क्षमता भी स्वाभाविक रूप से घट जाती है।

ऐसी स्थिति में खान-पान एवं रहन-सहन में जरा-सी असावधानी बरतने पर कई तरह की बीमारियाँ धर दबोचती हैं। गरमी के मौसम में होने वाले उपद्रवों में प्रमुख हैं-लू लगना, अतिसार, हैजा, प्रवाहिका, वमन, विषम ज्वर, डिहाइड्रेशन या निर्जलीकरण, स्नायुतंत्र की कमजोरी, कंजक्टीवाइटिस

या नेत्रशोथ, खसरा, सनबर्न, घमौरियाँ, त्वचा रोग आदि। इस ऋतु में पित्तदोष बढ़ा हुआ होता है, अतः पित्तरोगों, यथा दाह, उष्णता, स्वेद, क्लेद, आलस्य, मूर्च्छा, तृष्णा-प्यास, अपच, मंदाग्नि आदि की प्रधानता होती है। सूर्यताप की प्रचंडता के कारण कफ क्षीण होता है और वायु की वृद्धि होती है। अतः इस ऋतु में स्वास्थ्य संरक्षण हेतु पित्तशामक एवं वायुनाशक औषधियों से बनी हुई हवन सामग्री से हवन किया जाता है। ग्रीष्म ऋतु में की जाने वाली हवन चिकित्सा से उपर्युक्त उपद्रवों से सहज ही बचा जा सकता है।

ग्रीष्म ऋतु की विशिष्ट हवन सामग्री

इसमें निम्नलिखित चीजें मिलाई जाती हैं-

1. नागरमोथा	-100 ग्राम	2. बच	-100 ग्राम
3. लाल चंदन	-100 ग्राम	4. बायविडंग	-100 ग्राम
5. तगर	-100 ग्राम	6. गिलोय	-100 ग्राम
7. भोजपत्र	-100 ग्राम	8. दालचीनी	-100 ग्राम
9. कुश की जड़	-100 ग्राम	10. खस	-100 ग्राम
11. दगड़फूल-छरीला	-100 ग्राम	12. शतावर	-100 ग्राम
13. मंजीष्ठ	-100 ग्राम	14. सुगंधबाला	-100 ग्राम
15. जटामांसी	-100 ग्राम	16. नेत्रबाला	-100 ग्राम
17. तालीसपत्र	-100 ग्राम	18. पद्माख	- 100 ग्राम
19. दारुहलदी	-100 ग्राम	20. बड़ी इलायची(एला)	-100 ग्राम
21. उन्नाव	-100 ग्राम	22. आँवला	-100 ग्राम
23. निर्मली फल	-100 ग्राम	24. लौंग	-100 ग्राम
25. धूप	-100 ग्राम	26. कपूर	-100 ग्राम
27. गुग्गुल	-100 ग्राम	28. तुलसी	-100 ग्राम
29. शाल	-100 ग्राम	30. देवदार	-100 ग्राम
31. गंधबिरोजा	-100 ग्राम	32. लाख	-100 ग्राम
33. अंबर	-50 ग्राम	34. कपूरकचरी	-150 ग्राम
35. शिलारस	-150 ग्राम	36. सफेद चंदन	-200 ग्राम
37. चिरौंजी	-250 ग्राम	38. गुलाब पुष्प	-300 ग्राम

39. तीमरू (तुंबरू या नेपाली धनिया)-250 ग्राम

40. सुपारी -250 ग्राम 41. केशर -10 ग्राम
42. खाँडसारी गुड़ -750 ग्राम 43. गोघृत -500 ग्राम।

उपर्युक्त चीजों में क्रमांक १ से क्रमांक ४१ तक की सभी चीजें एकत्र कर सुखा लेते हैं और उन्हें कूट-पीसकर जौकुट पाउडर बना लेते हैं। तदुपरांत इसी पाउडर में खाँडसारी गुड़ या शक्कर तथा घी मिलाकर उसे एक डिब्बे में सुरक्षित रखकर "ग्रीष्म ऋतु की विशिष्ट हवन सामग्री-नम्बर-२" का लेबल चिपका देते हैं। हवन करते समय पहले से तैयार "कॉमन हवन सामग्री-नम्बर-१" की बराबर मात्रा मिलाकर तब हवन करते हैं।

समिधा

ग्रीष्म ऋतु की समिधा के लिए पीपल की सूखी लकड़ी को सर्वोत्तम माना गया है। इसके अभाव में शमी, आम, पाकर आदि की समिधाएँ प्रयुक्त की जा सकती हैं।

यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जिन क्षेत्रों में जिस तरह की ग्रीष्म ऋतुजन्य बीमारियों का प्रकोप हो, वहाँ तत्संबंधी बीमारियों की विशिष्ट हवन सामग्री मिलाकर हवन किया जा सकता है। यह योग अत्यंत लाभकारी सिद्ध होता है।

४. वर्षा ऋतु में हवन चिकित्सा

ग्रीष्म ऋतु के पश्चात् वर्षा ऋतु आती है। बरसात में जब तपती धरती पर जल की बूँदें पड़ती हैं, तो जमीन से गरम वाष्प निकलती है। यह वाष्प वातादि दोषों को प्रकुपित करती है। गरमी के प्रभाव से शरीर पहले से ही कमजोर रहता है, जठराग्नि मंद रहती है। वर्षा ऋतु आते ही वह और भी अधिक कमजोर पड़ जाती है और कुपित होकर वातव्याधि उत्पन्न करती है। इस ऋतु में वर्षा जल के अम्ल विपाक के कारण पित्त का संचय तथा अग्निमांद्यता के कारण कफ का संचय होता है। वातादि दोषों के प्रकुपित होने और तज्जन्य अग्निमांद्यता से बचने तथा कीटाणुओं-विषाणुओं के आक्रमण से उत्पन्न होने वाली बीमारियों से बचने के लिए यज्ञोपचार प्रक्रिया का आश्रय लेना सबसे अधिक लाभकारी उपाय-उपचार सिद्ध होता है। त्रिदोष शमन एवं ऋतु-परिवर्तन के प्रभावों को दूर करके स्वास्थ्य-संरक्षण प्रदान करने की यह एक अनुपम पद्धति है।

वर्षा ऋतु का आरंभ आदानकाल के अंत में अर्थात आषाढ़ में एवं विसर्गकाल के आरंभ अर्थात श्रावण में होता है। आयुर्वेदशास्त्रों के अनुसार विसर्गकाल अर्थात वर्षा, शरद, एवं हेमंत ऋतुओं में सूर्य दक्षिण दिशा की ओर गमन करता है। उस समय भारत में मानसूनी हवा, मेघ-वर्षा आदि के कारण सूर्य ताप कम हो जाता है। वर्षाकाल में वायु की रूक्षता कम हो जाती है, चंद्रमा भी बली रहता है और अपनी सौम्य किरणें बिखेरकर पृथ्वी के ताप का शमन करता हुआ सृष्टि को पुष्टि प्रदान करता है। इसलिए उस समय को सौम्यकाल भी कहा जाता है। चरक संहिता-सूत्रस्थान ६/७ के अनुसार पृथ्वी पर द्रव्यों में उन दिनों अम्ल, लवण और मधुर, स्निग्ध रसों की पर्याप्त अभिवृद्धि होती है। उनके उपयोग से मानवीय काया में निरंतर बलवृद्धि होने लगती है। सुश्रुत संहिता-स.अ.-६ में भी कहा गया है-"वर्षा ऋतु में विसर्ग का आरंभ होने से तथा सूर्य के कर्क एवं सिंह राशि पर स्थित होने से पृथ्वीगत पदार्थों में अल्प स्नेह तथा अमृतरस की अभिवृद्धि होती है। इसके परिणामस्वरूप प्राणियों में अल्प स्नेह के बढ़ने से बल बढ़ता है।" बलवृद्धि का यह क्रम शरद एवं हेमंत ऋतु में क्रमशः अपनी पूर्णता की ओर जा पहुँचता है।

सुश्रुत संहिता, सू. अ.- ६/१० में वातादि दोषों के संचय-प्रकोप एवं प्रशमन को ध्यान में रखते हुए वर्षा ऋतु को दो भागों में विभक्त किया गया है-१. प्रावृट् ऋतु और २. वर्षा ऋतु। वर्षा के आरंभिक काल अर्थात आषाढ़ एवं श्रावण मास को प्रावृट् ऋतु और भाद्रपद तथा आश्विन मासों को वर्षा ऋतु कहा गया है। ऋतुओं का यह अंतर भारत की भौगोलिक स्थिति तथा प्रकृति के आधार पर निर्धारित किया गया है।

वस्तुतः प्रकृति में दो ऋतुएँ ऐसी हैं, जो प्राणि समुदाय को सर्वाधिक प्रभावित करती हैं। ये हैं-वसंत ऋतु और वर्षा ऋतु। इन दोनों ही ऋतुओं का हमारे शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य, मनःस्थिति एवं स्वभाव पर सीधा असर पड़ता है। वसंत के मौसम में जहाँ मन में एक अद्‌भुत उमंग व मस्ती छाई रहती है, वहीं वर्षा ऋतु भी कम मनमोहक नहीं होती। चहुँओर मेंढकों, कीट-पतंगों, भ्रमरों की संगीतमय ध्वनि लहरियों से सारा वातावरण गुंजायमान होता है। नभमंडल में छाई घनघोर घटाओं के नयनाभिराम दृश्य को देखकर

हर किसी का मन मयूर मारे खुशी के झूम उठता है। धरती पर सर्वत्र हरियाली को देखकर मन प्रफुल्लित हो उठता है। तभी तो मानसकार ने कहा है-

बरषा काल मेघ नभ छाये । गरजत लागत परम सुहाये ॥
दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई । वेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ॥

वस्ततुः उपर्युक्त वर्णन प्रकृति की उस साम्यावस्था का है, जब ऋतुएँ विकार रहित होती थीं। वातावरण में प्रदूषण या विषाक्तता नहीं होती थी। तब जल और वनौषधियों में भी कोई विकार नहीं होता था, पर आज तो प्रकृति में सर्वत्र विषाक्तता भरी हुई है। ऋतुएँ अपने स्वाभाविक गुणों के विपरीत अतियोग या विषमयोग प्रदर्शित करने लगी हैं। जैसे वर्षा ऋतु में कहीं अतिवृष्टि, तो कहीं अनावृष्टि या अनियमित वर्षा होने लगी है। कभी-कभी वर्षा ऋतु में शरद ऋतु के लक्षण प्रकट होने लगते हैं, जो ऋतु विषमता को प्रकट करते हैं। वर्षा ऋतु की इन अनियमितताओं का मनुष्य के स्वास्थ्य पर सीधा असर पड़ता है और शरीरस्थ वात-पित्त आदि दोष प्रकुपित होकर अनेक व्याधियों को जन्म देते हैं। इसी तरह वर्षा ऋतु में अस्थिरता भी अधिक रहती है। कभी बादल तो कभी तेज धूप, कभी बारिश तो कभी ऊमस, कभी तुषार-मिश्रित शीतलवायु के झोंके चलते हैं। इससे ग्रीष्मकाल में संचित वायु तो प्रकुपित होती ही है, उसके साथ कफ और पित्त भी दूषित होते हैं। असावधानी एवं असंयम बरतने पर एवं बढ़े हुए दोषों का शमन न करने से वर्षा ऋतु में संचित पित्तादि दोष शरद ऋतु में प्रकुपित होकर अनेक कष्टकारी बीमारियाँ उत्पन्न करते हैं।

श्रावण-भादों के महीनों में देश के प्रायः अधिकांश भागों में वर्षा होती है। इससे पहले ग्रीष्म ऋतु के कारण उत्पन्न प्रचंड गरमी, तपती धरती एवं धूलकणों से आच्छादित नभमंडल से जनजीवन त्रस्त रहता है। वर्षा की बौछारों के साथ गरमी से राहत तो मिलती है, किंतु पानी की बूँदों के साथ धूलकणों व प्रदूषित तत्त्वों का मिश्रण भी घुलकर धरातल पर आ जाता है। जहाँ-तहाँ नदी-नालों एवं गड्ढों आदि में भरा हुआ पानी भी सड़ने लगता है। बाढ़ आदि के कारण गंदगी व कीटाणुओं-विषाणुओं के समूह बढ़ जाते हैं। वर्षा ऋतु में प्रायः जो बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार

हैं-डायरिया, कॉलरा (हैजा), ऑव-पेचिश (डीसेंट्री), कोलाइटिस-आंत्रशोथ, उदरशूल, वायरल हेपेटाइटिस या पीलिया, मलेरिया, टायफाइड, एन्फ्लुएंजा, फाइलेरिया, श्वास-कास, खाँसी-जुकाम, त्वचा रोग, फोड़ा-फुंसी, बालतोड़, कंजक्टिवाइटिस-नेत्ररोग, कीट दंश आदि। इनके अतिरिक्त त्रिदोषजन्य गड़बड़ियों के कारण भी कई तरह की स्वास्थ्य समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं, जिनका निराकरण करना आवश्यक होता है।

संक्षेप में वर्षा ऋतु में ग्रीष्म के प्रभाव के कारण जठराग्नि पहले से मंद होती है, जो इस ऋतु में और कमजोर पड़ जाती है और कफ को दूषित करती है। मानसून की ठंडी शीतल वायु से वात तथा पृथ्वी की गरम वाष्प एवं पानी के अम्लविपाक से पित्त संचित एवं दूषित होता है। इसलिए इस ऋतु में प्रयुक्त की जाने वाली हवन सामग्री में ऐसी औषधियाँ सम्मिलित की जाती हैं, जो सबके अनुकूल होती हैं। अग्नि को प्रदीप्त करने वाली तथा कफनाशक होती हैं। वात प्रकोप एवं पित्त संचय को दूर करने वाली होती हैं। इसके साथ ही वर्षाजन्य रोगाणुओं-विषाणुओं के आक्रमण तथा उनसे उत्पन्न होने वाली व्याधियों का शमन करने और जीवनी शक्ति का अभिवर्धन करने में सक्षम होती हैं। ऐसी औषधियों से निर्मित हवन सामग्री से निर्धूम अग्नि में मंत्रोच्चारपूर्वक हवन करने से उत्पन्न यज्ञीय ऊर्जा समस्त बरसाती रोगों से मनुष्य की रक्षा करती है।

वर्षा ऋतु की विशिष्ट हवन सामग्री

इसमें निम्नलिखित चीजें मिलाई जाती हैं-

1. छोटी इलायची	-50 ग्राम	2. शंखपुष्पी	-50 ग्राम
3. आम की सूखी पत्ती	-100 ग्राम	4. काला अगर	-100 ग्राम
5. तगर	-100 ग्राम	6. इंद्रजौ	-100 ग्राम
7. कचूर	-100 ग्राम	8. काकमाची (मकोय)	-100 ग्राम
9. कुटज	-100 ग्राम	10. कुश	-100 ग्राम
11. कूठ	-100 ग्राम	12. गिलोय	-100 ग्राम
13. गोरखमुंडी	-100 ग्राम	14. गंधतृण	-100 ग्राम
15. चिरायता	-100 ग्राम	16. चीड़	-100 ग्राम

17. जायफल	–100 ग्राम	18. तेजपत्र	–100 ग्राम
19. धूप	–100 ग्राम	20. नागकेसर	–100 ग्राम
21. निर्मली बीज	–100 ग्राम	22. बायविडंग	–100 ग्राम
23. ब्राह्मी	–100 ग्राम	24. बिल्वमज्जा या बेलपत्र	-100 ग्राम
25. विष्णुकांता	–100 ग्राम	26. मोचरस	–100 ग्राम
27. पीली सरसों	–100 ग्राम	28. तुलसी के बीज	–150 ग्राम
29. मखाने	–150 ग्राम	30. कपूर	–250 ग्राम
31. गुग्गुल	–250 ग्राम	32. श्वेत चंदन-चूरा	–250 ग्राम
33. छुआरा	–250 ग्राम	34. जटामांसी	– 250 ग्राम
35. देवदार	–250 ग्राम	36. नारियल गिरी	–250 ग्राम
37. नीम के सूखे पत्ते	–250 ग्राम	38. बच	–250 ग्राम
39. राल	–250 ग्राम	40. गोघृत	–500 ग्राम

41. खाँडसारी गुड़ या शक्कर-750 ग्राम।

गोघृत एवं खाँडसारी गुड़ या शक्कर को छोड़कर उपर्युक्त सभी वनौषधियों को सुखाकर उन्हें कूट-पीसकर जौकुट पाउडर बना लेते हैं। तदुपरांत सभी को एक साथ मिलाकर, उसी में घी व शक्कर मिलाकर एक डिब्बे में रख लेते हैं और उस पर 'वर्षा ऋतु की विशिष्ट हवन सामग्री-क्रमांक (२)' का लेबल लगा देते हैं। हवन करने से पूर्व पहले से तैयार 'कॉमन हवन सामग्री-क्रमांक (१)' को समभाग में मिला लेते हैं। हवन सूर्य गायत्री मंत्र से करते हैं।

समिधा-वर्षा ऋतु में हवन के लिए ढाक एवं बिल्व की समिधा सर्वोत्तम मानी गई है। इसके अभाव में आम की सूखी लकड़ी प्रयुक्त की जा सकती है।

(५) शरद ऋतु में हवन-चिकित्सा

वर्षा के बाद शरद ऋतु आती है। स्वास्थ्य संरक्षण एवं संवर्द्धन की दृष्टि से इस ऋतु का विशेष महत्त्व है। समुचित आहार-विहार अपनाकर इसका भरपूर लाभ लिया जा सकता है और नवीन जीवन ऊर्जा का संचय कर दीर्घायुष्य का आनंद उठाया जा सकता है। शरद ऋतु दो महीने की होती

है। सुश्रुत संहिता-सूत्रस्थान-६/२८ के अनुसार-**'कार्तिकमार्गशीर्षौ शरद्'** अर्थात कार्तिक और मार्गशीर्ष को शरद ऋतु कहते हैं। यह वस्तुतः १६ सितंबर से १५ नवंबर तक का समय होता है। यह विसर्गकाल का मध्य होता है, जिसमें मनुष्य क्रमशः मध्यम बल प्राप्त करता है। इन दिनों सूर्य पृथ्वी से दूर होने लगता है, जिसके कारण उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है और चंद्रबल बढ़ने लगता है तथा जगत का पोषण करता है। प्रकृति में अम्ल-लवण तथा मधुर-स्निग्ध रसों की वृद्धि होती है।

शरद ऋतु को अत्यंत सुहावनी ऋतु माना गया है। इस काल में दिन और रात्रि दोनों ही सुहावने होते हैं। प्रकृति भी हरियाली व लहलहाती फसलों से भरपूर मनोहारी दृश्य प्रस्तुत करती है। आकाश मंडल शांत व निर्मल हो जाता है। वातावरण में संव्याप्त प्रदूषण वर्षा की बूँदों के साथ धरती में मिल जाता है और वृक्ष-वनस्पतियों के पोषक तत्त्वों में परिवर्तित होकर हरीतिमा की नूतन सृष्टि करता है। शरद ऋतु की आहट पाते ही खंजन पक्षी सुदूर पर्वत श्रृंखलाओं को लाँघते हुए मैदानी भागों में आ जाते हैं। तालाब कमल पुष्पों से भर जाते हैं। तपस्वी जन अपनी चातुर्मास की तप-साधना पूर्ण कर जनजागरण हेतु चल पड़ते हैं। धर्मपरायण लोग शारदीय नवरात्र, दीपावली आदि पर्वों की तैयारी में जुट जाते हैं। जप-तप, हवन-यज्ञ, भजन-पूजन, रामलीला आदि के आयोजन जन-जीवन में नवीन प्राण ऊर्जा का संचार करते हैं। निर्मल आकाश से चंद्रमा अपनी शीतल किरणों के माध्यम से वृक्ष-वनस्पतियों सहित समूचे जीव-जगत को अपनी अमृतवर्षा से परिपुष्ट एवं परितृप्त करता है।

सुश्रुत संहिता-सूत्रस्थान ६/३५-३६ में शरद ऋतु का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इस ऋतु में सूर्य गहरे पिंगल वर्ण का होता है। आकाश निर्मल एवं सफेद रंग के बादलों से युक्त होता है। सरोवर कमलों से सुशोभित होते हैं। पृथ्वी के ऊँचे-नीचे तथा समतल स्थान कीचड़, सूखी और वल्मीक बनाने वाली चीटियों से भरे होते हैं। धरती पियाबाँसा, सप्तपर्णी, गुलदुपहरिया, काँस और विजयसार आदि वृक्ष-पादपों से शोभायमान होती है। अष्टांग संग्रह-सूत्रस्थान-४/५०- ५३ में भी शरदकाल का कुछ इसी तरह का वर्णन किया गया है-**'शरदि व्योम शुभ्राभ्रं किंचित् पङ्काङ्किता मही..।'** अर्थात शरद ऋतु

में आकाश सफेद बादलों से व्याप्त तथा पृथ्वी कुछ कीचड़ वाली होती है। खिले हुए काँस-कुश, गेंदा, कमल एवं शालिधान्य से पृथ्वी शोभित होती है। मेघाछन्न सूर्य बादलों को फाड़कर अपनी तीक्ष्ण किरणों को फेंकता हैं। दिशाएँ पिंगलवर्ण की, अत्यंत निर्मल, स्वच्छ एवं क्रौंच पक्षियों की झुंडमाला से व्याप्त होती है। तालाब के निर्मल जल में कमल एवं मत्स्य समूह आपस में टकराकर उसे तरंगित कर रहे होते हैं।

महर्षि बाल्मीकि एवं महाकवि तुलसीदास ने अपनी-अपनी कृतियों में शरद ऋतु का बहुत ही मनोहारी एवं सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। बाल्मीकीय रामायण में महर्षि बाल्मीकि कहते हैं-

जलं प्रसन्नं कुसुमप्रहासं क्रौंचस्वनं शालिवनं विपक्वम् ।
मृदुश्च वायुः विमलश्च चंद्रः शंसंति वर्ष व्यपनीतकालम् ॥

अर्थात स्वच्छ जल, फूलों का खिलना, क्रौंच पक्षी का स्वर, पके हुए धान के खेत, शीतल मंद पवन तथा निर्मल चाँदनी बता रही है कि वर्षा ऋतु समाप्त हो गई है। संसार को सुवृष्टि से परितुष्ट करके नदी और तालाबों को भरकर तथा पृथ्वी को अन्न से भरकर बादल आकाश को छोड़कर चले गए हैं। नदियों एवं झरनों का जल प्रवाह मंद पड़ गया है। कमल से शीतल होकर पवन चल रहा है तथा दिशाएँ अंधकार से रहित होकर प्रकाशित हो रही हैं। तालाब कमल-पुष्पों एवं हंसों की क्रीड़ा-कल्लोल से सुशोभित हैं। चक्रवाकों से युक्त तथा सिवार से भरे हुए, रेशमी वस्त्रों से प्रतीत होने वाले काँसों के पुष्पों से ढँके हुए नदियों के तट नव वधुओं के मुख की तरह सुशोभित हो रहे हैं।

गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस के किष्किंधा कांड में शरद ऋतु का मनोरम दृश्य प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं-

बरषा बिगत सरद रितु आई । लक्षिमन देखहु परम सुहाई ॥
फूले कास सकल महि छाई । जनु बरषा रितु प्रगट बुढ़ाई ॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा । संतहृदय जस गत मद मोहा ॥
जानि सरद रितु खंजन आए । पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए॥

उपरोक्त ऋतु लक्षणों से स्पष्ट है कि जब तक ऋतुचक्र अपने सामान्य क्रम में गतिशील रहता है, तब तक मनुष्य आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक आधि-व्याधियों से बचा रहता है। आहार-विहार में संयम बरतने पर ऋतुओं के अनुसार वात-पित्त आदि दोषों का संचय व शमन प्राकृतिक रूप से स्वयमेव होता रहता है, किंतु जब ऋतुएँ अपने स्वाभाविक गुणों से अधिक मात्रा में बढ़ने लगती हैं अथवा विपरीत होने लगती हैं, तो उनके गुणों में उत्पन्न विषमता से मनुष्य के शरीर में स्थित वातादि दोष प्रकुपित होने लगते हैं। पर्यावरण प्रदूषण एवं प्रकृति के साथ छेड़-छाड़ के कारण इन दिनों प्रायः यही स्थिति निर्मित होती हुई देखी जाती है। इसका सीधा असर हमारे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है, जिसके सहज व सरल समाधान यज्ञोपचार प्रक्रिया में सन्निहित है।

यों तो शरदकाल को स्वास्थ्य-संवर्द्धन के लिए सबसे उपयुक्त समय माना गया है, किंतु यह तभी संभव है जब हमें ऋतुचर्या की जानकारी हो और तदनुरूप आहार-विहार का संयमन किया जाए। इसके अभाव में वर्षा एवं शीत के कारण संकुचित शरीर में वर्षा ऋतु में संचित पित्त तीव्र सूर्य किरणों से सहसा विकृत हो जाता है। च. सं. सू. अ. ६/४० में कहा गया है-

वर्षाशीतोचिताङ्गानां सहसैवार्करश्मिभिः।
तप्तानामाचितं पित्तं प्रायः शरदि कुप्यति॥

तात्पर्य यह कि वर्षाकाल में प्रायः ठंडक रहती है और हमारी काया इसकी अभ्यस्त बन जाती है। वर्षाकाल व्यतीत होते ही शरद ऋतु में आकाश निर्मल हो जाता है और धूप अत्यंत तेज हो जाती है। यह धूप वर्षाकाल में शरीर में संचित पित्त को उभारकर अनेक प्रकार की पित्तज व्याधियों को जन्म देती है। इस ऋतु को पित्त बढ़ाने वाला व मध्यम बलवर्द्धक माना गया है। इसलिए आयुर्वेद शास्त्रों में मिथ्या आहार-विहार आदि से उत्पन्न व संचित दोषों का संशोधन उनकी चयावस्था में करने का निर्देश देते हुए सु. सं. सू. अ. ६/३७ में कहा गया है-

'तत्र वर्षाहेमंतग्रीष्मेषु संचितानां दोषाणां
शरद्वसंतप्रावृट्सुच प्रकुपितानां निर्हरणं कर्तव्यम् ।'

अर्थात वर्षा, हेमंत और ग्रीष्म ऋतु में संचित हुए दोषों का तथा शरद, वसंत एवं प्रावृट् वर्षा ऋतु में प्रकुपित हुए दोषों का निर्हरण-निष्कासन शास्त्रोक्त उपाय से करना चाहिए। इन उपायों का उल्लेख करते हुए-सु. सं., सू. अ. ६/६२ में ही कहा गया है-

हरेद्वसंते श्लेष्माणं पित्त शरदि निर्हरेत्।
वर्षासु शमयेद्वायुं प्राग्विकारसमुच्छ्रयात् ॥

अर्थात वातादि दोषों द्वारा रोग उत्पन्न होने से पहले वसंत ऋतु में वमन आदि विधि से कफ का निष्कासन, शरद ऋतु में विरेचन द्वारा पित्त का निष्कासन और वर्षा ऋतु में स्नेहपान, वस्ति आदि उपाय-उपक्रमों से वात का शंसमन कर लेना चाहिए। शरद ऋतु में विरेचन द्वारा पित्त निष्कासन को सबसे उत्तम औषधि माना गया है-**'विरेचनं हि पित्तस्य जयाय परमौषधम्।'** इस ऋतु में आयुर्वेद विशेषज्ञ तिक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत, शीतल एवं सुपाच्य खान-पान, कषाय, मधुर-तिक्त रसों के सेवन को प्रमुखता देते हैं।

प्राय: ऋतु परिर्वतन के समय प्रकृति में विभिन्न प्रकार के रोगकारक जीवाणु-विषाणु उत्पन्न होते हैं और वातावरण में विद्यमान प्रदूषण के कारण तीव्रगति से अपनी वंशवृद्धि करके असंख्य व्यक्तियों को रोगग्रस्त बना देते हैं। शरद ऋतु में पित्त के प्रकुपित होने से पित्तज व्याधियों एवं वातावरण में विद्यमान नमी तथा बंगाल की खाड़ी से उठने वाली नमीयुक्त वायु के तीव्र प्रवाह से आर्थ्राइटिस जैसी वातव्याधियों की अभिवृद्धि होती है। इस काल में दिन में तेज धूप तथा रात में चाँदनी की शीतलता भी हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। पित्तवृद्धि के कारण प्राय: पाचनप्रणाली मंद रहती है। खान-पान में अनियमितता बरतने पर अम्लपित्त, रक्त पित्त, पेचिश, पीलिया, आमाशयिक आंत्रदाह, रक्तविकार जैसी कितनी ही कष्टदायी बीमारियाँ घेर लेती हैं। इसके अतिरिक्त इस ऋतु में सरदी-जुकाम, मलेरिया, जूड़ी बुखार, एन्फ्लुएंजा, सिरदरद आदि का प्रकोप अधिक रहता है। क्योंकि वायुमंडल में इन दिनों ऐसे ही तत्त्वों की भरमार होती है, अत: इस काल में मधुर, तिक्त रसयुक्त, शीतवीर्य तथा लघुगुणयुक्त पित्तघ्न एवं जीवाणु-विषाणुओं को नष्ट करने वाली औषधियों को मिलाकर हवनीय सामग्री बनाई जाती है। इस प्रकर की सामग्री से हवन करने पर उपरोक्त सभी प्रकार के उपद्रव शांत होते हैं

तथा हानिकारक तत्त्व नष्ट होते हैं और वायुमंडल में लाभदायक तत्त्वों की अभिवृद्धि होती है।

शरद ऋतु की विशिष्ट हवन सामग्री

इसमें निम्नलिखित चीजें मिलाई जाती हैं-

1. सहदेवी	-50 ग्राम	2. अश्वगंधा	-100 ग्राम
3. इंद्रजौ	-100 ग्राम	4. बड़ी इलायची	-100 ग्राम
5. खस	-100 ग्राम	6. गिलोय	-100 ग्राम
7. चिरायता	-100 ग्राम	8. पीला चंदन	-100 ग्राम
9. लाल चंदन	-100 ग्राम	10. जायफल	-100 ग्राम
11. तालमखाना	-100 ग्राम	12. दालचीनी	-100 ग्राम
13. धान की खील(लावा)	-100ग्राम	14. नागकेसर	-100 ग्राम
15. नागरमोथा	-100 ग्राम	16. परबल के पत्ते	-100 ग्राम
17. पत्रज	-100 ग्राम	18. पित्तपापड़ा	-100 ग्राम
19. काला तिल	-100 ग्राम	20. आम की पत्ती	-100 ग्राम
21. श्वेत दूर्वा	-100 ग्राम	22. नीम की पत्ती	-100 ग्राम
23. ब्राह्मी	-100 ग्राम	24. बिदारीकंद	-100 ग्राम
25. भारंगी	-100 ग्राम	26. दाख-मुनक्का	-100 ग्राम
27. मोचरस	-100 ग्राम	28. शीतलचीनी	- 100 ग्राम
29. अपराजिता	-100 ग्राम	30. अगर	-150 ग्राम
31. कचूर	-150 ग्राम	32. कपूरकचरी	-250 ग्राम
33. कपूर	-250 ग्राम	34. गुग्गुल	-250 ग्राम
35. गूलर की छाल	-250 ग्राम	36. श्वेत चंदन	-250 ग्राम
37. चिरौंजी	-250 ग्राम	38. जटामांसी	-250 ग्राम
39. सेमल के फूल	-250 ग्राम	40. किसमिस	-300 ग्राम
41. केसर	-10 ग्राम	42. घृत	-500 ग्राम

43. खाँड-सारी गुड़ या शक्कर-750 ग्राम।

उपरोक्त हवन-सामग्री में से क्रमांक-१ से लेकर क्रमांक-४१ तक की चीजों को सर्वप्रथम साफ-स्वच्छ करके सुखा लेते हैं, तदुपरांत कूट-पीसकर

उनका जौकुट पाउडर बना लेते हैं। बाद में घी व शक्कर सहित इन्हें आपस में अच्छी तरह मिलाकर एक साफ-सुथरे डिब्बे में भरकर उस पर 'शरद ऋतु की विशिष्ट हवन सामग्री-क्रमांक-२' का लेबल चिपका देते हैं। 'कॉमन हवन सामग्री-क्रमांक-१' को पहले ही तैयार कर लेते हैं।

हवन करते समय ५० ग्राम कॉमन हवन सामग्री तथा ५० ग्राम शरद ऋतु की विशिष्ट हवन सामग्री को लेकर आपस में अच्छी तरह मिला लेते हैं, तत्पश्चात् सूर्य गायत्री मंत्र से हवन करते हैं।

समिधा-शरद ऋतु में हवनोपचार के लिए आम अथवा पाकर की सूखी समिधा प्रयुक्त की जाती है।

उपरोक्त औषधीय हवन सामग्री से किए गए मंत्रपूरित हवनोपचार से शरद ऋतु में होने वाली बीमारियों एवं उपद्रवों से न केवल यजनकर्ता की रक्षा होती है, वरन् वातावरण में चहुँओर विस्तारित यज्ञीय ऊर्जा से समूचा जीव जगत व वनस्पति जगत लाभान्वित होता है।

६. हेमंत ऋतु में हवन चिकित्सा

शरद ऋतु के तुरंत पश्चात् शीतकाल आता है। शीतकाल में दो ऋतुएँ होती हैं-हेमंत ऋतु और शिशिर ऋतु। शिशिर ऋतु आदानकाल अर्थात उत्तरायण के अंतर्गत सबसे पहले आती है, जबकि हेमंत ऋतु विसर्गकाल या दक्षिणायन की अंतिम ऋतु होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि शीतकाल हेमंत ऋतु से प्रारंभ होकर शिशिर ऋतु में समाप्त हो जाता है। हेमंत ऋतु को अँगरेजी में 'अर्ली विंटर सीजन' भी कहते हैं। हिंदी महीने की दृष्टि से यह मार्गशीर्ष एवं पौष माह में आता है अर्थात नवंबर मध्य से जनवरी मध्य तक यह ऋतु रहती है। स्वास्थ्य संवर्द्धन के लिए यह ऋतु सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। मागशीर्ष में पड़ने से इसकी विशिष्ठता और भी अधिक बढ़ जाती है, तभी तो गीताकार ने कहा है-**'मासानां मर्गशीर्षोऽहमृतूनां'** अर्थात सभी महीनों में मैं उत्तम मास मार्गशीर्ष हूँ। उन दिनों खेत-खलिहान नवीन धान्य से भरे होते है। जहाँ-तहाँ लोध्र, प्रियंगु, नागकेसर आदि के सुंदर फूल खिले रहते हैं। वातावरण में चिलचिलाती धूप एवं आत्यंतिक शीत दोनों का अभाव होता है, अर्थात यह वर्ष का सर्वाधिक सौम्यकाल होता है। इसलिए कवियों ने इसे

संवत्सर का अलंकार भी कहा है। बाल्मीकि रामायण में कहा गया है-

अयं स कालः सम्प्राप्तः प्रियो यस्ते प्रियंवद।
अलंकृत इवाभाति येन संवत्सरः शुभः॥

अर्थात हे प्रियंवद लक्ष्मण! अब यह शीतकाल आ गया है, जो तुम्हें अत्यंत प्रिय लगता है। इससे यह संवत्सर अलंकृत-सा प्रतीत होता है। इस ऋतु में अन्न-भंडार भरे होते हैं, गोदुग्ध आदि की वृद्धि होती है। विजय की आकांक्षा वाले राजागण विजय यात्रा पर निकल पड़ते हैं। इन दिनों हिमालय पर्वत की चोटियाँ बरफ से आच्छादित हो जाती हैं। मध्याह्न की पीली धूप अत्यंत सुहानी लगती है। बरफ और पाले के कारण ऊँचा चढ़ जाने पर भी सूर्य चंद्रमा की तरह शीतल दिखाई देता है।

आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रंथ सुश्रुत संहिता-सूत्रस्थान ६/२२-२३ में हेमंत ऋतु का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इस ऋतु में उत्तर दिशा की ठंडी वायु चलती है। सभी दिशाएँ धुएँ और धूलकणों से व्याप्त रहती हैं। सूर्य ओसकणों से ढका रहता है। नदी-तालाब आदि जलाशय भी ओस से आच्छादित रहते हैं। काक, गेंड़ा, महिष, हाथी आदि वन्य पशु-पक्षी अपने मद से मदोन्मत्त रहते हैं। लोध्र, प्रियंगु, पुन्नाग जैसी वनौषधियाँ सुंदर पुष्पों से लदी होती हैं। भाव प्रकश-४/३२३ में ऋतुओं के गुण-दोष बताते हुए कहा गया है-**'हेमंतः शीतलः स्निग्धः स्वादुर्जठरवह्निकृत्।'** अर्थात हेमंत ऋतु शीतल, स्निग्ध और अधिकांशतः प्रत्येक पदार्थों में स्वादुता उत्पन्न करने वाली है और जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाली है। इसलिए इस ऋतु को स्वास्थ्य-संवर्द्धक एवं बल-वीर्यवर्द्धक माना गया है। अष्टांग संग्रह-सूत्रस्थान-४/८ में स्पष्ट किया गया है कि विसर्गकाल और आदानकाल के मध्य में पड़ने वाले हेमंत और शिशिर ऋतु में मनुष्यों का बल श्रेष्ठ अर्थात बढ़ा हुआ होता है।

वस्तुतः शरदकाल के तुरंत पश्चात् शुरू होने वाली हेमंत ऋतु में ठंडक बढ़ जाती है, जो शिशिर ऋतु में अपने चरम सीमा पर जा पहुँचती है। इसमें बादल, वर्षा एवं तुषार के कारण सूर्य का प्रभाव कमजोर पड़ जाता है तथा दक्षिणायन होने से धरती पर सूर्यकिरणों की तीव्रता भी कम हो जाती है। इसलिए ठंडी हवा के स्पर्श से मानव शरीर की आंतरिक उष्णता बाहर

नहीं निकल पाती, वरन् अंदर की ओर लौट जाती है। परिणामस्वरूप व्यक्ति की जठराग्नि अत्यंत प्रबल होकर अधिक मात्रा में एवं गरिष्ठ पदार्थों को पचाने में समर्थ होती है।

आयुर्वेद शास्त्रों के अनुसार हेमंत ऋतु में पित्त का शमन होता है, कफ का संचय एवं वायु का प्रकोप होता है। इस ऋतु में शीतल, स्निग्ध और भारी पदार्थों से संचित हुआ कफ शिशिर ऋतु में सूर्यकिरणों की तीव्रता से चलायमान होकर जठराग्नि को कमजोर बना देता है। जिसके कारण अनेक श्लैष्मिक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं, किंतु आहार-विहार में व्यतिरेक या असंयम के कारण कफ, वातादि दोषों की वृद्धि एवं प्रकोप तत्काल होता है। इसके साथ ही आज के वातावरण में विद्यमान विषाक्तता एवं खाद्य पदार्थों में खतरनाक रसायनों की उपस्थिति शरीरस्थ धातुओं को असमय ही प्रकुपित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनके शमन में आहार-विहार के संयमन के साथ ही यज्ञोपचार प्रक्रिया का आश्रय लेना अत्यंत लाभकारी सिद्ध होता है।

हेमंत ऋतु में वातावरण में शीतलता अधिक रहती है, इसलिए इस ऋतु में वातव्याधि का सर्वाधिक प्रकोप रहता है। इसमें पक्षाघात, अर्दित, जोड़ों का दरद आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त सरदी-जुकाम या प्रतिश्याय, श्वास-कास, मंथकज्वर, वातश्लैष्मिक आदि रोगों की इस ऋतु में उभरने की संभावना अधिक रहती है। अतः हेमंत ऋतु की हवन सामग्री में तदनुरूप वातनाशक, पित्तशामक, कफनिस्सारक एवं पुष्टिकारक प्रभृति औषधियों को सम्मिलित किया जाता है।

हेमंत ऋतु की विशिष्ट हवन सामग्री

इसमें निम्नलिखित चीजें मिलाई जाती हैं-

1. असन या विजयसार -50 ग्राम
2. कायफल -50 ग्राम
3. तगर -50 ग्राम
4. कौंच बीज -50 ग्राम
5. रास्ना -50 ग्राम
6. अगर -100 ग्राम
7. कपूर -100 ग्राम
8. कूठ -100 ग्राम
9. गिलोय -100 ग्राम
10. गोक्षुरू -100 ग्राम

11.	घुड़बच	–100 ग्राम	12.	चंद्रसूर	–100 ग्राम
13.	लाल चंदन	–100 ग्राम	14.	जावित्री	–100 ग्राम
15.	तालीसपत्र	–100 ग्राम	16.	दालचीनी	–100 ग्राम
17.	नागकेसर	–100 ग्राम	18.	नकछिकनी	–100 ग्राम
19.	पटोलपत्र	–100 ग्राम	20.	पित्तपापड़ा	–100 ग्राम
21.	पुष्करमूल	– 100 ग्राम	22.	बादाम	–100 ग्राम
23.	भारंगी	–100 ग्राम	24.	मुलहठी	– 100 ग्राम
25.	मूसली–काली	–100 ग्राम	26.	बला	–100 ग्राम
27.	सौंफ	–100 ग्राम	28.	अखरोट की गिरी	–200 ग्राम
29.	कपूरकचरी	– 200 ग्राम	30.	मुनक्का	–200 ग्राम
31.	काला तिल	–250 ग्राम	32.	गुग्गुल	–250 ग्राम,
33.	नारियल गिरी	–250 ग्राम	34.	छुआरा	–250 ग्राम
35.	तुंबरू	– 250 ग्राम	36.	केसर	–10 ग्राम
37.	गोघृत	–500 ग्राम	38.	खाँडसारी गुड़ या शक्कर	–750 ग्राम।

उपर्युक्त वनौषधियों में से क्रमांक–१ से ३६ तक को उनकी निर्धारित मात्रा में लेकर साफ–स्वच्छ करके सुखा लेते हैं। इसके बाद उन्हें कूट–पीसकर जौकुट रूप में पाउडर बना लेते हैं। इसी पाउडर में खाँडसारी गुड़ तथा घृत अच्छी तरह मिलाकर उसे एक डिब्बे में भर लेते हैं और उस पर 'हेमंत ऋतु की विशिष्ट हवन सामग्री–नं.–२' का लेबल चिपका देते हैं। 'कॉमन हवन सामग्री–नं. १' पहले तैयार कर लेते हैं। हवन करते यमय १०० ग्राम कॉमन हवन सामग्री एवं १०० ग्राम उपरोक्त 'हेमंत ऋतु की विशिष्ट हवन स्रामग्री' लेकर दोनों को अच्छी तरह मिलाकर एकरस कर लेते हैं, तदुपरांत सूर्य गायत्री मंत्र से हवन करते हैं।

समिधा

हेमंत ऋतु के लिए खैर की समिधा सर्वोत्तम मानी गई है। इसके अभाव में आम, गूलर, पाकर या वट की समिधा प्रयुक्त की जा सकती है। इस हवनोपचार से हेमंत ऋतु में उत्पन्न होने वाली व्याधियाँ नष्ट होती हैं और आसपास के वातावरण में स्वास्थ्यवर्द्धक नवीन प्राण ऊर्जा का संचार होता है। यजनकर्त्ता के साथ ही इससे हर कोई लाभान्वित होता है।

यों तो यज्ञों के प्रभाव से जलवृष्टि, यज्ञीय प्रभाव से कालचक्र का प्रवाहित होना, यज्ञ के प्रभाव से सूर्य का देदीप्यमान होना, यज्ञों से संपूर्ण पदार्थों की उत्पत्ति एवं अभिवर्द्धन जैसी वैदिक संकल्पनाओं एवं गूढ़ रहस्यात्मक तथ्यों की यथार्थपरक खोज एक जटिल विषय है। इन्हें ऋषि स्तर की मेधा ही समझ सकती और उनका रहस्योद्घाटन कर सकती है। विलुप्तप्राय इस प्राचीन यज्ञ विद्या का रहस्योद्घाटन आज की सर्वोपरि आवश्यकता है। यज्ञ चिकित्सा विज्ञान तो इसकी एक छोटी सी शाखा मात्र है।

अध्याय-१४

यज्ञ चिकित्सा के संबंध में ध्यान रखने योगय कुछ विशेष बातें

★★★★★★★★★★

चिकित्सापद्धति कोई भी क्यों न अपनाई जाए, जब तक आहार-विहार एवं पथ्य-परहेज आदि का समुचित रूप से पालन नहीं किया जाता, सफलता संदिग्ध ही बनी रहेगी। रोग असंख्य हैं और तदनुरूप चिकित्सापद्धतियाँ भी अनेक हैं। एलोपैथी जैसी उपचारपद्धति में आहार-विहार के परिपालन पर प्रायः कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता, किंतु आयुर्वेद चिकित्सा-प्रणाली में ऐसा नहीं है। इस चिकित्सा-पद्धति में खान-पान, रहन-सहन, आचार-व्यवहार, पथ्य-परहेज, दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या जैसी कितनी ही व्यवस्थाओं का, नियमोपनियमों का पालन करना अनिवार्य होता है। रोगोन्मूलन में आधी सफलता तो इसी से मिल जाती है। शेष बीमारी का इलाज वनौषधियों, चूर्ण, वटी, क्वाथ-काढ़ा, आसव-अरिष्ट, यज्ञधूम्र या हवनोपचार आदि के माध्यम से हो जाता है। रोगग्रस्त होने पर उपचार करना आवश्यक है, किंतु यदि हम उन कारणों को पहले से ही ज्ञात करके उन्हें दूर कर दें, जिनसे रोग पनपते या उभरते हैं, तो कितनी ही घातक बीमारियों से हमारा बचाव हो सकता है। स्वास्थ्य संबंधी सामान्य नियमों की अवहेलना करने पर उपचार करते रहने पर भी स्वास्थ्य न सुधरने की शिकायत बनी ही रहेगी।

यज्ञोपचार प्रक्रिया के संबंध में भी यही बात लागू होती है। कितने ही लोगों को शिकायत रहती है कि यज्ञोपचार से आधी-अधूरी बीमारी ही ठीक हुई, जबकि यह तथ्य पूरी तरह भुला ही दिया जाता है कि उपचार के साथ-साथ खान-पान, रहन-सहन, पथ्य-परहेज का परिपालन भी इस प्रक्रिया के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है। ऋतु अनुकूल हवनोपचार को ही

लें, तो विभिन्न ऋतुओं में पनपने वाली बीमारियों में प्रयुक्त होने वाली हवन सामग्री में ऐसी वनौषधियों को सम्मिलित किया गया है, जो नियमानुसार ली जाने पर अक्षरश: अपना प्रभाव दिखाती हैं। सावधानी केवल इतनी बरतनी पड़ती है कि हमें यह जानकारी अवश्य होनी चाहिए कि अमुक ऋतु या मौसम में तथा तज्जन्य बीमारी में हमारा आहार-विहार व पथ्य-परहेज कैसा हो? यदि इन तथ्यों पर हम गंभीरतापूर्वक ध्यान दे सकें, तो हवनोपचार का पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

बताया जा चुका है कि अपने देश में छह ऋतुएँ होती हैं अर्थात प्रत्येक दो महीने की एक ऋतु होती है। इनके नाम हैं-१. माघ-फल्गुन में शिशिर ऋतु २. चैत्र-वैशाख में वसंत ऋतु ३. ज्येष्ठ-आषाढ़ में ग्रीष्म ऋतु ४. श्रावण-भाद्रपद में वर्षा ऋतु ५. आश्विन-कार्तिक में शरद ऋतु ६. मार्गशीर्ष-पौष में हेमंत ऋतु। इनमें से क्रमश: शिशिर, वसंत एवं ग्रीष्म ऋतुएँ दक्षिणायन या विसर्गकाल के अंतर्गत आती हैं। पूर्व पृष्ठों में वर्णित ऋतु-अनुकूल हवनोपचार प्रक्रिया के साथ यदि यहाँ पर बताए जा रहे ऋतुओं के साथ पालन करने योग्य नियमों को अपने दैनिक जीवन में समाविष्ट कर लिया जाए, तो स्वास्थ्य संरक्षण एवं संवर्द्धन में इनसे आशातीत सफलता मिलती है।

यों तो प्रकृति के अनुसार षड्ऋतुओं में रोगों की उत्पत्ति, दोषों का संचय, प्रकोप तथा शमन नैसर्गिक रूप से होता रहता है, यथा-१. शिशिर ऋतु में कफ का संचय होता है। २. वसंत ऋतु में कफ का प्रकोप होता है। ३. ग्रीष्म ऋतु में वात का संचय होता है और कफ का शमन होता है। ४. वर्षा ऋतु में पित्त का संचय होता है और वात का प्रकोप होता है। ५. शरद ऋतु में पित्त प्रकुपित होता है और वात का शमन होता है। ६. हेमंत ऋतु में पित्त का शमन होता है। वस्तुत: यह क्रम तभी तक प्रकृति के अनुसार चलता है, जब हम ऋतुओं के अनुकूल अपनी दिनचर्या एवं आहार-विहार आदि के नियमों का पालन करते हैं। इसमें व्यतिक्रम उत्पन्न होने पर शरीरस्थ वात-पित्तादि दोषों में विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और हमारा स्वास्थ्य लड़खड़ाने लगता है। ऋतुअनुकूल यज्ञोपचार इसे दूर करने में तभी शत-प्रतिशत लाभकारी सिद्ध होता है, जब हम ऋतुचर्या संबंधी नियमों का कड़ाई के साथ पालन करते हैं।

षड्ऋतुओं की प्रकृति और प्रभाव-भिन्नता के आधार पर किए जाने वाले यज्ञोपचार एवं उसकी विशिष्ट हवन-सामग्री का अनुसंधानात्मक वर्णन पहले किया जा चुका है। यहाँ पर केवल यह बताया जा रहा है कि ऋतु-अनुकूल हवन के साथ-साथ हमें अपना आहार-विहार किस तरह से व्यवस्थित रखना चाहिए। आयुर्वेद विशेषज्ञों का कहना है कि जो व्यक्ति यह जानता है कि किस ऋतु में क्या खाना-पीना चाहिए और कैसा रहन-सहन अपनाना चाहिए, वह मात्रापूर्वक आहार ग्रहण करते हुए एवं हवनोपचार करते हुए पूरी तरह स्वस्थ रह सकता है। यज्ञ चिकित्सा के साथ किस ऋतु में आहार-विहार संबंधी कौन सी सावधानी बरतनी चाहिए, इसका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

१. शिशिर ऋतु

शिशिर ऋतु उत्तरायणकाल की पहली ऋतु है, जो माघ-फाल्गुन या जनवरी, फरवरी, मार्च में आती है। आदानकाल होने से शिशिर ऋतु में रूक्षता बढ़ जाती है। आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रंथ अष्टांगसंग्रह-सूत्रस्थान-अध्याय ४, में कहा गया है-**'शिशिरे शीतमधिकं मेघमारुतवर्षजम्...॥'**

अर्थात शिशिरकाल में मेघ, वायु और वर्षा के कारण विशेष शीत पड़ने लगती है। इससे शरीर में रूखापन आ जाता है। आहार-विहार में व्यतिरेक के कारण इस मौसम में सरदी के रोग अधिक होते हैं, जो तीक्ष्ण शीतल वायु के प्रभाव से शीघ्रता से फैलते हैं। इन दिनों उत्पन्न होने वाली बीमारियों में सरदी-जुकाम, न्यूमोनिया, खाँसी, अस्थमा, बुखार आदि कफप्रधान रोग प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त खारिश, खुजली, एवं अन्य वातज व्याधियाँ भी उत्पन्न होती हैं। इन व्याधियों से बचने के लिए चरक संहिता-सूत्र स्थान-अ. ६/२१ में कहा गया है कि शिशिर ऋतु में कटु, तिक्त, कषाय रस तथा वातवर्द्धक, हलके एवं शीतल अन्नपान का सेवन नहीं करना चाहिए अर्थात इस ऋतु में ऐसे पदार्थ नहीं खाने चाहिए जो वायु एवं कफ विकार को बढ़ाते हैं। इन दिनों शीतल पदार्थ, यथा-शरबत, कोल्ड ड्रिंक्स, चंदन, खस, केवड़ा, ठंडा पानी, बासी भोजन एवं ठंडा तथा अल्प ठंडे पानी से स्नान, उषापन, दिन में सोना तथा वातवर्द्धक पदार्थों के सेवन आदि से बचना चाहिए।

शिशिर ऋतु में जठराग्नि तेज होती है, भूख भी अच्छी लगती है। खाया-पिया सब कुछ हजम हो जाता है। अतः इन दिनों मधुर, स्निग्ध, दूध, दही, मलाई, छेना आदि वसायुक्त पदार्थ, अम्ल रस, लवण रस, शहद एवं पौष्टिक पदार्थों, यथा-पिष्ठान्न से बने पकवान, उड़द के बड़े, गन्ने का रस, दूध से बनी मिठाइयाँ आदि का सेवन करना चाहिए। नवीन अन्न, पौष्टिक एवं बलवर्द्धक आहार, कुनकुना जल सेवन करने से जीवनीशक्ति का विकास होता है। रोग प्रतिरोधी क्षमता बढ़ने से रोगों के सीधे आक्रमण से रक्षा होती है। भरपूर परिश्रम, योगासन, व्यायाम करने तथा तैल मालिश करके गरम पानी से स्नान करने पर शरीर में नूतन रक्त का संचार होता है। इन दिनों ठंड से बचने के लिए गरम ऊनी वस्त्र पहनना और गरम स्थान में निवास करना चाहिए।

आज के आपाधापी तथा तनाव भरे जीवन एवं वातावरण में संव्याप्त प्रदूषण के कारण उत्पन्न होने वाली तमाम शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों और जटिलताओं से बचने का एकमात्र साधन अपने आहार-विहार एवं आचार-व्यवहार में नियमितता तथा संतुलन का परिपालन है। उपर्युक्त नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करते हुए हवनोपचार करते रहने पर शिशिर ऋतुजन्य विकृतियों से आसानी से बचा जा सकता है और समग्र स्वास्थ्य संवर्द्धन का लक्ष्य पाया जा सकता है।

२. वसंत ऋतु

शिशिर ऋतु के पश्चात् वसंत ऋतु आती है। उत्तरायण काल की यह दूसरी ऋतु है, जिसका आरंभ फाल्गुन मास अर्थात फरवरी में ही हो जाता है और चरमोत्कर्ष वैशाख अर्थात मार्च-अप्रैल में दृष्टिगोचर होता है। वसंत ऋतु में सूर्य की गरमी बढ़ने से शिशिर ऋतु में संचित हुआ कफ पिघलने लगता है, जिससे जठराग्नि मंद पड़ जाती है, फलतः सरदी-जुकाम आदि रोग पनपने लगते हैं।

अष्टांगसंग्रह-सूत्रस्थान-अध्याय-४/२३ में कहा गया है-

शिशिरे सञ्चितः श्लेष्मा दिनकृद्भाभिरीरितः ।
तदा प्रबाधमानोऽग्निं रोगान् प्रकुरुते बहून् ॥

शिशिर ऋतु में संचित कफ सूर्य की किरणों के प्रभाव से पिघलकर अग्नि को नष्ट करता है और बहुत से कफज रोगों को जन्म देता है। इसलिए इस ऋतु में यज्ञोपचार के साथ-साथ परहेज पर विशेष रूप से ध्यान देने के लिए कहा गया है।

वसंत ऋतु में ऐसा आहार-विहार अपनाना चाहिए, जिससे कफ का प्रकोप शांत हो, साथ ही शारीरिक-मानसिक बल की वृद्धि हो। प्रातः-सायं टहलना, परिश्रम करना, व्यायाम करना, योगासन, प्राणायाम करना, वन-उपवन या मनोहारी उद्यानों में भ्रमण करना, दक्षिण दिशा की शीतल मंद वायु का सेवन, तैल मालिश के पश्चात् कुनकुने जल से स्नान करना आदि स्वास्थ्य संवर्द्धक उपाय अपनाए जाने चाहिए। इस मौसम में कफजनित विकारों का प्रकोप अधिक रहता है। अतः इसे दूर करने वाली रूक्ष, कटु, तिक्त रस प्रधान औषधियों, जैसे-कपूर, हरड़, शहद, त्रिकटु, त्रिफला, अदरक, पान आदि का सेवन करना अत्यंत लाभकारी होता है। ऋतु विशेष के साथ रोगानुसार बताई गई वनौषधियों को हवन सामग्री में मिलाकर हवन करना चाहिए। पाचनशक्ति कमजोर न पड़ने पाए, इसके लिए पुराने गेहूँ, जौ, साठी चावल, शालि चावल, मूँग, अरहर, नीवार, कोदौं आदि पदार्थों से बने सुपाच्य एवं हलके आहार ग्रहण करने चाहिए।

जो पदार्थ तीक्ष्ण, रूखे, गरम और हलके हों, उनका सेवन करना वसंत ऋतु में बहुत ही लाभदायक रहता है। इस ऋतु में परवल, नीम, बैंगन, अदरक, मूली, पोई, पेठा, पका खीरा, कचनार, अमरूद, गूलर, गाजर, करेला, बथुआ, चौलाई, पालक, सरसों जैसी हरी सब्जियों का सेवन करना चाहिए। इन दिनों गिलोय, हरड़, बहेड़ा, कालीमिर्च, हींग, लहसुन, जीरा, अजवायन, अश्वगंधा, पिप्पलामूल, वासा आदि का सेवन करना हितकारी व पथ्य के समान है। वसंत ऋतु में पीने के पानी में नागरमोथा या सोंठ डालकर उबाल लेना चाहिए और ठंडा होने पर छानकर प्रयुक्त करना चाहिए। इससे मौसमजन्य विकृतियों से आसानी से बचा जा सकता है।

वसंत ऋतु शीतकाल एवं ग्रीष्मकाल के मध्य में आती है, अतः इसमें दो ऋतुओं का मिश्रित प्रभाव रहता है। यह चंचल प्रकृति की होती है, जिसमें कभी अधिक सरदी, तो कभी गरमी, दिन गरम तो रातें ठंडी होती हैं।

सावधानी न बरतने पर स्वास्थ्य पर इनका बुरा असर पड़ना स्वाभाविक है। वातावरण इन दिनों वैसे भी दूषित और जहर से भरा हुआ है। परिणामस्वरूप कफ के दूषित होने और तज्जन्य सरदी, जुकाम, खाँसी, टॉन्सिल, बुखार, सिरदरद, खसरा, चेचक, शरीर में भारीपन जैसी बीमारियों का शिकार होना पड़ता है। इसलिए इन दिनों कफ को प्रकुपित करने वाले शीतल, गरिष्ठ पदार्थ-दूध, दही, घी आदि का सेवन नहीं करना चाहिए। दिन में सोना और देर रात तक जगना, दोनों ही स्वास्थ्य को चौपट करते हैं। दिन में सोने से कफ एवं मेद बढ़ता है, अतः दिन में नहीं सोना चाहिए। सुबह ब्राह्ममुहूर्त में जल्दी उठना और टहलना हर प्रकार से लाभप्रद है।

३. ग्रीष्म ऋतु

वसंत ऋतु के पश्चात् ग्रीष्म ऋतु आती है। यों तों इसकी शुरुआत वसंतकाल के मध्य से ही हो जाती है और ज्येष्ठ-आषाढ़ अर्थात जून-जुलाई में अपने चरमोत्कर्ष पर जा पहुँचती है। मई मध्य से लेकर जुलाई मध्य तक की अवधि ग्रीष्म की मानी जाती है, इतने पर भी अपने देश के प्रायः अधिकांश भागों में सात-आठ महीने गरमी बनी रहती है। इस ऋतु में दिन बड़े और रातें छोटी होती हैं। जून-जुलाई की धूल एवं ऊमस भरी गरमी से वृक्ष-वनस्पति सहित समूचे जीव-जगत का जीवन बेहाल हो जाता है। गरम हवा के साथ लू के चलते थपेड़े सबको झुलसा देते हैं। सूर्य की तप्त एवं तीक्ष्ण किरणें वातावरण के स्नेहांश एवं जलीय अंश को सोख लेती हैं। परिणामस्वरूप शरीर में रूक्ष रस की उत्पत्ति होती है। इससे प्राणियों में शक्ति का निरंतर ह्रास होने लगता है। शरीर शुष्क और शक्तिहीन होने लगता है।

आयुर्वेद ग्रंथों के अनुसार ग्रीष्म ऋतु में मनुष्य शरीर में संचित कफ दोष पिघलकर कम हो जाता है, जबकि वातावरण की गरमी एवं रूक्षता वायुतत्त्व की वृद्धि करती है। अत्यधिक गरमी के कारण इन दिनों पित्त के विदग्ध होने से पाचकाग्नि कमजोर पड़ जाती है, जिसके कारण भूख कम लगना, आहार का ठीक से पाचन नहीं होना जैसे लक्षण प्रकट होते हैं। शरीर में जलीय अंश की कमी के कारण अधिक प्यास लगना, गला और मुँह सूखने लगना, कमजोरी, बेचैनी, स्वेदाधिक्य आदि परेशानियाँ पैदा हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में ठंडे, शीतल पदार्थों के सेवन से राहत मिलती है।

ग्रीष्म ऋतु में यज्ञोपचार प्रक्रिया के साथ ही साथ ऋतुचर्या का पालन अनिवार्य रूप से करने पर ही पूरा लाभ मिलता है। हमारी ग्रीष्म ऋतुचर्या कैसी होनी चाहिए, इस संबंध में चरक संहिता-सूत्र स्थान में कहा गया है कि 'गरमी के मौसम में मधुर, शीतल द्रव्य तथा स्निग्ध खान-पान हितकारी होता है।' ठंडे जल के साथ चीनी और घी मिला जौ या चने का सत्तू खाना सबसे अच्छा पथ्य है। जौ, चना, गेहूँ, पुराना चावल, हरी मटर, मूँग दाल, मसूर दाल, घी, दूध आदि का सेवन करते रहने से ग्रीष्म ऋतुजन्य विकारों से बचा जा सकता है। इन दिनों ऋतुफल-आम, तरबूज, खरबूज, ककड़ी, खीरा, संतरा, अंगूर, केला, खुबानी, लीची, आदि तथा शाक-सब्जियों में चौलाई, बथुआ, टमाटर, परवल, करेला, सहिजन, भिंडी, लौकी, नीबू, पोदीना, हरा धनिया, प्याज आदि का नियमित सेवन किया जा सकता है। छाछ, दूध या दही की लस्सी, सत्तू आदि का सेवन ग्रीष्म ऋतु में सबसे अच्छा माना जाता है। कृत्रिम कोल्ड ड्रिंक की अपेक्षा खस या चंदन का शरबत, बुरांश आदि हिमालयी उत्पादों का शरबत स्वास्थ्य की दृष्टि से सर्वोत्तम हैं। कच्चे आम को भूनकर या उबालकर बनाया गया आम रस या पना पीने से एक ओर जहाँ गरमी और लू से रक्षा होती है, वहीं दूसरी ओर इसका रस पाचनशक्ति को बढ़ाता है।

ग्रीष्म ऋतु में नमकीन, तले-भुने, मिर्च-मसाले वाले खट्टे, चरपरे, गरम, रूक्ष पदार्थ, उष्ण भोजन, ठंडे, बासी एवं खुले में रखे हुए खाद्य पदार्थ, खट्टा दही, लहसुन, इमली, बैंगन, उड़द, सरसों, शहद आदि का सेवन नहीं करना चाहिए। मात्र ग्रीष्म ऋतु ही ऐसी है, जिसमें दिन में सोने का विधान है।

ग्रीष्म ऋतु में पित्त प्रकुपित होता है, फलतः पित्तजरोग अधिक होते हैं। इनमें अतिसार, स्वेदाधिक्य, दाह, उष्णता, खसरा, चेचक, नकसीर, शारीरिक शिथिलता, मूर्च्छा, प्यास, अपच, कब्ज, अनिद्रा, सिरदरद, पेटदरद, पीलिया, हैजा, पेशाब में जलन, प्रदर, नेत्ररोग, स्नायुरोग, हीट स्ट्रोक आदि रोग सम्मिलित हैं। इन रोगों से बचाने में ऋतु अनुकूल हवनोपचार प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नित्य नियमित रूप से उपर्युक्त ऋतुचर्या का पालन करते हुए हवन करते रहने पर जीवनीशक्ति संवर्द्धन के साथ-साथ ऋतुजन्य बीमारियों से भी रक्षा होती है।

ग्रीष्म ऋतु में गरमी के कारण शरीर से जलीय अंश अधिक मात्रा में निकलता है, जिससे प्यास अधिक लगती है। इसके लिए मिट्टी के घड़े, सुराही आदि का शीतल पानी सबसे अच्छा होता है। एक साथ अधिक पानी पीना तथा धूप से आने के तुरंत बाद पानी पीना हानिकारक होता है। इससे बचना चाहिए। घर से बाहर निकलने से पूर्व पानी अवश्य पीना चाहिए। इससे लू से बचाव होता है।

४. वर्षा ऋतु

ग्रीष्म ऋतु के पश्चात् वर्षा ऋतु आती है। जुलाई से सितंबर अर्थात आषाढ़ से आश्विन मध्य तक वर्षाकाल होता है। देश के तटवर्ती प्रदेशों में जून मध्य से ही मानसून सक्रिय हो जाता है और जुलाई मध्य तक देश के प्राय: सभी प्रदेशों में हलकी से लेकर भारी वर्षा से नदी-तालाब भर जाते हैं। आयुर्वेद ग्रंथों में वर्षा ऋतु को पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध दो भागों में विभक्त करते हुए दोनों का प्रभाव भिन्न-भिन्न बताया गया है। वर्षा के पूर्वार्द्ध भाग को 'प्रावृट्' कहते हैं। प्रावृट् का अर्थ है-'अर्ली रेनी सीजन' अर्थात वर्षा का आरंभ। उत्तरार्द्ध को 'रेनी सीजन' अर्थात वर्षा ऋतु कहते हैं। इस तरह आषाढ़-श्रावण को प्रावृट् एवं भाद्रपद-आश्विन को वर्षा ऋतु माना जाता है। प्रावृट्काल में हलकी वर्षा, श्रावण-भाद्रपद में भारी एवं आश्विन में कम वर्षा होती है।

बरसात शुरू होते ही ग्रीष्म ऋतु की प्रचंड तपन से राहत मिलती है। चारों ओर नयनाभिराम हरियाली छा जाती है। वहीं दूसरी ओर यह मौसम अनेक कष्टकारी समस्याएँ भी खड़ी कर देता है। वातादि दोष इन्हीं दिनों प्रकुपित होते हैं। बाढ़ से लेकर गंदगी, कीचड़, मक्खी-मच्छर, जीवाणु-विषणुओं की उपज तथा तज्जन्य बीमारियों की अभिवृद्धि इसी ऋतु में अधिक होती है। ऐसी स्थिति में असावधानी बरतने पर स्वास्थ्य संकट उत्पन्न होना एक सुनिश्चित तथ्य है।

वर्षाकाल में जब आकाश पानी से भरे बादलों से घिरा होता है, तब वातादि दोष प्रकुपित होते हैं। साथ ही तुषारमिश्रित शीतल वायु के तीव्र प्रवाह

के कारण, तपती धरती पर गिरती पानी की बूँदों के कारण उससे उठती वाष्प से, अम्लपाक वाले तथा गंदे पानी से तथा काल स्वभाव के कारण मंदाग्नि से कफ के दूषित होने से वातादि दोष एक दूसरे को दूषित करने लगते हैं। अर्थात वर्षा ऋतु में वात, पित्त और कफ-तीनों ही दूषित होते हैं। शीतल वायु एवं नमी के कारण वायु प्रकुपित होती है। पृथ्वी से उठती वाष्प तथा पानी के अम्लपाक से पित्त और जठराग्नि की मंदता से कफ दूषित होता है। इसलिए इन दिनों आहार-विहार में संयम बरतते हुए संचित दोषों के लिए शोधन परक एवं आमज-दोषों के लिए शामक औषधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं। यज्ञोपचार में ऐसी ही औषधियाँ सम्मिलित की जाती हैं।

वर्षा ऋतु के संदर्भ में बताई गई यज्ञोपचार प्रक्रिया में त्रिदोषनाशक एवं अग्निदीपक औषधियों का सेवन तथा हवन करने के लिए कहा गया है। प्रत्येक ऋतु की अपनी-अपनी नैसर्गिक प्रकृति व प्रभाव होता है, किंतु वर्षा ऋतु का अपना अलग ही प्रभाव है। इस ऋतु को अस्थिर कहा गया है, क्योंकि इस काल में कभी बादल रहते है, कभी पानी बरसता है, कभी ऊमस होती है, तो कभी चिलचिलाती धूप रहती है। कभी गरमी, कभी नमी, तो कभी मंद-मंद वायु चलती है। तापमान के इस उतार-चढ़ाव से पित्त, वातादि तीनों दोष कुपित होते हैं। भावप्रकाश में वर्षा ऋतु के इन गुण-दोषों का वर्णन करते हुए कहा गया है-**'वर्षाः शीता विदाहिन्यो वह्निमान्द्यानिलप्रदाः।'** अर्थात-वर्षा ऋतु शीतल, दाहकारक, जठराग्नि को मंद करने वाली और वात को बढ़ाने वाली है। इस ऋतु में पित्त संचित होता है और वायु प्रकुपित होता है। इसलिए यज्ञोपचार प्रक्रिया अपनाने वाले हर किसी को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि ऋतु अनुकूल अपने आहार-विहार को संतुलित रखते हुए दोषों के संचय एवं शमन में उपयोगी औषधियाँ ही प्रयुक्त करें। इससे न केवल वर्षा ऋतु में, वरन् विषम परिस्थितियों में भी स्वास्थ्य की रक्षा होती है।

वर्षा से चारों तरफ कीचड़, गंदगी, सीलन, बाढ़ आदि से सारा वातावरण दूषित हो जाता है। सभी जगह बरसाती पानी भर जाने से कुएँ, बावली तक का पानी दूषित हो जाता है, जो बिना छाने हुए पीने से पाचन संबंधी अनेक बीमारियाँ उत्पन्न करता है। ग्रीष्म ऋतु के कारण मनुष्य का

कफ पहले से ही क्षीण होता है, वात भी बढ़ा हुआ होता है। तीक्ष्ण खान-पान के कारण पित्त भी प्रकुपित हो जाता है। इसके साथ ही वर्षा के साथ वातावरण में छाई हुई जहरीली गैसें घुलकर उसे और दूषित कर देती हैं। जमीन पर पहले से ही गंदगी की भरमार रहती है, जो पानी के साथ घुलमिलकर रोगोत्पत्ति का कारण बनती है। इन दिनों पनपने वाले रोगों में अधिकतर अग्निमांद्यता, अपच, गैस, अतिसार, डीसेंट्री, कॉलरा, गैस्ट्रोएंट्राइटिस, अमीबायसिस, कोलाइटिस, टाइफाइड, वायरल हैपेटाइटिस या पीलिया, वायरल फीवर, मलेरिया, त्वचारोग, नेत्ररोग, जुकाम, खाँसी, निमोनिया, एलर्जिक रॉयनायटिस, दमा, वातव्याधियाँ आदि हैं।

इसलिए इस ऋतु में खान-पान एवं रहन-सहन में विशेष सावधानी बरती जाती है। उचित मात्रा में हलका, सुपाच्य एवं त्रिदोष नाशक आहार-विहार अपनाया जाता है। पुराना चावल, गेहूँ, जौ, अरहर, मूँग की छिलके युक्त दाल, यूष, राजमा, लोबिया, सोयाबीन, मौसमी सब्जी-परवल, लौकी, तोरई, भिंडी, करेला, कच्चा केला, कद्दू, टिंडा, बैंगन, आलू, टमाटर, चिचिंडा, सहिजन की फली, आम, अंजीर, खजूर, अदरक, नीबू, हरी मिरच, जीरा, हींग, लहसुन, करौंदा, पुराना शहद, आसव-अरिष्ट, दही या मट्ठे में सोंठ, पिप्पली, मरिच, और सेंधा नमक डालकर सेवन करना चाहिए। पानी उबालकर तथा छानकर पीना चाहिए। वर्षा ऋतु में कभी-कभी बरसात के साथ ही जोर से हवा चलती है, जिससे सरदी का वातावरण बन जाता है। इससे वातवृद्धि का भय रहता है। अत: ऐसी स्थिति में खट्टे पदार्थ, नमकीन, मीठा एवं चिकनाईयुक्त आहार नहीं लेना चाहिए।

वर्षा ऋतु में आम और जामुन बहुतायत से मिलते हैं। वे इस ऋतु के सर्वश्रेष्ठ आहार हैं। जो आम स्वाद में मधुर हो और प्राकृतिक रूप से पके हों, उन्हें इन दिनों खाना चाहिए। आमरस के साथ यदि एक चुटकी सोंठ का चूर्ण डालकर सेवन किया जाए, तो वह शीघ्र पच जाता है। आम खाने के बाद कुनकुना दूध पीने से भी वह पच जाता है। जामुन सदैव दोपहर में भोजनोपरांत लेना चाहिए। इसी तरह मक्का के भुट्टे भी इन्ही दिनों पर्याप्त रूप में मिलते हैं। इन्हें भूनकर खाने के बाद ऊपर से भुना जीरा, हींग व सेंधा नमक मिला हुआ मट्ठा पीना चाहिए। इससे भुट्टे जल्दी पच जाते हैं।

वर्षा ऋतु में हमें इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि श्रावण मास में दूध एवं भाद्रपद में दही-मट्ठे का सेवन नहीं किया जाता। इसी तरह रात्रि में दही नहीं खाना चाहिए। खाना ही हो, तो मूँगदाल के साथ खाएँ। कहावत भी है-**'सावन साग न भादों दही । क्वार करेला कार्तिक मही।।'** अर्थात सावन महीने में हरी पत्तियों वाली शाक-भाजी, भाद्रपद में दही, क्वार में करेला एवं कार्तिक में मट्ठे का सेवन नहीं करना चाहिए।

आयुर्वेद ग्रंथों के अनुसार वर्षा ऋतु में पानी में घुला हुआ सत्तू, दिन में सोना, अत्यधिक श्रम, सूर्य की तेज धूप, नदी या तालाब का जल, शीतल वायु-विशेषकर पुरवैया वायु, ओस में बैठना या टहलना, सहवास, अत्यधिक ठंडा, बासी एवं गरिष्ठ व रूक्ष भोजन, तीक्ष्ण-खट्टा आसव, नंगे पैर पानी में चलना, गीले वस्त्र पहनना, वर्षा में भीगना एवं सीलन या नमीयुक्त वातावरण में निवास करना-ये सभी इस ऋतु में अपथ्य हैं। अतः इनसे बचना चाहिए। बरसात के मौसम में शाम का भोजन सूर्यास्त के पहले कर लेना स्वास्थ्य के लिए हितकारी होता है, क्योंकि सूर्यास्त के पश्चात् पाचकाग्नि कमजोर पड़ जाती है, जिससे भोजन देर से पचता है।

इस तरह ऋतुचर्या संबंधी उपर्युक्त सामान्य नियमोपनियमों का पालन करते हुए, आहार-विहार को संतुलित व नियमित बनाते हुए यदि यज्ञोपचार प्रक्रिया अपनाई जाए, तो सुनिश्चित रूप से उसके सत्परिणाम सामने आते हैं।

५. शरद ऋतु

वर्षा ऋतु के पश्चात् शरद् ऋतु आती है। यह सामान्यतया सितंबर मध्य से नवंबर मध्य का समय होता है। अर्थात आश्विन एवं कार्तिक का महीना शरद्काल कहलाता है। आयुर्वेद ग्रंथों में स्वास्थ्य संवर्द्धन के लिए इसे सबसे उपयुक्त समय माना गया है। यह विसर्गकाल या दक्षिणायन की दूसरी ऋतु है। इसमें मनुष्यों में बल की वृद्धि होती है। इस काल में सूर्य का तेज कम होता है और चंद्रमा बलवान होता है। वर्षा, शीत आदि के कारण धरती का तापमान शांत हो जाता है। वातावरण में हरियाली एवं निर्मलता छा जाती है। अतः इस काल में क्रमशः अम्ल-लवण और मधुर-स्निग्ध आदि पुष्टि-

कारक रसों की अभिवृद्धि होती जाती है। इससे मनुष्य का बल भी बढ़ता है। शरद्, हेमंत एवं शिशिर ऋतु में मनुष्य का बल क्रमशः सर्वाधिक बढ़ा हुआ होता है। आदानकाल में यही बल क्षीण हो जाता है। इसलिए शरद् ऋतु को स्वास्थ्य-संरक्षण एवं संवर्द्धन की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण समय माना जाता है। ऋतु अनुकूल खान-पान एवं रहन-सहन तथा आचार-व्यवहार में संतुलन बिठाकर इस कालावधि में किए गए यज्ञोपचार के सुनिश्चित सत्परिणाम सामने आते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं।

आयुर्वेद ग्रंथों में शरद् ऋतु को पित्तकारक माना गया है। भावप्रकाश-पू. खं. ४/३२५ के अनुसार-**'शरदुष्णा पित्तकर्त्री नृणां मध्य बलावहा'** अर्थात-शरद् ऋतु गरम, पित्तकारक और मनुष्यों में मध्यम बल बढ़ाने वाली होती है। इस ऋतु में पित्त का प्रकोप होता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि शरद् ऋतु में आकाश बादलों से रहित और स्वच्छ होता है। अतः दिन में धूप तेज और कष्टदायक होती है और वर्षा ऋतु में संचित पित्त को दूषित करके अनेक तरह के पित्तज विकारों को जन्म देती है। इन दिनों प्रायः जठराग्नि भी मंद होती है, अतः सदैव भूख से कम आहार ग्रहण करना ही श्रेयस्कर माना जाता है। पित्ताधिक्य होने पर विरेचन करके उसका निष्कासन करने को प्रमुखता दी जाती है। कहा भी गया है-**'विरेचनं हि पित्तस्य जयाय परमौषधम्।'** अर्थात-पित्त के निष्कासन के लिए विरेचन सर्वोत्तम उपाय है। तिक्त घृतों का सेवन करना भी लाभदायक होता है। मधुर पदार्थों के सेवन से भी पित्त की वृद्धि रुकती है। पित्तज विकारों को दूर करने के लिए शरद् ऋतु में इसीलिए **'स्वादुतिक्तकषायकान्'**, अर्थात-मधुर, तिक्त एवं कषाय रसयुक्त वनौषधियों या हविर्द्रव्यों का सेवन करने तथा हवन करने के लिए कहा गया है।

प्रायः देखा गया है कि रोगाक्रांत होने पर ही व्यक्ति औषधि सेवन करता और पथ्य-परहेज की ओर ध्यान देता है। आरंभ से ही यदि मौसम के अनकूल खान-पान एवं रहन-सहन अपनाया जाए, तो ऐसी कठिनाइयों का सामना कम ही करना पड़ता है। बाढ़, अतिवृष्टि, तूफान आदि दैवी आपदाओं को छोड़कर प्रायः वर्ष भर के सभी मौसम या ऋतुओं में हम अपने स्वास्थ्य को चुस्त-दुरुस्त बनाए रख सकते हैं। करना मात्र इतना भर रहता है कि हम प्रकृति के अनुसार अपने खान-पान एवं रहन-सहन, दिनचर्या आदि को ढाल लें और उसके नियमों का कड़ाई से पालन करें।

अष्टांग हृदय-सूत्रस्थान ३/५० के अनुसार-शरद् ऋतु पित्त बढ़ाने वाली और मध्यम बलवर्द्धक होती है। अतः इस मौसम में भूख लगने पर सुपाच्य, रुचिकर, तिक्त, मधुर कषाय रस वाले, शीतल एवं पित्तशामक आहार-विहार का सेवन करना चाहिए। जौ, गेहूँ, पुराना चावल, मूँग, दूध, घी, मिश्री, शक्कर, शहद, नमकीन रस वाले पदार्थ आदि शरद् ऋतु के हलके और सुपाच्य आहार हैं। करेला, परवल, आँवला, तोरई, बंदगोभी, पटोल, कमलककड़ी, मेथी, सोंठ, मीठी नीम की पत्ती, कच्ची हलदी एवं अन्यान्य ऋतुज शाक-सब्जियाँ इस मौसम में प्रयुक्त की जा सकती हैं। गन्ना, अनन्नास, सीताफल, नारियल, सेब, संतरा, मौसमी, नाशपाती, नीबू, कोकम, मुनक्का या द्राक्ष, केला, पपीता, अनार, सिंघाड़ा, खजूर, छुआरा एवं अन्य ऋतुफल सेवनीय हैं। ताजा तक्र-मट्ठा, उष्ण गोदुग्ध, मक्खन, मलाई, मूँग का हलवा, पेठा, जलेबी, आँवला एवं बेल का मुरब्बा आदि इस मौसम के प्रमुख पौष्टिक एवं पित्तशामक आहार हैं। शरद् ऋतु में उक्त सभी खाद्य पदार्थ स्वास्थ्य संवर्द्धन की दृष्टि से पुष्टिकारक, बलवर्द्धक एवं रोग प्रतिरोधी क्षमता की अभिवृद्धि करने वाले होते हैं, जिनका नियमित रूप से सेवन किया जा सकता है।

भावप्रकाश नामक सुप्रसिद्ध आयुर्वेदीय चिकित्सा ग्रंथ के पूर्व खंड-प्रकरण ५/३४०-४१ में शरद् ऋतु के आहार-विहार का वर्णन करते हुए कहा गया है-**'सर्पिः स्वादुकषायतिक्तकरसा....हिमं चातपम्।'** अर्थात-घी का सेवन करना, मधुर, कसैले तथा कडुवे रसयुक्त पदार्थों का खाना, दूध पीना, शीतल और हलके पदार्थों का सेवन करना, स्वच्छ मिश्री, ईख, नमकीन, रस वाले पदार्थ, गेहूँ, जौ, चावल, मूँग जैसे सुपाच्य आहार ग्रहण करना हितकारी है। नदी का जल अथवा अंशोदक या हंसोदक जल पीना, कपूर, चंदन, चाँदनीयुक्त रात्रि, पुष्प और निर्मल वस्त्र-इनका सेवन करना, जलक्रीड़ा करना, तैरना, पित्ताधिक्य होने पर जुलाब लेना, बलवान पुरुषों द्वारा रक्तदान या रक्तमोक्षण आदि कार्य शरद् ऋतु में हितकारी होते हैं।

अंशोदक-दिन में स्वच्छ जल को सूर्य की किरणों से तपाया जाए और रात्रि में चंद्रमा की किरणों एवं ओस से शीतल किया जाए और अगस्त्य

तारा के उदय होने से जो निर्विष हो गया हो, ऐसे निर्मल और पवित्र जल को अंशोदक या हंसोदक कहते हैं। इस निर्मल और शुद्ध जल को शरद् ऋतु में पीने, नहाने और अवगाहन में प्रयुक्त किया जा सकता है। यह जल स्निग्ध एवं तीनों दोषों का शमन करने वाला एवं अमृत के समान हितकारी होता है। आज के प्रदूषित वातावरण में हंसोदक बनाने के लिए प्रयुक्त होने वाले वाले जल को महीन कपड़े से छानकर बरतन में भरने के पश्चात् कपड़े से ढँककर तब उसे छत पर या आँगन में रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त उबालकर ठंडा होने पर शीतल पानी का उपयोग इस ऋतु में विशेष उपयोगी होता है। जल संग्रह के लिए ताँबें के बरतन सर्वाधिक उपयोगी पाए गए हैं। ताम्रपात्र में रखा हुआ जल संक्रमण रहित होता है और पीने पर पित्त का शमन करता है।

शरद् ऋतु में प्राकृतिक रूप से पित्त बढ़ा हुआ होता है। खान-पान में व्यतिरेक के कारण यह और अधिक प्रकुपित हो जाता है और अनेक प्रकार की पित्तज व्याधियों को जन्म देता है। इसलिए आयुर्वेद शास्त्रों में इस ऋतु में क्षारयुक्त आहार, पेट भरकर खाना, दही, तैल, चिकनाई-वसायुक्त पदार्थों का सेवन, धूप एवं ओस में अधिक देर तक रहना, दिन में सोना एवं तेज पुरवइया हवाओं से बचने के लिए कहा गया है। ये सभी इस ऋतु के अपथ्य हैं। कटु, अम्ल, उष्ण, तीक्ष्ण, चरपरे एवं रूखे पदार्थ, चाय, कॉफी, तली-भुनी चीजें, अचार, गरम मसाले, काली मिरच, उड़द, तिल, कांजी, मद्यपान, मांसाहार, बरफ का सेवन आदि शरद् ऋतु के अपथ्य हैं। ये सभी चीजें पित्त को बढ़ाती और विकार उत्पन्न करती हैं। इसके अतिरिक्त पीपल, सौंफ, लहसुन, बैंगन, गुड़, खिचड़ी, छाछ, सरसों आदि पदार्थों का सेवन भी इस ऋतु में वर्जित है। इनके सेवन से पित्त प्रकुपित होता है और पित्तज व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। इन दिनों मौसम साफ होने की वजह से तेज धूप निकलती है, अतः अधिक देर तक तेज धूप में नहीं रहना चाहिए। अधिक व्यायाम या अतिपरिश्रम भी नुकसानदायक होता है। कार्तिक मास में हलकी सरदी आरंभ हो जाती है, अतः उससे भी बचना चाहिए

शरद् ऋतु में आहार-विहार में व्यतिरेक होने पर अनेक प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। इनमें प्रमुख हैं-अम्लपित्त या एसिडिटी, पीलिया,

अष्टांग हृदय-सूत्रस्थान ३/५० के अनुसार-शरद् ऋतु पित्त बढ़ाने वाली और मध्यम बलवर्द्धक होती है। अतः इस मौसम में भूख लगने पर सुपाच्य, रुचिकर, तिक्त, मधुर कषाय रस वाले, शीतल एवं पित्तशामक आहार-विहार का सेवन करना चाहिए। जौ, गेहूँ, पुराना चावल, मूँग, दूध, घी, मिश्री, शक्कर, शहद, नमकीन रस वाले पदार्थ आदि शरद् ऋतु के हलके और सुपाच्य आहार हैं। करेला, परवल, आँवला, तोरई, बंदगोभी, पटोल, कमलककड़ी, मेथी, सोंठ, मीठी नीम की पत्ती, कच्ची हलदी एवं अन्यान्य ऋतुज शाक-सब्जियाँ इस मौसम में प्रयुक्त की जा सकती हैं। गन्ना, अनन्नास, सीताफल, नारियल, सेब, संतरा, मौसमी, नाशपाती, नीबू, कोकम, मुनक्का या द्राक्ष, केला, पपीता, अनार, सिंघाड़ा, खजूर, छुआरा एवं अन्य ऋतुफल सेवनीय हैं। ताजा तक्र-मट्ठा, उष्ण गोदुग्ध, मक्खन, मलाई, मूँग का हलवा, पेठा, जलेबी, आँवला एवं बेल का मुरब्बा आदि इस मौसम के प्रमुख पौष्टिक एवं पित्तशामक आहार हैं। शरद् ऋतु में उक्त सभी खाद्य पदार्थ स्वास्थ्य संवर्द्धन की दृष्टि से पुष्टिकारक, बलवर्द्धक एवं रोग प्रतिरोधी क्षमता की अभिवृद्धि करने वाले होते हैं, जिनका नियमित रूप से सेवन किया जा सकता है।

भावप्रकाश नामक सुप्रसिद्ध आयुर्वेदीय चिकित्सा ग्रंथ के पूर्व खंड-प्रकरण ५/३४०-४१ में शरद् ऋतु के आहार-विहार का वर्णन करते हुए कहा गया है-**'सर्पिः स्वादुकषायतिक्तकरसा....हिमं चातपम्।'** अर्थात-घी का सेवन करना, मधुर, कसैले तथा कड़ुवे रसयुक्त पदार्थों का खाना, दूध पीना, शीतल और हलके पदार्थों का सेवन करना, स्वच्छ मिश्री, ईख, नमकीन, रस वाले पदार्थ, गेहूँ, जौ, चावल, मूँग जैसे सुपाच्य आहार ग्रहण करना हितकारी है। नदी का जल अथवा अंशोदक या हंसोदक जल पीना, कपूर, चंदन, चाँदनीयुक्त रात्रि, पुष्प और निर्मल वस्त्र-इनका सेवन करना, जलक्रीड़ा करना, तैरना, पित्ताधिक्य होने पर जुलाब लेना, बलवान पुरुषों द्वारा रक्तदान या रक्तमोक्षण आदि कार्य शरद् ऋतु में हितकारी होते हैं।

अंशोदक-दिन में स्वच्छ जल को सूर्य की किरणों से तपाया जाए और रात्रि में चंद्रमा की किरणों एवं ओस से शीतल किया जाए और अगस्त्य

तारा के उदय होने से जो निर्विष हो गया हो, ऐसे निर्मल और पवित्र जल को अंशोदक या हंसोदक कहते हैं। इस निर्मल और शुद्ध जल को शरद् ऋतु में पीने, नहाने और अवगाहन में प्रयुक्त किया जा सकता है। यह जल स्निग्ध एवं तीनों दोषों का शमन करने वाला एवं अमृत के समान हितकारी होता है। आज के प्रदूषित वातावरण में हंसोदक बनाने के लिए प्रयुक्त होने वाले वाले जल को महीन कपड़े से छानकर बरतन में भरने के पश्चात् कपड़े से ढँककर तब उसे छत पर या आँगन में रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त उबालकर ठंडा होने पर शीतल पानी का उपयोग इस ऋतु में विशेष उपयोगी होता है। जल संग्रह के लिए ताँबें के बरतन सर्वाधिक उपयोगी पाए गए हैं। ताम्रपात्र में रखा हुआ जल संक्रमण रहित होता है और पीने पर पित्त का शमन करता है।

शरद् ऋतु में प्राकृतिक रूप से पित्त बढ़ा हुआ होता है। खान-पान में व्यतिरेक के कारण यह और अधिक प्रकुपित हो जाता है और अनेक प्रकार की पित्तज व्याधियों को जन्म देता है। इसलिए आयुर्वेद शास्त्रों में इस ऋतु में क्षारयुक्त आहार, पेट भरकर खाना, दही, तैल, चिकनाई-वसायुक्त पदार्थों का सेवन, धूप एवं ओस में अधिक देर तक रहना, दिन में सोना एवं तेज पुरवइया हवाओं से बचने के लिए कहा गया है। ये सभी इस ऋतु के अपथ्य हैं। कटु, अम्ल, उष्ण, तीक्ष्ण, चरपरे एवं रूखे पदार्थ, चाय, कॉफी, तली-भुनी चीजें, अचार, गरम मसाले, काली मिरच, उड़द, तिल, कांजी, मद्यपान, मांसाहार, बरफ का सेवन आदि शरद् ऋतु के अपथ्य हैं। ये सभी चीजें पित्त को बढ़ाती और विकार उत्पन्न करती हैं। इसके अतिरिक्त पीपल, सौंफ, लहसुन, बैंगन, गुड़, खिचड़ी, छाछ, सरसों आदि पदार्थों का सेवन भी इस ऋतु में वर्जित है। इनके सेवन से पित्त प्रकुपित होता है और पित्तज व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। इन दिनों मौसम साफ होने की वजह से तेज धूप निकलती है, अतः अधिक देर तक तेज धूप में नहीं रहना चाहिए। अधिक व्यायाम या अतिपरिश्रम भी नुकसानदायक होता है। कार्तिक मास में हलकी सरदी आरंभ हो जाती है, अतः उससे भी बचना चाहिए

शरद् ऋतु में आहार-विहार में व्यतिरेक होने पर अनेक प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। इनमें प्रमुख हैं-अम्लपित्त या एसिडिटी, पीलिया,

आंत्रिक रोग, रक्तपित्त, पेचिश एवं रक्तविकार आदि। सरदी, जुकाम, एन्फ्लुएंजा का प्रकोप भी प्रायः इन्हीं दिनों अधिक होता है। शरद् ऋतु में नमवायु के प्रवाह से संधिवात जैसी व्याधियाँ भी उभरती देखी जाती हैं। वातावरण में संव्याप्त विषाक्तता एवं वर्षाजन्य मक्खी-मच्छरों तथा जीवाणुओं-विषाणुओं की भरमार भी इस मौसम में सर्वाधिक होती है, जिसके कारण मलेरिया, डेंगू फीवर, पेचिश जैसी घातक बीमारियों का जोर रहता है। खान-पान एवं रहन-सहन तथा पथ्य-परहेज का ध्यान न रखने पर यही बीमारियाँ कई बार जानलेवा सिद्ध होती हैं। ऐसी स्थिति में आहार-विहार के नियमों का यदि पालन किया जाए तथा ऋतु के अनुकूल हवन सामग्री से हवन किया जाए, तो सुनिश्चित रूप से स्वस्थ रहा जा सकता है।

६. हेमन्त ऋतु

शरद ऋतु के पश्चात् हेमंत ऋतु आती है-**'शरदव्यपाये हेमंतः ऋतुरिष्टः प्रवर्तते।'** अर्थात-शरद ऋतु के व्यतीत होने पर सुहावनी हेमंत ऋतु उपस्थित होती है। मार्गशीर्ष और पौष अर्थात नवंबर मध्य से जनवरी मध्य तक का समय हेमंत ऋतु का होता है। विसर्गकाल या दक्षिणायन की यह अंतिम ऋतु है। इसके पश्चात् आदानकाल या उत्तरायण शुरू हो जाता है और शिशिर ऋतु का आगमन होता है। हेमंत एवं शिशिर ऋतुओं को शीत ऋतु कहा जाता है। शिशिर ऋतु में सरदी अधिक रहती है, जबकि हेमंत ऋतु में अपेक्षाकृत कम शीतलता होती है। इस मौसम में रातें लंबी और दिन छोटे होते हैं। जठराग्नि बढ़ी हुई होती है, जिससे भारी एवं गरिष्ठ पदार्थ भी पच जाते हैं और शारीरिक बल की वृद्धि करते हैं। इसलिए स्वास्थ्य संवर्द्धन की दृष्टि से इसे सबसे अच्छा मौसम माना गया है। समुचित खान-पान एवं रहन-सहन अपनाते हुए नियमित हवनोपचार करते रहने से मौसम एवं ऋतुसंधिजन्य उपद्रवों से सहज ही रक्षा हो जाती है।

हेमंत ऋतु के गुण-दोषों का वर्णन करते हुए भावप्रकाश-पू.खं. ४/३२३ में कहा गया है कि हेमंत ऋतु शीतल, स्निग्ध और प्रायः प्रत्येक पदार्थ में स्वादुता उत्पन्न करने वाली तथा जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाली होती है। इस ऋतु में पाचनशक्ति तेज होती है, अतः खाया-पिया सब पच जाता है और बल की वृद्धि होती है। हेमंत ऋतु में पित्त शांत रहता है तथा

वात और कफ बढ़ते एवं संचित होते हैं। यही संचित वायु शिशिर ऋतु में कुपित होती है और वातज व्याधियाँ उत्पन्न करती है। आहार-विहार में व्यतिरेक होने के कारण हेमंत ऋतु में भी वात प्रकुपित होकर विभिन्न प्रकार के कष्टदायी वायु विकारों को जन्म देता है। किंतु जब खान-पान एवं रहन-सहन संतुलित एवं संयमित रखा जाता है, तो शीतकालीन बढ़ी हुई वायु का बल पाकर जठराग्नि तीव्र हो जाती है। इसलिए इस ऋतु में भारी, गरिष्ठ एवं पौष्टिक आहार सेवन करने के लिए आयुर्वेदशास्त्रों में निर्देश दिया गया है, अन्यथा पाचन संस्थान को भरपूर ईंधन न मिलने पर बढ़ी हुई पाचकाग्नि शारीरिक धातुओं को ही पचाने लगती है। अत: इस ऋतु में मधुर, अम्ल व लवण रसों से युक्त आहर का सेवन अनिवार्य रूप से किया जाता है, क्योंकि ये नैसर्गिक रूप से वायुशामक एवं पचने में भारी होते हैं।

आयुर्वेद विशेषज्ञों के अनुसार शीत ऋतु सेहत बनाने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समय है। इस मौसम में जठराग्नि प्रदीप्त होती है, अत: भोजन में अधिकतर पौष्टिक आहार का समावेश किया जाता है। इसका स्पष्ट कारण बताते हुए चरक संहिता-सूत्र स्थान, ६/९ में कहा गया है कि शीत ऋतु में ठंडी हवा के स्पर्श से मानवीय काया की उष्णता बाहर नहीं निकल पाती, वरन् अवरुद्ध होकर बाहर निकलने के स्थान पर अंदर अपने मूल स्थान को लौट जाती है। इस कारण इस मौसम में बलवान मनुष्यों की जठराग्नि अत्यंत प्रबल और प्रदीप्त होकर विविध प्रकार के गरिष्ठ एवं पौष्टिक आहार को पचाने में समर्थ होती है। किसी कारणवश यदि समुचित आहार की पूर्ति नहीं होती अथवा हम यों ही अनाप-शनाप पदार्थ खाकर पेट भर लेते हैं, तो यही आहार हमारे शरीर के लिए नुकसानदेह साबित होता है। भूखे पेट रहने अथवा अल्प मात्रा में आहार ग्रहण करने पर बढ़ी हुई जठराग्नि शरीरस्थ धातुओं को ही पचाने लगती है और अनेक विकृतियाँ पैदा करती है। ऋतुचर्या का सही ज्ञान न होने के कारण ही प्राय: यह शिकायत रहती है कि हमने अमुक रोग में यज्ञोपचार सहित अमुक-अमुक पैथियों की शरण ली, लेकिन परिणाम नगण्य ही रहा। जबकि मौसम के अनकूल, विशेषकर शीत ऋतु में आहार-विहार का संतुलन बिठाकर इससे हर कोई स्वास्थ्य एवं दीर्घायुष्य का लाभ उठा सकता है।

हेमंत ऋतु में हमारा आहर-विहार कैसा होना चाहिए? इस संबंध में भावप्रकाश-पूर्व खंड, दिनचर्या प्रकरण ५/३४४ में स्पष्टोक्ति है कि हेमंत ऋतु में प्रातः काल के भोजन में खट्टे-मीठे तथा खारे या नमकीन रस वाले पदार्थ खाने चाहिए। भोजन सदैव ताजा ही करना चाहिए। शरीर में अभ्यंग-तैल मालिश करना, परिश्रम करना, टहलना या व्यायाम करना, कुश्ती लड़ना आदि से पसीना निकालना और कुनकुने जल से स्नान करना चाहिए। सरदी से बचने के लिए धूपस्नान करना तथा गरम व ऊनी वस्त्र पहनना तथा रहने के लिए निर्वात उष्ण गृहों का उपयोग करना चाहिए। वस्तुतः शीत ऋतु में रातें बड़ी होने से विश्राम करने व सोने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है। इससे पाचनशक्ति भी बढ़ती है और पर्याप्त समय मिलने से ग्रहण किया गया भोजन भी अच्छी तरह पच जाता है, जिससे शरीर में रस-रक्तादि धातुओं की अभिवृद्धि होती है। शरीर पुष्ट और बलिष्ट बनता है। इसलिए हेमंत ऋतु में पूर्ण एवं पोषकतत्त्वों से भरपूर आहार लेना चाहिए। भूखे रहना अथवा अल्पाहार करना इन दिनों स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। इस मौसम में यदि स्वास्थ्य को सुधार कर शरीर को हृष्ट-पुष्ट बना लिया जाए, तो समझना चाहिए कि वर्ष भर के लिए सबल एवं स्वस्थ जीवन की गारंटी मिल गई। ऋतु अनुकूल खान-पान सही रखने पर शरीर की रोग-प्रतिरोधी क्षमता बढ़ती है और यही क्षमता विभिन्न बीमारियों से, रोगाणुओं-विषाणुओं से शरीर की रक्षा करती है।

हेमंत ऋतु में शीताधिक्य होने के कारण वात रोगों के पनपने की संभावना अधिक रहती है, इसलिए आयुर्वेद विद्या विशारद इस ऋतु में मीठे, स्निग्ध, अम्लीय, खट्टे पदार्थों एवं लवण रसयुक्त नमकीन पदार्थों के सेवन का निर्देश देते हैं। इस ऋतु में अच्छी भूख लगने पर गेहूँ, चना, मटर, नया चावल, उड़द की दाल एवं पीठी से बने पदार्थ, तैल से बने पदार्थ, गन्ने के रस से बने-गुड़, शक्कर आदि पदार्थ, मिठाइयाँ, दूध एवं दूध से बने पदार्थ-रबड़ी, मक्खन, घी, मलाई आदि, हलुआ प्रभृति पदार्थ, शहद आदि का सेवन करना चाहिए। मौसमी फल एवं शाक-सब्जियाँ यथा-लौकी, तोरई, पपीता, टमाटर, मूली, गाजर, शलजम, चुकंदर, बथुआ, गोभी, आलू, सरसों, मेथी, सोया, चौलाई, पालक, अदरक, अनार, सिंघाड़ा, केला, सेब, अमरूद,

आँवला एवं सेब का मुरब्बा आदि हेमंत ऋतु के सेवनीय आहार हैं। बादाम, अंजीर, पिंड खजूर, तिल, मूँगफली आदि से बनी गजक एवं पट्टियाँ, भुने चने और गुड़ आदि का सेवन भरपूर पौष्टिकता प्रदान करते हैं। शतावर, अश्वगंधा, सालममिश्री, बिदारीकंद, बाराहीकंद, तालमखाना, कौंचबीज बहमन, मूसली जैसी वनौषधियों का एकल या मिश्रित चूर्ण (पाउडर) उचित मात्रा में अनुपान के साथ पूरे शीतकाल सेवन किया जा सकता है और ओजस, तेजस् एवं यौवन से भरपूर स्फूर्तिवान-उल्लासयम जीवन का आनंद उठाया जा सकता है। स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन के लिए कुनकुने जल का सेवन सबसे सस्ता और सरल उपाय है।

हेमंत और शिशिर दोनों ही शीत ऋतु के अंतर्गत आती हैं। अतः इस मौसम में रूखे, बासी, हलके, कटु, तिक्त, कषाय रस वाले, शीतल प्रकृति के तथा वात को प्रकुपित करने वाले पदार्थों का अधिक सेवन नहीं करना चाहिए। अचार, इमली, अमचूर, खट्टा दही आदि पदार्थों का सेवन करना इस ऋतु के अपथ्य हैं। खाना हो तो ताजा दही, छाछ, नीबू, पके टमाटर, आँवला ले सकते हैं। कोल्ड ड्रिंक्स, आइसक्रीम, बरफीली चीजें, पानी से तैयार पतला सत्तू, ठंडी हवा, लघु एवं वातवर्द्धक आहार, वादी एवं प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले पदार्थ भी हेमंत ऋतु के अपथ्य हैं। ठंडे पानी से देर तक नहाना या तैरना, नम स्थानों में रहना या टहलना और दिन में सोना हेमंत ऋतु में हानिकारक होता है। देर रात्रि तक जागना, सुबह देरे से उठना, परिश्रम या व्यायाम न करना, अत्यंत शीत सहना, भूखे रहना आदि सेहत पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं, अतः इनसे बचना चाहिए। इस ऋतु में वात का प्रकोप अधिक रहता है। इसके अतिरिक्त सरदी, खाँसी, जुकाम, ब्रौंकाइटिस, टॉन्सिलाइटिस, दमा, खसरा आदि मौसमजन्य व्याधियाँ भी इसी ऋतु में उभरती हैं। इनसे बचने के लिए यज्ञोपचार प्रक्रिया के अंतर्गत वर्णित हेमंत ऋतु की विशिष्ट हवन सामग्री का प्रयोग किया जाना चाहिए।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि ऋतु अनकूल दिनचर्या एवं आहार-विहार के नियमों का पालन करते हुए यदि समुचित रूप से यज्ञ चिकित्सा की जाय, तो सभी प्रकार के रोगों पर पूरी तरह से नियंत्रण पाया जा सकता है। यज्ञ से उद्‌भूत दिव्य प्राण ऊर्जा से जीवनी शक्ति के अभि

वर्द्धन एवं उन्नयन के साथ ही रोगों का शमन हो जाता है। यज्ञ अपने आप में एक समग्र दर्शन है, साथ ही एक समग्र व दिव्य चिकित्सा पद्धति भी। इसके प्रभाव से सभी तरह के रोगों का सरलता पूर्वक उपचार किया जा सकता है और शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रुग्णताओं से पूर्णतया मुक्ति पाई जा सकती है। ओजस्, तेजस्, एवं वर्चस् के अभिवर्द्धन के सूत्र यज्ञीय जीवन दर्शन में ही सन्निहित है।

परिशिष्ट-१ | देव सं. वि.वि. के समग्र स्वास्थ्य प्रबंधन विभाग द्वारा किए गए कुछ सफल प्रयोग-परीक्षण

★★★★★★★★★★★

१- चिकनगुनिया की यज्ञ चिकित्सा

वर्षा ऋतु में होने वाली चिकनगुनिया वह भयंकर व्याधि है जो संक्रमित व्यक्ति को अपाहिज बनाने के कगार पर ले जाती है। इसका भयावह प्रकोप वर्ष २००५ में राजस्थान एवं म.प्र. के इलाकों में भयकर रूप से फैला, जिसमें संक्रमित व्यक्ति को तीव्र वेदना, बुखार, उल्टी के साथ सम्पूर्ण तंत्रिकातंत्र के ग्रसित होने पर शरीर की संधियों में तीव्र वेदना और जकड़ाहट, संज्ञाशून्यता आदि लक्षण प्रकट होते हैं। इसके प्रकोप से मीतमाल (राजस्थान) शक्तिपीठ के आसपास के लगभग ६-७ गांव प्रभावित थे। वहाँ के प्रबन्ध ट्रस्टी द्वारा आमंत्रित होने पर इस महाव्याधि से बचाने हेतु देव संस्कृति विश्वविद्यालय के समग्र स्वा. प्र. विभाग से विद्यार्थी एवं प्रशिक्षकों का एक दल यज्ञचिकित्सा सामग्री सहित पहुँच कर उपचार प्रारंभ किया। चिकनगुनिया से जो रोगी प्रभावित थे, उनकी संख्या लगभ ४०० से ६०० थी। इसके अलावा २००-३०० करीब ऐसे मरीज थे, जिन्हें तीव्र बुखार असंयमित विषम गति से आता था।

सर्वप्रथम सामूहिक रूप से ६-७ गावों में यज्ञ का नियमित सामूहिक क्रम स्वच्छता हेतु चलाया गया। फिर शक्तिपीठ पर नियमित चिकगुनिया एवं विषमज्वर की विशेष हवन सामग्री तथा कामन हवन सा. एवं गोघृत से प्रात: सायं सूर्य गायत्री मंत्र से २४ आहुतियां तथा ५ विशेष आहुतियां महामृत्युंजय मंत्र की प्रदान की गईं। प्राणाकर्षण प्राणायाम १५ मिनट तथा १५ मिनट विश्राम (यज्ञशाला में ही) निर्देशित किया जाता था, साथ ही प्रत्येक रोगी को

उन्हीं विशेष औषधियों के मिश्रण का, जिनकी आहुति दी जाती थी, काढ़ा ४० से ५० मि. ली. दोनों समय यज्ञोपरांत (प्राणायाम के पश्चात) पिलाया जाता था। औषधीय जल (षडंग जल) का सेवन हर समय कराया जाता था। यह क्रम लगभग ३ माह लगातार चला। इस हेतु प्रति सप्ताह विशेष हवन सामग्री शांतिकुंज से नियमित रूप से भेजी जाती थी।

इस प्रकार कुल १५०० से २००० लोगों को इस व्याधि से मुक्त किया गया। इसके प्रमाण-साक्ष्य की पुष्टि मीतमाल शक्तिपीठ प्रबन्धक समिति द्वारा भी की गई है।

२- एड्स (ओज क्षय) पर यज्ञ चिकित्सा का प्रभाव

सन् २००४ में शीरा, टी. अटली वाला ने यज्ञ और पर्यावरण विषय पर अनुसंधान करते हुए पाया है कि यज्ञ ही संसार का उत्पत्ति कर्त्ता है। प्रज्वलित अग्नि में जो भी पदार्थ डाला जाता है, वह जलकर शक्तिशाली ऊर्जा उत्पन्न करता है। परंतु यह पदार्थ की गुणात्मकता के ऊपर निर्भर करता है कि वह लाभदायक है या हानिकारक। इसी सिद्धांत को आधार मानकर यज्ञ चिकित्सा की जाती है।

आयुर्वेद का भी यही सिद्धांत है कि जो जड़ में है, वही चेतन में है और यज्ञ तथा मनुष्य एक दूसरे के लिए सृष्टिकाल से ही सृजेता द्वारा युग्म रूप में प्रेषित किये गये हैं। दोनों का पालन-पोषण एक दूसरे पर आधारित है। इस सिद्धांत को आधार मानकर युग ऋषि द्वारा प्रणीत यज्ञ चिकित्सा का प्रभाव आज की असाध्य मानी जाने वाली महव्याधि एड्स पर देखा गया। एड्स, जिसे कि एक्वायर्ड इम्यूनो डिफीसिएंसी सिंड्रोम कहा जाता है, इसमें उपार्जित रोग प्रतिरोधी क्षमता की शरीर में कमी के कारण शरीर में रोगों से लड़ने की शक्ति समाप्त हो जाती है। रोगी को ज्वर, श्वास-कास, डायरिया आदि जो भी होता है, वह ठीक नही होता है। रक्तकण नष्ट होने लगते है, जिससे रोगी धीरे-धीरे मृत्यु के कगार पर पहुँच जाता है। आधुनिक चिकित्सा जगत में इसका अभी तक कोई कारगर उपाय-उपचार नहीं है। अनुसंधान कार्य चल रहे हैं।

आयुर्वेद में, जो सृष्टि के आदि काल से सतत प्रवाहमान है, ओज क्षय के नाम से इस व्याधि का वर्णन किया गया है, जिसके कारण व्यक्ति का ओज क्षय होता है और व्यक्ति की सभी धातुएँ-रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र क्षीण (नष्ट) होती जाती हैं। जिससे व्यक्ति में शारीरिक

शक्ति का ह्रास होता है और धातु क्षय के कारण शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता खतम होने लगती है। इससे व्यक्ति अनेक गंभीर बीमारियों से ग्रसित हो जाता है। महाव्यधि से पीड़ित रोगी, जिन्हें एच. आई. वी. पॉजिटिव पाया गया तथा वे कई महीने तक अस्पताल में भर्ती रहे तथा तीनों समय नियमित रूप से दवाई-इंजेक्शन लेते रहे थे, विश्वविद्यालय द्वारा निर्मित शक्तिवर्धक हवन सामग्री तथा कॉमन हवन सामग्री का प्रयोग करने पर चौकाने वाले परिणाम प्राप्त हुए।

प्रारंभ में ओजवर्धक सामग्री एव कॉमन हवन सामग्री का प्रयोग बराबर अनुपात में कराया गया, जिसका परिणाम सकारात्मक तो मिला, परंतु शीघ्र नहीं। इस परीक्षण के बाद हविर्द्रव्यों के अनुपात में अंतर किया गया। ५० ग्राम की जगह ३० ग्राम विशेष (शक्ति वर्धक) सामग्री तथा १० ग्राम कॉमन हवन सामग्री को ३० ग्राम गाय के घी से मिश्रित करके २४ आहुतियाँ सूर्य गायत्री मंत्र से दोनों समय-सूर्योदय एवं सूर्यास्त (ठीक सूर्यास्त के समय ही) देने के लिए कहा गया। साथ ही उसी विशेष सामग्री का क्वाथ ४० मि. ली. दोनों समय पिलाया गया। इसके साथ में अनुलोम-विलेम प्राणायाम १५ मिनट तक कराया गया। इस प्रयोग से सप्ताह भर में ही आर्श्चजनक ढंग से सुधार आने लगा।

यद्यपि सामाजिक मर्यादा या संकोचवस रोगी खुले तौर पर यह स्वीकार नहीं कर पाते और इस बीमारी को सार्वजानिक भी नहीं करना चाहते। इसी कारण से इस व्याधि से पीड़ित रोगियों की संख्या, जिनका इलाज यज्ञ चिकित्सा द्वारा चल रहा है, कम है। परंतु वे अब पूर्ण रूपेण स्वस्थ हैं और सामान्य जीवन यापन कर रहें हैं।

इस व्याधि से पीड़ित व्यक्ति को यज्ञ चिकित्सा प्रारंभ करवाने का श्रेय गायत्री परिजन महाराष्ट्र के एक भाई को जाता है, जिन्होंने भर्ती मरीजों को प्राइवेट अस्पताल में ही यज्ञ करवाना प्रारंभ किया। शुरू में तो लक्षणों में कमी आई। ६ माह बाद परीक्षण करवाने पर पता चला कि T4 सेल्स में वृद्धि नहीं हुई, वह स्थिर हैं। फिर एक वर्ष बाद परीक्षण करवाने पर T4 सेल्स में आंशिक परिवर्तन दिखा और तब से सन् २००४ से मरीज स्वयं एक समय नियमित यज्ञ कर रहे हैं और दोनों समय क्वाथ ले रहे हैं तथा उत्तरोत्तर स्वास्थ्य वृद्धि की ओर अग्रसर हैं।

इसी प्रकार एड्स से पीड़ित गुजरात एवं म. प्र. के मरीज हैं, जो पिछले तीन वर्षो से इस प्रक्रिया द्वारा लाभ उठाकर सभी कार्य कर रहे हैं। इनके एलोपैथिक चिकित्सा सलाहकार अब स्वयं उनकी स्थिति देखकर वैकल्पिक चिकित्सा विधियों, जैसे यज्ञ चिकित्सा का सहारा लेने की सलाह देते हैं।

यहाँ यह बात समझ लेना चाहिए कि कितना भी कुशल वैद्य, चिकित्सक क्यों न हो, किसी के आयु की गारंटी नहीं ले सकता, परंतु प्रयास से आयु के समय को आगे बढ़ाया जा सकता है और क्षीण होते शरीर बल को समृद्ध किया जा सकता है।

३- मनोरोगों पर यज्ञ चिकित्सा का प्रभाव

वर्तमान युग सम्प्रेषण और सशक्तीकरण का है। सुख-सुविधा के सम्पूर्ण स्वचालित यंत्रों के साथ मनुष्य का जीवन मशीनों पर निर्भर हो गया है। आधुनिकता से लैस यांत्रिक वातावरण में भी मनुष्य जाति पूर्णरूपेण न स्वस्थ्य है, न सुखी। शरीर की अनगिनत व्याधियों के साथ सबसे ज्यादा प्रभावित है-व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य। आज मन का संतुलन इतना बिगड़ चुका है कि सुख की नींद लाख उपाय के बाद भी मनुष्य से कोशों दूर है।

आज दस में से हर सातवाँ व्यक्ति किसी न किसी मानसिक बीमारी से ग्रस्त है। इन्ही समस्याओं में मुख्य रूप से तनाव, अवसाद, कुंठा, ग्लानि, ईर्ष्या, दुश्चिंता आदि विकार हैं, जो व्यक्ति को किसी न किसी प्रकार जकड़े हुए हैं। इनके कारण व्यक्ति व्यथित है, हैरान-परेशान है। न तो घर में सामंजस्य है, न ही बाहर नौकरी में। विद्यार्थियों की अलग समस्या है, महिलाओं की अलग, आफिस और प्राइवेट सेक्टर्स में काम करने वालों की अलग।

इस प्रकार की तमाम मानसिक परेशानियों और मनोरोगों पर यज्ञ का प्रभाव देखा गया, तो जो रोगी कई वर्षों से नींद की गोलियाँ ले रहे थे, तनाव कम करने की दवा या इंजेक्शन किसी न किसी रूप में ले रहे थे, थोड़े दिनों के यज्ञ के पश्चात ही शांत और स्थिर चित्त होने लगे।

मनोविकार से ग्रसित रोगियों में यज्ञ का प्रयोग इस प्रकार किया गया। पहला वर्ग था-उच्च शिक्षा हेतु अध्ययनरत तथा कुछ शोधकार्य करने वाले युवाओं का, जिनकी आयु २० से ३२ वर्ष के बीच थी। इनमें लगभग २५ व्यक्ति थे, जिन्हें कुछ एक ही प्रकार की सामान्य परेशानियाँ थीं, जैसे अनायास गुस्सा आना, बात-बात पर खीझना, चिड़चिड़ाना और जल्दबाजी में

हर कार्य करना तथा मन ही मन डरते रहना कि कहीं कोई काम गलत न हो जाय, पता नही आगे सही होगा भी कि नहीं। कुछ व्यक्तियों को केवल नकारात्मक चिंतन आते थे और मन में हर समय एक प्रकार का भय बना रहता था। दस व्यक्तियों में, जिनमें चार विद्यार्थी एग्रीकल्चर संस्थान में शोध कार्य कर रहे थे तथा छ: प्राशासनिक सेवाओं की तैयारी में थे। उन्हें भविष्य को लेकर चिंता थी। रात में हर समय घबरा कर उठना तथा जब सोने का प्रयास करते थे, मन में यह चिंतन चलता था कि बिस्तर के नीचे कोई है और वे कभी कुछ अच्छा नही कर पाएँगे।

इन रोगियों में मानसिक दुर्बलता तथा डिप्रेशन (अवसाद) निवारक हवन सामग्री तथा व्याधियों हेतु निर्मित कॉमन हवन सामग्री एवं गौघृत का प्रयोग प्रात: सायं गायत्री मंत्र से २४ आहुतियों के साथ पलाश की समिधा से ताम्र धातु के यज्ञकुण्ड में किया गया। जिस कमरे में वे शयन करते थे, वहाँ नित्य चन्द्रमा के दर्शन की व्यवस्था थी। पलाश वृक्ष में चन्द्रमा को दूध का अर्घ्य, यज्ञोपरांत इस भाव के साथ कि हमारा मन-मस्तिष्क शांत हो, उद्विग्नता, उत्तेजना, डर समाप्त हो। उसी विशिष्ट समाग्री का चूर्ण (मस्तिष्क रोगों की) एक-एक चम्मच सुबह-शाम मिश्री युक्त गोदुग्ध से खाने को दी गयी। जो व्यक्ति किसी न किसी संस्था से या मिशन से जुड़े थे, उनमें तीसरे हफ्ते से पहले ही ६५ प्रतिशत लाभ देखने को मिला और जो सामान्य थे, उनमें ४ सप्ताह के भीतर सकारात्मक परिणाम दिखे तथा ५ से १० सप्ताह के बीच वे सभी परेशानियों से (जो उन्हे थी) मुक्त हुए। यह प्रतिशत लगभग ७० से ८० प्रतिशत रहा। फिर उन्हे उसी सामग्री और समिधा से केवल एक समय यज्ञ करने को कहा गया, जिससे वे पूर्ण रूपेण शांत चित्तता को प्राप्त होते गये। इस संदर्भ में कुछ रोगियों के पत्र भी धन्यावाद के तौर पर प्रेषित किये गये, जो विभाग के पास सुरक्षित हैं।

मनोविकारों के क्रम में जिसमें यज्ञ चिकित्सा का लाभ देखने का मिला, वह है मिर्गी से ग्रसित रोगी, जिनकी संख्या भी लगभग १०० के करीब थी। इस व्याधि से पीड़ित महिला वर्ग का प्रतिशत ६० था, जिनकी आयु १४ से ४० वर्ष के बीच थी और पुरुष वर्ग में भी १६ से ३५ वर्ष तक की संख्या ज्यादा थी। २५ के लभगभ पुरुष ४० वर्ष के ऊपर थे, जिन्हे मिर्गी का दौरा पड़ता था। इस प्रयोग समूह में एक समूह उन लड़कियों का था,

जो अविवाहित थीं और जिनकी आयु १४ से ३० के बीच थी। उन्हे भी मिर्गी का तीव्र दौरा पड़ जाता था, शरीर अकड़ कर निष्क्रिय हो जाता था। दाँत बैठना, आंखों की पुतलियों का ऊपर चढ़ना, मुख से झाग आना और जो वस्तु हाथ में हो, उसका छुड़ाना मुश्किल हो जाता था। इन्हे अपने कमरे में ही दोनों समय यज्ञ चिकित्सा करने का निर्देश दिया गया। सामान्य अवस्था में रहने पर उन्हे नासिका मार्ग से प्राणायाम द्वारा यज्ञीय धूम्र ऊर्जा को अधि काधिक मात्रा में ग्रहण करने के लिए कहा गया। क्योंकि नाक से जब श्वास अंदर खींची जाती है, तो वह सर्वप्रथम मस्तिष्क में जाती है। इससे नर्वस सिस्टम, जो कि संवेदना का केन्द्र होता है, यज्ञ ऊर्जा के सीधे सम्पर्क में आता है। फिर श्वास प्रमुख स्थान फेफड़े में जाती है। इसके साथ औषधि यों के सूक्ष्म एवं उपयोगी कण वायुभूत होकर मस्तिष्क के उन केन्द्रों तक पहुँचते है, जहां अन्य कोई दवा स्पर्श तक नहीं करती। अचेतन की गहन परतों तक यज्ञीय उर्जा का प्रवाह जाता है।

आयुर्वेद चिकित्सा में धूम्र नस्य एवं धूपन विधि का प्रयोग सभी प्रकार के उन्माद, अपस्मार, मिर्गी आदि रोगों हेतु प्रशस्त माना गया है। बेहोशी की हालत में कुछ सुँघाना इसी चिकित्सा का एक अंग है। मिर्गी हेतु विशेष हवन सामग्री एवं कॉमन हवन सामग्री तथा गौघृत का प्रयोग चंद्रगायत्री मंत्र के साथ किया गया तथा उसी विशेष औषधि सामग्री के सूक्ष्म चूर्ण का प्रयोग शहद एवं मलाई के साथ सुबह-शाम करने को कहा गया। ४० दिन तक प्रारंभ में यज्ञ में दोनों समय चन्द्रगायत्री से, ४० दिन तक प्रातः काल सूर्योदय के समय १२ बार गायात्री मंत्र एवं १२ बार सूर्य गायत्री मंत्र से आहुतियाँ दी गयीं। शाम को नियमित रूप से चन्द्रमा के दर्शन एवं २४ बार चन्द्रगायत्री मंत्र का उचारण कराया गया, फिर उपरोक्त औषधि सेवन कराया गया। यह क्रम महिलओं में ३ साइकिल (अर्थात ९० दिन ३ मासिक चक्र के अंतराल पर) करने पर ८० प्रतिशत से अधिक महिला रोगियों को पूर्ण आराम मिला।

पुरुष वर्ग में यह प्रयोग मंत्रों की भिन्नता के आधार पर किया गया। जिनका रक्तचाप भी बढ़ता था, उनमें सिर्फ चन्द्र गायत्री मंत्र का ही नियमित प्रयोग एवं पलाश की समिधा अनिवार्य थी। ४०-४० दिन के दो कोर्स अर्थात ८० दिन तक यह क्रम चला। इन्हे आहार में नमक-मिर्च का परहेज कराया

गया तथा यज्ञ के समय सफेद वस्त्र धारण कराये गये। इस प्रकार पुरुषों में आश्चर्यजनक परिणाम देखने को मिले। जो व्यक्ति इस व्याधि से ग्रसित थे, उन सभी ने किसी न किसी रूप में रोग निवारण के प्रति विश्वविद्यालयीन चिकित्सादल का आभार व्यक्त किया है।

इसी प्रकार मंद बुद्धि एवं मानसिक दुर्बलता से ग्रसित बच्चों पर यज्ञ चिकित्सा का प्रयोग बहुत ही असरकारक रहा। इसमें ३ से १५ वर्ष के बालक-बालिकाओं पर नियमित सरस्वती गायत्री मंत्र की आहुतियों का प्रयोग किया गया और कुछ बच्चों पर अभी भी निरंतर जारी है, जिनमें धीरे-धीरे बौद्धिक क्षमता का विकास हो रहा है। छोटे बच्चों को माता-पिता या कोई भी बुजुर्ग गोद में लेकर यज्ञ प्रक्रिया संपन्न करता है तथा विशेष औषधि सामग्री के सूक्ष्म चूर्ण का सेवन मिश्री तथा मलाई के साथ उन्हे कराता है।

४-वातव्याधि पर यज्ञ का प्रभाव

इस महाव्याधि से आज हर व्यक्ति किसी न किसी प्रकार प्रभावित है। पहले यह माना जाता था कि बात रोग, सन्धिवात ५० वर्ष की उम्र के बाद ही होता है, परंतु अब यह कथन मिथ्या हो चुका है। वर्तमान जीवन शैली, रहन-सहन, परिवेश के बदलाव के फलस्वरूप यह विकृति हर घर में किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

फैजाबाद उ. प्र. के गांव में विभाग के विद्यार्थियों द्वारा इन्टर्नशिप के दौरान यह पाया गया कि उस गाँव में तथा साथ के और दो गांवों में घुटने का दरद, कमर दरद और गठिया बात जैसी समस्या हर ५ में से एक महिला को (खेतों में गावों में कार्यरत ग्रामीणों सहित) है। जिनकी आयु कम है, उन्हे भी तथा जिनकी आयु ४० से ६० वर्ष है, उन्हे भी।

वहां के स्थानीय चिकित्सकों के सहयोग से परीक्षण करवा कर ग्रामीणों और शक्तिपीठ के कार्यकर्त्ताओं के सहयोग से यज्ञ चिकित्सा का क्रम प्रारंभ किया गया। दो सप्ताह के लिये यह प्रयोग, जिसमें बात व्याधिनाशक सामग्री, कॉमन हवन सामग्री और गौ घृत का प्रायोग ३०+१०+३० के अनुपात में २४ बार सूर्य गायत्री मंत्र के साथ किया गया। प्रातः सूर्योदय काल में लम्बी सांस लेना, रोकना, छोड़ना करवाया गया, अधिकतर को प्राणायाम नही आता था। साथ ही विशेष सामग्री का काढ़ा एक समय दिया गया। सातवें दिन ही कुछ महिलाओं का कथन था कि हम खेत पर अब आसानी से कार्य कर सकती हैं, दरद में आराम है, बोझ भी उठा सकती हैं। इन ४० महिलाओं में सर्वाइकल और एंकाइलोजिंग स्पॉडिलाइटिस तथा अन्य १७ स्त्री-पुरुष दोनों में साइटिका की शुरुआत थी, जिनका ई. एस. आर., कैल्सियम और यूरिक एसिड भी Test कराया गया था, बढ़ा हुआ था, इन्हे ७८ प्रतिशत लाभ मिला। साथ ही उन्हे और ४० दिन नियमित यज्ञ करने का निर्देश दिया तथा आहार-विहार संबंधी संयम पालन करने के लिए कहा गया, जिससे रोग से मुक्ति मिली।

वातव्याधि के क्रम में ही कुछ परिजन बदायूँ, आजमगढ़ तथा गाजीपुर के थे। इनमें लगभग १७ में से ८ महिलाएँ उच्च रक्तचाप के कारण पक्षाघात का शिकार हो गई थीं। इनकी आयु ५५ से ७० के बीच थी। ९ पुरुष जिन्हे हेमीप्लेजिया (अर्धांग, फालिज, लकवा), पैराप्लेजिया तथा फेसियल पैरालिसिस था।

इन रोगियों की यज्ञ चिकित्सा पक्षाघात नाशक हवन सामग्री से की गयी। दोनों समय सूर्य गायत्री मंत्र से गूलर, पीपल की सामिधा के साथ २४ आहुति देने को कहा गया तथा यह निर्देशित किया गया कि अग्नि लगातार प्रज्वलित होती रहे और यज्ञ के दौरान रोगी व्यक्ति कम वस्त्र पहने तथा पतले आसन पर रहे। साथ ही बिस्तर के समीप ही यज्ञ कुण्ड हो। यदि रोगी सहारे से बैठ सके, तो आराम दायक स्थिति में बैठकर धीरे-धीरे प्राणायाम भाव पूर्वक करता रहे और यज्ञ कुण्ड जब तक पूरा ठण्डा न हो, वहां से हटाया न जाय। साथ ही विशेष सामग्री का कषाय दोनों समय पिलाने का निर्देश दिया गया और मालिश तथा हल्का व्यायाम-हाथ पैर जितना आसानी से उठ सके, उतना करने के लिए कहा गया।

यह क्रम लगभग ४ माह लगातार करने पर ७० प्रतिशत रोगियों को धीरे-धीरे पूर्ण आराम हुआ, जिससे वे अपना जीवन क्रम सामान्य रूप से पुनः करने लगे।

वातव्याधि यद्यापि आयुर्वेद के अनुसार ८० प्रकार की होती है। आर्थ्रराइटिस उनमें से एक है। आधुनिकमतानुसार भी आर्थ्रराइटिस के कई भेद हैं। इनसे संबंधित कई मरीज भी यज्ञचिकित्सा में सम्मिलित हुए, जिनमें युवा वर्ग के नौकरीपेशा पुरुष लगभग ३५ थे। ऐसे लोगों ने यज्ञोपचार से लाभ प्राप्त किया, जो आफिस में १०-१२ घण्टे एक ही पोजीशन में बैठकर कार्य करते थे। उन्हे सर्वाइकल अटेक-गर्दन के जोड़ में गम्भीर समस्या थी तथा कुछ जिन्हे झुकने में परेशानी थी। लगभग ३ माह लगातार वातव्याधि नाशक विशिष्ट हवन सामग्री, कॉमन हवन सामग्री तथा गौघृत से यज्ञोपचार लिया। साथ ही १५ मिनट का नाड़ी शोधन प्राणायाम यज्ञोपरांत वहीं किया, जिससे उत्तरोत्तर सन्धि संचालन में आराम होता चला गया और वे बिना नेक बेल्ट या बेस्ट बेस्ट के कार्य करने लगे।

५-दमा-अस्थमा पर यज्ञ का प्रभाव

जिस गति से हमारे संसाधनों का विस्तार हुआ है और हर व्यक्ति कृत्रिम जीवन जीने को बाध्य है, उसी गति से बीमारियों में इजाफा भी हुआ है। अकेले अस्थमा के मरीज ही कई करोड़ों में (लगभग १० करोड़) भारत वर्ष में हैं और इनमें उत्तरोत्तर वृद्धि भी हो रही है।

इसी रोग से पीड़ित बिहार के एक चिकित्सक की पत्नी, जो कि मिशन के ही परिजन हैं, लगभग १४ वर्ष से पीड़ित थीं। सभी पैथी कर चुके चिकित्सक महोदय थक चुके थे। वे स्वयं भी होम्योपैथी के अच्छे प्रैक्टिशनर हैं। अंततः यज्ञ चिकित्सा का सहारा लिया गया। अस्थमा निवारक हवन सामग्री लेकर यज्ञोपचार किया गया। दो माह के अंदर ही उन्हे ६५ प्रतिशत दमा में आराम मिला। उसके बाद उन्होने फिर ३ माह लगातार एक समय यज्ञ कराया और उसी विशेष सामग्री का काढ़ा बनाकर पिलाया, जिससे उनकी पत्नी पूर्ण रूपेण स्वस्थ हो गयीं। इस परिणाम के बाद स्वयं की क्लीनिक का उन्होने विस्तार किया और वसंत पर्व (सन् २००८, ११ फरवरी) से यज्ञ चिकित्सा शिविरों का आयोजन प्रारंभ किया। अब वहाँ अस्थमा, मधुमेह, हृदयविकार और चर्मरोग नामक बीमारियों की यज्ञ चिकित्सा चल रही है और रोगी पूर्ण स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर रहे हैं।

इसी प्रकार पूर्वोत्तर जोन-पलामू (झारखण्ड) में मिशन के सक्रिय कार्यकर्त्ताओं के सहयोग से यज्ञ चिकित्सा के ८ दिवसीय आवासीय शिविर का आयोजन कराया गया। जिसमें आर्थ्रराइटिस, अस्थमा, मधुमेह, प्रदररोग, मानसिक दुर्बलता, कफ विकार (चर्मरोग), उच्च रक्तचाप आदि के मरीजों की संख्या २०० थी। इस हेतु विभाग से चिकित्सकदल एवं सहायक छात्र-छात्राओं की १२ सदस्यीय टोली सामग्री सहित गयी थी।

इस क्रम में सभी का पूर्व एवं पश्चात परीक्षण स्थानीय चिकित्सकों की सहायता से कराया गया। ८ दिन के यज्ञ चिकित्सा उपचार के पश्चात आगे एक माह लगातार करने का निर्देश दिया गया, जिसमें सभी के लाभ का प्रतिशत ७५ था।

यज्ञ चिकित्सा के शिविर श्रृंखला के क्रम में पंचकुला चण्डीगढ़ में मधुमेह, मोटापा, आर्थ्रराइटिस, हृदयरोग, उच्चरक्तचाप, ओजक्षय, मानसिक दुर्बलता, हार्मोनल विकृति आदि पर यज्ञ चिकित्सा का प्रभाव देखा गया, जिसके सत्परिणाम ७०-८० प्रतिशत प्राप्त हुए।

यज्ञ चिकित्सा हेतु समग्र स्वास्थ्य प्रबन्धन विभाग द्वारा जो प्रक्रिया निर्धारित की गयी और जिस निर्धारित मंत्र, समय, समिधा, विधि का निर्देश किया गया, उस आधार पर कई क्षेत्रों के चिकित्सा विशेषज्ञ स्वयं यह उपचार कर रहे हैं। इनमें पुणे, नादेड़, सूरत, बिहार, उडीसा, अहमदाबाद, बड़ोदरा, मुम्बई, बंगलौर, झारखंड आदि क्षेत्र प्रमुख रूप से हैं। यहां नियमित यज्ञ चिकित्सा द्वारा विभिन्न रोगों का उपचार चल रहा है।

६-कैंसर रोग की यज्ञ चिकित्सा

यज्ञ चिकित्सा के इस क्रम में सर्वाधिक संख्या कैंसर रोग की है, जिसमें यह प्रणाली शीघ्र स्वास्थ्य लाभ प्रदान कर रही है। प्रतिस्पर्धा के इस युग में संचार तंत्र पर आधारित कृत्रिम जीवन शैली ने जहाँ अनुदान दिये हैं, वहीं अभिशाप के रूप में भी मानवीय सभ्यता को मृत्यु के निकट ला खड़ा किया है। इन्ही सब दुष्परिणामों की देन है-कैंसर, जिसे अर्बुद के नाम से भी जाना जाता है। कैंसर रोग में रोगी के शरीर में कहीं भी कोशिकाओं की अनियंत्रित वृद्धि होने लगती है या किन्ही कारणों से शरीर की कोशिकाओं का विभाजन अनियंत्रित एवं तीव्रगति से होता है। इसका स्थायी इलाज नहीं है। कई प्रकार कैंसर के ऐसे हैं जो कीमोथेरेपी, रेडियोथेरेपी, सर्जरी के बाद भी पुनः फैलने लगते हैं। एक बार आपरेशन कराने या पूरी सिंकाई कराने के बाद भी दुबारा वृद्धि होने लगती है। इस प्रकार के केस में यज्ञ चिकित्सा सम्पूर्ण उपचार साबित हो रही है। नियमित रूप से कम से कम ६ माह तक यज्ञ चिकित्सा करने से पुनः कैंसर कोशिकाओं की वृद्धि नही हुई। ऐसे मरीजों की संख्या बहुत है जो अब पूर्णरूपेण रोगमुक्त हो चुके हैं। कैंसर से मुक्त हुऐ मरीजों में महिलाओं की संख्या सर्वाधिक है। इनमें से कुछ उदाहारण इस प्रकार हैं।

३८ वर्षीय (रुड़की निवासी) महिला, जो दिल्ली में कार्यरत हैं। इन्हे स्तन कैंसर हुआ था। दो वर्ष लगातार सर्म्पूण चिकित्सा कराने के बाद भी पीठ (स्पाइनल कार्ड) में दरद रहने लगा। जांच कराने पर पता चला कि पुनः कैंसर की शुरुआत हो गई है। सन् २००५, नवम्बर से इन्होंने यज्ञ चिकित्सा प्रारंभ की। प्रारंभ में तीन माह करने के बाद पुनः जांच कराई गयी, तो ज्ञात हुआ कि कैंसर कोशिकाओं की वृद्धि नही हुई। इन्होने यज्ञ

चिकित्सा चालू रखी। पुनः ३ माह बाद जांच कराने पर रिजल्ट निगेटिव आया। इसके बाद भी इन्होने सावधानी के तौर पर ४० दिन तक यज्ञ और क्वाथ का सेवन लगातार जारी रखी।

इस उपचार क्रम में प्रारंभ में दोनों समय यज्ञ और क्वाथ, फिर अगले तीन माह में भी दोनों समय सूर्य गायत्री मंत्र की आहुति और १० बार नाड़ी शोधन प्राणायाम किया। फिर अगले ४० दिन मात्र सुबह यज्ञ और औषधि चूर्ण रूप में ली गई तथा प्राणायाम जारी रखा गया। इस प्रकार पूरे ६ माह तक यज्ञ चिकित्सा करने से वह रोगमुक्त हुई। इससे यह स्पष्ट हुआ कि यज्ञ कोशिकाओं को स्वस्थ बनाने और उनके वृद्धि-विकास के जो तथ्य सन्निहित हैं, वह शत प्रतिशत सही व विश्वसनीय हैं।

इसी प्रकार बनारस क्षेत्र की ५५ वर्षीय एक महिला गर्भाशय कैंसर से ग्रस्त थी। उन्हे दो बार संक्रमण हुआ। सर्जरी के बाद भी इन्होंने लगातार १०१ आहुतियाँ सूर्य गायत्री एवं महामृत्युजंय की सिर्फ अश्वत्थ वृक्ष की समिधा के साथ दिया, साथ में कैंसर नाशक विशेष सामग्री का एक-एक चम्मच चूर्ण सुबह-शाम सादे जल के साथ सेवन किया।

कैंसर के ऐसे बहुत से रोगी हैं, जिन्हे यज्ञ चिकित्सा से पूर्ण लाभ हुआ। वर्तमान में मात्र गोरखपुर क्षेत्र के १८ ऐसे मरीज हैं, जिनमें ६ महिलायें तथा १२ पुरुष हैं, जिन्हे किसी न किसी प्रकार का कैंसर था। अब वे यज्ञ चिकित्सा से लाभान्वित हो रहे हैं। इसी प्रकार सूरत के एक परिजन, जिन्हे, ब्लड कैंसर था, यज्ञोपचार से रोगमुक्त हुए। अभी वे यज्ञ कर रहें है। इससे प्रभावित होकर गुजरात और पुणे के मूर्धन्य चिकित्सा बिशेषज्ञों द्वारा कैंसर के मरीजों पर यज्ञ चिकित्सा का प्रयोग किया जा रहा है और परिणाम भी सकारात्मक प्राप्त हो रहे हैं।

गोरखपुर एवं मध्यप्रदेश की दो महिला रोगी, जिन्हे पहले गर्भाशय कैंसर हुआ था, फिर कमर दर्द रहने लगा। डेढ़ वर्ष बाद जांच कराने पर कैंसर की पुष्टि हुई, तब यज्ञ चिकित्सा का सहारा लिया। ४ माह लगातार यज्ञोपचार करने के बाद जाँच से स्पष्ट हुआ कि कैंसर कोशिकाओं की पुनः वृद्धि नही हुई और रिजल्ट निगेटिव आया। इसी प्रकार पेट के कैंसर के ४ पुरुष, जिनमें दो बिहार के तथा दो उत्तरप्रदेश-बाराबंकी क्षेत्र के हैं, जिनकी उम्र ३५ से ७२ के बीच है, आंत्रनली संबंधी विकृति से त्रस्त थे। यज्ञोपचार

से सारे लक्षण धीरे-धीरे समाप्त होकर लगभग ५ माह बाद पूर्ण रूपेण स्वस्थ होकर निरतंर स्वास्थ्य लाभ की ओर अग्रसर हैं।

यज्ञ चिकित्सा आयुर्वेद के अनुसार पंचतत्वों पर आधारित समग्र चिकित्सा प्रणाली है। समूची सृष्टि पांच तत्वों से मिलकर बनी है। जड़ में इन्ही के द्वारा समानता व समांजस्य है। महर्षि सुश्रुत चिकित्सा विधियों में सर्वप्रथम पंचतन्मात्राओं के सामंजस्य की बात करते हैं, क्योंकि साम्यावस्था स्वास्थ्य और वैषम्यावस्था रोग है। हमारा शरीर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध के माध्यम से ही सूक्ष्म आहार, औषधि आदि ग्रहण करता है और यज्ञ में इनका समन्वित रूप प्रयुक्त होता है। यथा-

आकाश- स्वर- उच्चारित मंत्रों की शक्ति (लयबद्ध मंत्रोच्चार)
वायु- स्पर्श- ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय में स्पर्श द्वारा प्राणों का आवाहन
तेज- रूप- अग्नि का स्वाभाविक रूप, प्रज्वलित अग्नि लौ
जल- रस- प्रयुक्त औषधियों एवं घृत का सूक्ष्म होकर अवशोषण
पृथ्वी- गंध- नासिका द्वारा धूम्र का नस्य

रोग निवारण हेतु यदि वर्तमान वैकल्पिक चिकित्सा विधियों का समावेश यज्ञ थेरेपी के रूप में देखें, तो भी यज्ञ में सम्पूर्णता-समग्रता इस प्रकार समाहित है-

- म्यूजिक थेरेपी- सस्वर रोगानुसार प्रयुक्त मंत्रोच्चार
- एरोमा थेरेपी- नासिका द्वारा धूम्र नस्य
- प्रेयर थेरेपी- स्वस्तिवाचन, स्पर्श, जल अभिसिंचन, घृत अवघ्राण, भस्म धारण, शान्तिपाठ, सूर्यअर्घ्यदान आदि।
- कलरथेरेपी- अग्नि का प्रज्वलित रूप दर्शन आदि।

यज्ञ चिकित्सा विधि- जिसे रोग निवारण हेतु प्रयुक्त किया गया- कर्मकाण्ड- प्रारंभिक षट्कर्म (अथवा समयानुसार आवश्यक सम्पूर्ण कर्मकाण्ड)

- अग्नि प्रज्वलन
- स्तवन
- आज्याहुति
- चिकित्सा हेतु निर्दिष्ट मंत्र से २४ आहुतियाँ,
- घृतअवघ्राण
- प्राणायाम-चिकित्सक के परामर्शानुसार-नाड़ी शोधन, अनुलोम-विलोम,

प्राणाकर्षण प्राणायाम आदि।

- समय-सूर्योदय एवं सूर्यास्त
- समिधा-रोगानुसार
- मंत्र-रोगानुसार
- आवश्यक हवन सामग्री-विशेष सामग्री (रोग निवारक)
- कॉमन हवन सा. १०-३० ग्राम. एवं गौघृत-+३० ग्राम,
- आवश्यक आहुति मात्रा-रोगानुसार
- आवश्यकतानुसार औषधि सेवन-विशिष्ट हवन सामग्री का सूक्ष्म चूर्ण एवं क्वाथ आदि।
- श्रेष्ठ समिधा- रोगों की प्रकृति के अनुसार-यथा-पलाश, चन्दन, खदिर, पीपल, गूलर, बरगद, शमी, छोंकर, आम, नीम आदि।
- प्रयुक्त मंत्र-गायत्री मंत्र, सूर्य गायत्री मंत्र, चन्द्र गायत्री मंत्र, सरस्वती गायत्री मंत्र।

ब्रह्मवर्चस शोध सस्थान एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा प्रयुक्त चिकित्सा से सभी प्रकार के रोगों में चमत्कारिक परिणाम प्राप्त हुए हैं। चूंकि यज्ञ एक सम्पूर्ण उपचार प्रकिया है, अतः इससे सभी प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोगों से मुक्ति मिलती है। यज्ञ चिकित्सा में वे सभी आधार मौजूद हैं, जो रोगी को रोग मुक्त कर सकें और आयु की रक्षा कर उसे दीर्घजीवी बना सकें।

परिशिष्ट-२

यज्ञोपचार द्वारा रोगशमन के कुछ अनुसंधानात्मक प्रमाण

★★★★★★★★★★

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के शोधार्थियों का शोधनिष्कर्ष

क्षयरोग निवारण में यज्ञ की महती चिकित्सकीय भूमिका

गायत्री और यज्ञ वैदिक संस्कृति के आधारभूत तत्व हैं। युगऋषि वेदमूर्ति तपोनिष्ट परम पूज्य गुरुदेव पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने इन दोनों को वैज्ञानिक अध्यात्मवाद के माध्यम से पुनर्जागृत किया।

यज्ञ उसमें अर्पित किये गये पदार्थों को अग्नि की तापीय ऊर्जा एवं मंत्रों की सोनिक तरंगों के माध्यम से सूक्ष्मीकृत कर अधिकतम उपयोगी बनाने की वैज्ञानिक विधि है। यज्ञीय प्रक्रिया में विशेष प्रकार से निर्मित यज्ञकुण्ड में प्रज्ज्वलित अग्नि में जड़ी-बूटियों एवं विभिन्न औषधीय पौधों से निर्मित हवन सामग्री से आहुति दी जाती है। इस दौरान यज्ञाग्नि में धीमी गति से दहन, ऊर्ध्वपातन और जड़ी-बूटियों, औषधियों एवं विभिन्न पोषक तत्वों का वाष्पीय रूप में परिवर्तन होता है।

वैदिक ग्रंथों में वर्णित असंख्य आध्यात्मिक लाभों के अलावा यज्ञ के स्वास्थ्य संवर्धन एवं वातावरण का परिशोधन जैसे दो महत्वपूर्ण लाभ भी हैं। यज्ञ जब छोटे रूप में संपन्न किया जाता है, तो इसे होम, हवन या अग्निहोत्र भी कहा जाता है।

सामान्य तौर से यज्ञकुण्ड उलटे पिरामिड के आकार का होता है, जो कि बदलते तापमान को निर्धारित करने के साथ ही ऊर्जा के निस्सारण को भी सुनिश्चित करता है। यज्ञकुण्ड की आकृति यज्ञ के प्रकार एवं उद्देश्य के अनुसार निर्धारित की जाती है एवं यज्ञकुण्ड का आकार यज्ञ में भाग लेने वाले व्यक्तियों की संख्या, यज्ञ प्रयोग का उद्देश्य एवं प्रभाव में आने वाले दायरे के आधार पर निर्धारित किया जाता है।

यज्ञ चिकित्सा के संदर्भ में जो नूतन अनुसंधान किया गया है वह बहुत ही महत्वपूर्ण व जनोपयोगी है। इस तरह के विशेष अनुसंधान को डॉक्टर प्रणव पण्ड्या एम.डी., कुलाधिपति, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार-उत्तराखंड के निदेशन में किये गये अपने शोधग्रंथ "Some Investigations into the Chemical & Pharmaceutical aspects of Yagyopathy : Studies in Pulmonary Tuberculosis." में मीनाक्षी रघुवंशी ने इनहेलेशन थेरेपी में प्रयोग होने वाले फाइटोकेमिकल्स के उल्लेख के साथ ही आयुर्वेदिक वनौषधियों का टी.बी. (ट्यूबरकुलोसिस) अर्थात क्षयरोग के कुछ केसों में औषधीय परीक्षणों के साथ वर्णन किया है। यद्यपि जितने भी इस तरह के संदर्भों का वर्णन अभी तक मिला है, वह मरीजों के अनुभवों का, उनके अपने लाभों के रूप में वर्णन मिला है या फिर एक या दो व्यक्तिगत केस स्टडी का बिना वैज्ञानिक विश्लेषण के साथ अध्ययन हुआ है।

वैज्ञानिक सर्वेक्षण बताते हैं कि विश्व भर में फेफड़ों की टी.बी. एक बहुत बड़ी स्वास्थ्य समस्या बनती जा रही है। अकेले भारत में ही लगभग ८०,००० नये मामले प्रतिवर्ष दर्ज किये जाते हैं। दवाओं के प्रति क्षयरोग का बढ़ता प्रतिरोध एक अलग गंभीर समस्या है।

यज्ञ के दौरान मंत्रों के सस्वर उच्चारण एवं गहरी श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया के कारण मुख एवं नासिका के माध्यम से स्वास्थ्योपयोगी धूम्र ऊर्जा, वाष्प एवं गैसें, जो कि यज्ञाग्नि में हवन सामग्री की आहुति के पश्चात् उत्पन्न होती हैं, शरीर के अंदर पहुँचती हैं। इस प्रकार यज्ञ चिकित्सा धूम्रीकृत जड़ी-बूटियों (वनौषधियों) को फेफड़ों में प्रवेश कराती है और फेफड़ों के अन्यान्य विकारों के साथ-साथ फेफड़ों की टी.बी. के लिए भी उपयोगी होती है।

इस शोधकार्य का मूल उद्देश्य प्राचीन यज्ञ चिकित्सा का क्षयरोग की चिकित्सा के माध्यम से वैज्ञानिक प्रतिपादन करना है।

यज्ञोपैथी के इन प्रयोगों में जिस हवन कुण्ड का प्रयोग किया गया है, वह कमल के आकार का पद्मकुण्ड है। यह शांतिकुंज, हरिद्वार, उ.खं. के ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के यज्ञोपैथी की प्रयोगशाला में अवस्थित है। इस

कुण्ड का आकार सामान्य हवन कुण्ड के आकार से लगभग छः-सात गुना ज्यादा बड़ा है।

यह प्रयोगशाला कांच की दीवारों से घिरी है। इसके साथ ही इसमें वायु के नियंत्रित आवागमन की सुविधा (वेन्टीलेशन) के साथ ही एक्झास्ट सुविधा भी छत के माध्यम से दी गई है, जिसे आवश्यकतानुसार किसी भी उपकरण से जोड़कर चिकित्सकीय गैसों, वाष्पों को एकत्रित करके विश्लेषण किया जा सकता है। यह प्रयोगशाला पेड़-पौधों, वनौषधियों से घिरी हुई है तथा प्रदूषण से मुक्त एवं शांत वातावरण में स्थित है।

आयुर्वेदिक ग्रंथों में क्षयरोग के लिए जिन जड़ी-बूटियों-वनौषधियों के प्रयोग का वर्णन है, उनके ही जौकुट पाउडर को हवन सामग्री के रूप में हवनोपचार में प्रयोग किया गया है। उनके पादपीय एवं रासायनिक गुणों के साथ ही एन्टीट्यूबरकुलर, एन्टीबैक्टीरियल एवं इम्यूनोमॉड्युलेटरी गुण, जो आधुनिक वैज्ञानिक ग्रंथों में वर्णित हैं, उनका भी विस्तृत अध्ययन किया गया है। इस हवन सामग्री में उच्च गुणों वाली ताजी एवं वीर्यवान जिन एन्टीट्यूबरकुलर वनौषधियों-जड़ी-बूटियों का प्रयोग पूरी सावधानी के साथ किया गया है, उनके नाम इस प्रकार हैं-वासा

1- Adhatoda vesica-Nees. - वासा
2- Aegle marmelos- correa. - बिल्व
3- Aquilaria agallocha-Roxb. - अगर
4- Asparagus racemosus-Willd. - शतावर
5- Cedrus deodara-Linn. - देवदार
6- Capparis moonii-Wright. - रुदंती
7- Cinamomum tamala-Nees - तेजपत्र
8- Commiphora mukul-Engl. - गुग्गुल
9- Convolvulus microphyllus-Sieb.ex. Spreng. - शंखपुष्पी
10- Desmodiun gangeticum-D.C - शालपर्णी
11- Gmelina arborea-Linn. - गंभारी
12- Hordeum vulgare-Linn. - जौ

13- Dendrobium macraei-Lindl. - जीवंती
14- Mesua ferrae-Linn. - नागकेशर
15- Myristica fragrans-Houtt. - जायफल (जावित्री)
16- Nelumbium speciosom-Willd. - कमल
17- Oroxylum indicum-Vent. - श्योनाक
18- Santalum album-Linn. - श्वेत चंदन
19- Pterocarpus santalinus-Linn.F. - लाल चंदन
20- Sesamum indicum-Linn. - तिल
21- Solanum xanthocarpum-Schard. - छोटी कंटकारी
22- Solanum indicum-Linn. - बड़ी कटेरी
23- Swertia chirata - Buch.Ham. - चिरायता
24- Syzygium aromaticum- Merr. - लौंग
25- Tephrosia purpurea-Linn. - शरपुंखा
26- Tinospora cordifolia-Miers. - गिलोय
27- Uraria picta -Desv. - पृश्निपर्णी
28- Valeriana wallichii-D.C. - तगर
29- Vitis vinifera-Linn. - दाख-मुनक्का
30- Withania somnifera-Dunal - अश्वगंधा।

उपरोक्त जड़ी-बूटियों से निर्मित हवन सामग्री से यज्ञ करने के दौरान जो तापीय परिवर्तन एवं धीमी गति से जो कम्बशन (दहन) होता है, उसके विस्तृत अध्ययन के साथ ही जो संभावित प्रतिक्रियाएँ एवं निकलने वाले महत्वपूर्ण फाइटोकेमिकल्स के साथ उनके एन्टीबैक्टीरियल (एन्टी मायकोबैक्टीरियल) इम्यूनोमॉड्युलेटरी, एवं अन्य महत्वपूर्ण क्रियाओं के साथ संपूर्ण जड़ी-बूटियों के सिनर्जिस्टिक एवं एन्टागोनिस्टिक (सहक्रियात्मक एवं प्रतिरोधी) प्रभावों का भी अध्ययन किया गया। इस रासायनिक अध्ययन से प्राप्त कुछ महत्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार हैं-

१. कुछ एरोमैटिक यौगिक एवं निम्न फैटी एसिड्स यज्ञ की औषधीय धूम्र ऊर्जा के साथ चारों तरफ फैल जाते हैं, जो कि कोलाइडल वाहक का कार्य करते हैं।

२. वसायुक्त पदार्थों के दहन से कई हाईड्रोकार्बन्स तथा दूसरे रसायन जैसे ग्लिसरॉल, ऐसीटोन बॉडीज, पाइरूविक एल्डिहाइड, ग्लाइकॉल, ग्लाइक्सॉल आदि प्राप्त होते हैं। इनमें से कई एन्टीबैक्टीरियल हैं।

३. यज्ञ में जिस हवन सामग्री का प्रयोग किया गया, उसकी जड़ी -बूटियों में सौ से भी अधिक ऐसे फाइटोकेमिकल्स पाये गये जो कि महत्वपूर्ण एन्टीमाइक्रोबियल क्रिया दिखाते हैं।

४. इनमें २० से अधिक ऐसे फाइटोकेमिकल्स हैं, जो कि महत्वपूर्ण एन्टी-ट्यूबरकुलर क्रिया के लिए जाने जाते हैं तथा यज्ञ से निकलने वाली यज्ञीय ऊर्जा, चिकित्सकीय गैसों एवं वाष्प में इनके उपस्थित होने की संभावना है।

५. तापमान के काफी उच्चतम बिंदु तक पहुँचने के कारण एवं उच्चतम एवं निम्नतम तापामानों के पर्याप्त सीमा तक परिवर्तन के कारण वे पदार्थ, जिनका वाष्पांक २००-३५० ब के बीच होते हैं, वाष्पित एवं विसरित हो जाते हैं। इस श्रेणी में जैसे चंदन, अगर, शीशम, देवदार आदि के तेल, विभिन्न टर्पेन्स तथा उच्च वाष्पांक वाले एरोमैटिक पदार्थ आदि शामिल हैं। बहुत सारे टर्पेन्स (जैसे वोरनियॉल, जेरानियाल, नियोल, टर्पिनियॉल आदि) यज्ञ के चारों ओर के वातावरण में पाये जाते हैं। इनमें से अधिकांश एन्टीमाइकोबैक्टीरियल की तरह प्रतिक्रिया दर्शाते हैं।

६. टर्पेन्स की बैक्टीरिया के विरुद्ध क्रियाओं की जो क्रियापद्धति स्वीकार की गई है, उनसे कोशिकीय झिल्ली की फॉस्फोलिपिड वायलेयर में व्यवधान डालना, विभिन्न एंजाइमों (HMG. रिडक्टेस) को विखंडित करना, जेनेटिक पदार्थों का विखंडन करना या नष्ट करना अथवा उन्हें अक्रियाशील बनाना शामिल है।

यज्ञीय हवन सामग्री में प्रयुक्त वनौषधियों में पाये जाने वाले कुछ फाइटाकेमिकल्स इस प्रकार हैं-

Name of Med. Plants	Name of Phytochemicals
Giloya	Palmatine, Magnoflorine
Nagkesar	Ouercitrin, Gentisein
Jayphal	α-Pinene, 1, 8-Cineol, α-Terpineol
Agar	Cinnamic-acid, Liriodenine, Ascorbic-acid
Bilva	Citral, Citronellal, Cuminaldehyde
Tagar	β-Sitosterol, Borneol, Malic- acid
Shyonak	Baicalein, Chrysin, Tannic acid
Kantkari	Apigenin, Cycloartanol, Esculetin
Gambhari	Apigenin, Benzoic acid, Betulin, Thymo.
Vasa	Kaempferol, Vasicine.
Tezpatra	1, 8 Cineol, α-Pinene, Linalool.

जड़ी-बूटियों के पंचांग के उपयोग के कई महत्वपूर्ण कारण हैं। उदाहरण के लिए संपूर्ण पादप में उपस्थित एन्टीऑक्सीडेंट्स अन्य सक्रिय पदार्थों के विघटन को रोकते हैं। इसी तरह यज्ञ प्रक्रिया के दौरान निकलने वाले एसेंशियल ऑइल्स अन्य सक्रिय पदार्थों को इनहेलेशन के द्वारा फेफड़ों में पॅहुचने के लिए वाहक का कार्य भी करते हैं।

इनविट्रो प्रयोगों एवं चिकित्सकीय परीक्षणों के माध्यम से यज्ञ का जो महत्वपूर्ण प्रभाव क्षय रोग की चिकित्सा पर प्राय: रेसिस्टेंट मामलों में देखने को मिला, उससे प्रतीत होता है कि यज्ञ से उत्पन्न होने

वाले प्रभावी तत्वों की क्रिया प्रणाली आधुनिक दवाओं की क्रिया प्रणाली से बहुत भिन्न है।

इस शोधकार्य में दो प्रयोग सामान्य रूप से वायु में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं पर किये गये, जिनमें ई.कोलाई, स्यूडोमोनास, स्ट्रेप्टोकोकाई तथा कुछ फंगल स्ट्रेन्स शामिल हैं।

इस प्रयोग में लिए गये कल्चर मीडियम में से कंट्रोल सेम्पल को साधारण वातावरण में कुछ मिनटों के लिए खुला छोड़ दिया गया। इसकी तुलना में प्रायोगिक सेम्पल, जो कि यज्ञ के वातावरण में उतने ही समय के लिए अनावृत किया गया था, उसमें ७०% बैक्टीरिया की कमी पाई गई।

कई प्रयोग क्षय रोगियों के, जो कि Acid fast bacilli के लिए पॉजिटिव पाये गये, कफ से प्राप्त बैक्टीरिया पर भी किये गये। इन माइकोबैक्टीरिया को Solid Lowerstein Jensen medium slant एवं Liquid kirchner medium के दो सेटों पर संवर्धित किया गया था।

प्रत्येक मरीज से प्राप्त पहले सेम्पल को कंट्रोल तथा दूसरे को प्रायोगिक बनाया गया। यज्ञ से निकले वाष्प, गैस तथा यज्ञीय ऊर्जा को प्रायोगिक सेम्पल में SKC Air Chek 2000 air sampling तथा High flow vaccum pump के माध्यम से ३०-४० मिनट तक प्रवाहित किया गया। कंट्रोल सेम्पल को यज्ञ से उपचारित नही किया गया था।

आठ सप्ताह तक ३५-५७°C पर इन्क्यूबेशन पर रखने के बाद पाया गया कि नियंत्रित सेम्पल की तुलना में यज्ञ से उपचारित प्रायोगिक सेम्पल में ७०% बैक्टीरिया की कमी पायी गई।

यज्ञोपैथी के फार्मास्यूटिकल प्रभावों का अध्ययन १५ क्षयरोगियों पर किया गया, जिनकी आयु १५-६० वर्ष की थी। यज्ञ चिकित्सा का यह प्रयोग शांतिकुंज, हरिद्वार के ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की यज्ञोपैथिक लैब में क्षयरोगियों के लिए निर्धारित आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियों से तैयार हवन सामग्री से किया गया। यह यज्ञ प्रति दिन प्रातः काल ३०-३५ मिनट तक गायत्री मंत्र के सस्वर उच्चारण के साथ किया गया, जिसमें आहुतियों के बाद कुछ

मिनटों तक गहरी श्वास भी ली जाती रही। इसमें प्रत्येक मरीज ने लगभग ३५ से ७५ दिन तक भाग लिया। यह अवधि उनके क्रमिक गणनाओं एवं सांख्यकीय परिवर्तनों के आधार पर निर्धारित की गयी।

यज्ञ के प्रभावों का अध्ययन विभिन्न क्लीनिकल, फिजियोलॉजिकल, माइक्रोबायोलॉजिकल, हीमेटोलॉजिकल, बायोकेमिकल एवं पैथोलॉजिकल मानकों पर किया गया, जिनका उपयोग आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में भी पल्मोनरी ट्यूबरकुलोसिस के शोधकार्यों में किया जाता है। इसके परिणाम शोधपत्र में भी प्रकाशित किये गये हैं।

इसी तरह का अध्ययन नियंत्रित समूह पर भी किया गया, जिसमें भाग लेने वाले सभी क्षय रोगी एलोपैथिक औषधियाँ ले रहे थे। यह सभी रोगी उम्र, लिंग एवं रुग्णता काल में प्रायोगिक समूह के रोगियों के लगभग समान थे। लेकिन इस समूह के किसी भी व्यक्ति ने कभी यज्ञ में भागीदारी नहीं की। इस समूह के सभी मरीजों का भी प्रायोगिक समूह के रोगियों के समान सभी मापकों पर समय-समय पर क्रमिक परीक्षण किया गया। लेकिन इनके महत्वपूर्ण मापकों पर कोई चिकित्सकीय एवं सांख्यकीय महत्व के परिणाम नहीं मिले।

यज्ञोपैथी का पल्मोनरी ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन की एक प्रणाली के रूप में फिजियोलॉजिकल टाइप कम्पार्टमेंट मॉडलिंग के द्वारा फार्मेकोकाइनेटिक विश्लेषण किया गया अर्थात शरीर में औषधियों की क्रिया एवं उनके चयापचय का अध्ययन किया गया। इसके अंतर्गत वयस्क भारतीयों पर प्रायोगिक फार्मेकोकाइनेटिक अध्ययनों से संदर्भित आँकड़े लेकर गणितीय विश्लेषण तथा कम्प्यूटेशनल साइमुलेशन्स के द्वारा यज्ञोपैथी के प्रदर्शन का मुखीय तथा इंट्रावेनस ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया गया। परिणामों ने साबित किया कि यज्ञोपैथी दोनों अन्य पैथियों की तुलना में रेसीडेंशियल टाइम एवं औषधीय उपलब्धता के आधार पर अधिक कारगर है।
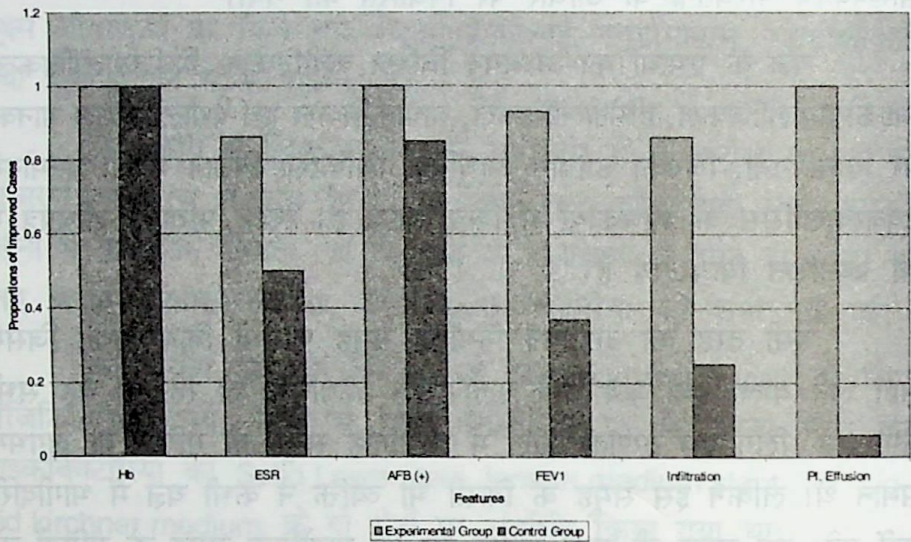
फार्माकोडाइनेमिक अध्ययन एवं नियंत्रित चिकित्सकीय परीक्षणों को आधुनिक शोधकार्यों के लिए आवश्यक एवं महत्वपूर्ण माना जाता है, ऐसी स्थिति में फुफ्फुसीय निक्षेपण के डेटा इनविट्रो परिणामों एवं क्लीनिकल ट्रायल्स के बीच एक महत्वपूर्ण सेतु का काम करते हैं। इस शोधकार्य में फुफ्फुसीय निक्षेपण के अनुमापन के लिए यज्ञ से पहले एवं बाद में फिल्टर पेपर को एक्सपोज कर वजन कर कुछ इनविट्रो प्रयोग किये गये। यह प्रयोग SKC Air sampler 2000 के उपयोग के द्वारा किये गये, जो कि 5 μ से कम के कणों को ही इसकी कैसेट में लगे फिल्टर पेपर तक आने देता है।

यज्ञावशेष अर्थात यज्ञ भस्म का वजन, जो कि पूरे सामान्य यज्ञ के बाद शेष बची थी तथा इसी तरह का यज्ञ जो कि बिना हवन सामग्री के किया गया था तथा जिसमें उतनी ही मात्रा में लकड़ी, घी आदि का इस्तेमाल किया गया था, का भी वजन किया गया। फिल्टर पेपर का रासायनिक विश्लेषण PCRI हरिद्वार में तथा यज्ञ भस्म का विश्लेषण CPCB दिल्ली में किया गया।

यज्ञोपैथी के विश्लेषण के लिए जिस मॉडल का उपयोग किया गया, वह समग्र है, क्योंकि इसमें सम्बद्ध एनाटॉमीकल तथा फिजियोलॉजिकल गुणों का भी समावेश है। अनुरूपक परिणामों के इस मॉडल का उपयोग करते हुए आधुनिक एन्टीट्यूबरकुलर ड्रग्स आइसोनियाजिड एवं पायराजिनामाइड आदि के concentration profile के वास्तविक आंकड़ों से तुलना की गई। यहाँ पर भी फिर से यज्ञोपैथी बायोएवेलेबिटी एवं रेसीडेंस टाइम के आधार पर अधिक उपयुक्त साबित हुई।
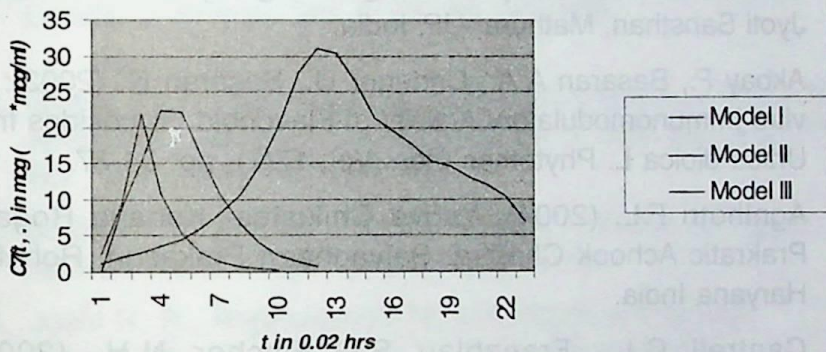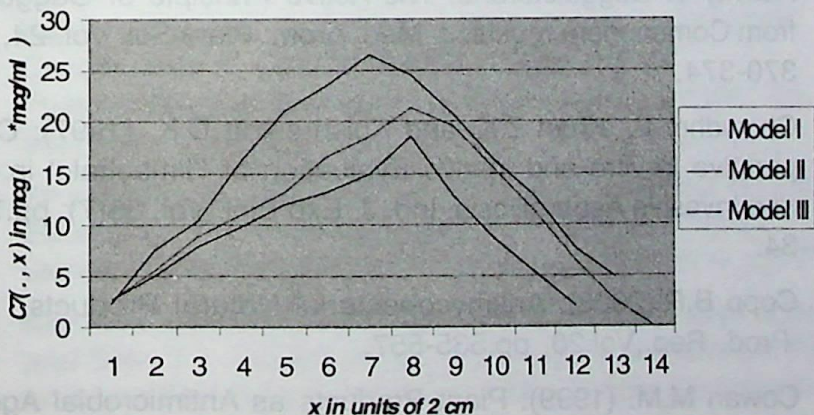
यह शोधकार्य विभिन्न प्रयोग-परीक्षणों के माध्यम से क्षय रोग की चिकित्सा में यज्ञोपैथी की महत्वपूर्ण चिकित्सकीय भूमिका की संभावनाओं को व्यक्त करता है और साथ ही अधिक गहन अध्ययन एवं अनुसंधान की अपेक्षा रखता है।

सहायक संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Acharya Shrama S. (1995): Yagya- Ek Smagra upchar Prakriya. Pt. Shriram Sharma Acharya Samagra Vangmaya Vol. 26. Akhand Jyoti Sansthan, Mathura; UP, India.
2. Acharya Sharma S. (1995): Yagya Ka Gyan Vigyan. Pt. Shriram Sharma Acharya Samagra Vangmaya Vol. 25. Akhand Jyoti Sansthan, Mathura; UP, India.
3. Akbay P., Basaran A.A., Undeger U., Basaran N. (2003): In-vitro Immunomodulatory Activity of Flavonoid Glycosides from Urtica dioica L. Phytother. Res. Vol. 17(1), pp. 34-37.
4. Agnihotri F.L. (2004): Yagya Chikistsa- Kshaya Roga ki Prakratic Achook Chikitsa. Satyadharm Prakasan, Rohatak, Haryana India.
5. Cantrell C.L., Franzblau S.G.,Fischer N.H. (2001): Antimycobacterial Plant Terpenoids Plants Med. Vol. 67 (8), pp. 685-694.
6. Chander, R., Khanna, A.K. and Pratap, R. (2002): Antioxidant Activity of Guggulsterone, The Active Principle of Guggulipid from Commiphora mukul. J. Med. Arom. Plant Sci. Vol..24, pp. 370-374.
7. Chowdhry L., Khan Z.K. and Kulshrestha D.K. (1997): Comparative In-vitro and In-vivo Evaluation of Himachalol in Murine Invasive Aspergillosis. Ind. J. Exp Biol. Vol. 35(7), pp.727-34.
8. Copp B.R.(2003): Antimycobacterial Natural Products. Nat .Prod. Rep.,Vol.20, pp.535-557.
9. Cowan M.M. (1999): Plant Products as Antimicrobial Agents Clinical Microbiology Reviews. Oct.1999. pp. 564-582.

10. CSIR, New Delhi (Patent) (2003): Herbal Chemical Composition for The Treatment of Cancer. US Patent (6,649,650 Issued: November 18, 2003).
11. Dev S. (1999): Ancient-Modern Concordance in Ayurvedic Plants: Some Examples Environ Health Perspect. 1999 Oct; 107(10): 783-9.
12. Duke J. and Stephan (2003): Dr. Duke's Phytochemical aS., Cho H.Y. and Yang H.C. (2001): Purification and Characterization of Antithrombotics from Syzygium aromaticum (L.). Biol. Pharm. Bull. Vol. 24(2) pp. 181-187.
13. Gonda I. (1987): Drug Administration Directly into the Respiratory Tract-Modelling of the Duration of Effective Drug Levels. J. Pharm. Sci. V. 77, pp. 340-346.
14. Gupta P. P., Kulshrestha, D.K. and Patnaik, G.K. (1997): Antiallergic Acivity of Cedrus deodara. J. Med. and Arom. Plant Sci., Vol. 19(4), pp.1007-1008.
15. Joshi R. R. (2000): *The Intregrated Science of Yagya.* Yug Nirman Yojna, Press Mathura; UP, India.
16. Joshi R. R., Raghuvanshi M. and Pandya P. (2004): Yagyopathy vs. Oral and I.V. Drug Administration – Evaluation for Pulmonary TB using Physiological. Compartment Modelling Jnl. Biol. Systems. Vol. 14(3), 2006, pp. 463-489
17. Kar K., Puri V. N., Patnaik G. K., Sur R. N., Dhawan B. N., Kulshrestha D.K. and Rastogi R. P. (1975): Spasmolytic Constituents of Cedrus deodara (Roxb.) Loud: Pharmacological Evaluation of Himachalol. J. Pharm Sci. Vol. 64(2), pp. 258-262.
18. Khasnobis S., Escuyer V. E. and Chatterjee D. (2002): Emerging Therapeutic Targets in Tuberc ulosis: in Post-Genomic Era. Expert Opin. Ther. Targets. Vol. 6(1), pp. 21-40.
19. Kim H.M., Lee E.H., Hong S.H., Song H.J., Shin M.K., Kim S.H. and Shin T.Y. (1998): Effect of Syzygium aromaticum Extract on Immediate Hypers ensitivity in Rats.J. Ethnopharmacol. Vol. 60(2), pp.125-131.

20. Lee J. I., Lee H.S. Jun W.J., Yu K.W. Shin D.H. Hong B. S., Cho H.Y. and Yang H.C. (2001): Purifica tion and Characterization of Antithrombotics from Syzygium aromaticum (L.). Biol. Pharm. Bull. Vol. 24(2) pp. 181-187.

21. Mobley C. and Hochhaus G. (2001): Methods Used to Assess Pulmonary Deposition and Absorption of Drugs, Drug Discovery Today. V. 6 (7), pp. 367-375.

22. Raghuvanshi M., Pandya P. and Joshi R.R. (2004). Yagyopathic Herbal Treatment of Pulmonary Tuberculosis - A Clinical Trial. Alternative and Complementary Therapies Vol. 10(2), pp.101-105.

23. Raghuvanshi M(2006): Some Investigations into the Chemical & Pharmaceutical aspects of Yagyopathy: Studies in Pulmonary Tuberculosis Ph. D. Thesis Dev Sanskriti, Univ.,Haridwar.

परिशिष्ट-३

अ- वातावरण प्रदूषण पर यज्ञ के वैज्ञानिक प्रभावों का शोधपरक प्रामाणिक आकलन

★★★★★★★★★★

वर्तमान काल में वातावरण प्रदूषण की भयावहता को देखते हुए यह अत्यावश्यक हो गया है कि इस समस्या का कोई ऐसा समाधान ढूँढ़ा जाए, जो कि इस बीमार वातावरण को समग्र रूप से ठीक करने में सक्षम हो। भारतीय आर्ष वांगमय में-वैदिक साहित्य में यज्ञ की अनंत महिमा बतायी गई है। इनमें यज्ञ को वातावरण प्रदूषण को दूर करने वाला, वातावरण को सुगंधित करने वाला, वातावरण में ऋण आयन की वृद्धि करने वाला, प्राण-पर्जन्य की वर्षा करने वाला एवं सारी कामनाएँ पूरी करने वाला बताया गया है। अतः यज्ञ के माध्यम से वातावरण में व्याप्त प्रदूषण पर पड़ने वाले प्रभाव को देखने के लिये एक वैज्ञानिक प्रयास किया गया। इस प्रयास के अंतर्गत अनेक प्रयोग किये गये। यह सभी प्रयोग केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के साथ मिल कर किये गये, जिसमें कि सैंपलिंग एवं प्रयोगशाला सुविधा इसी बोर्ड के द्वारा प्रदान की गई तथा यज्ञ का प्रयोग तथा सांख्यकीय विश्लेषण शोधार्थी द्वारा किया गया। प्रस्तुत शोध निष्कर्ष डॉ. ममता सक्सेना, निदेशक, केन्द्रीय सांख्यकीय संगठन, नई दिल्ली का है, जिन्होंने देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार से "Air quality modeling & non-conventional solutions to environmental problems with reference to Vedic Science." में पी.एच.डी. की उपाधि हासिल की है। इस शोध के विभिन्न प्रयोगों में निकले निष्कर्ष इस प्रकार से हैं-

१. यज्ञ का घर के अंदर के वातावरण में व्याप्त कीटाणुओं पर प्रभाव

इस प्रयोग में एक दिन प्रातः काल हवन किया गया। हवन के एक दिन पहले वातावरण में व्याप्त विभिन्न प्रकार के कीटाणुओं-विषाणुओं की सैंपलिंग करके कंट्रोल/बैकग्राउंड पता किया गया। तत्पश्चात् हवन वाले दिन तथा उसके तीन दिन बाद तक रोजाना सैंपलिंग करके उन दिनों के कीटाणुओं की संख्या प्राप्त की गई। इस तरह के प्रयोग को पूरे वर्ष में चार बार दोहराया गया।

परिणाम

इन प्रयोगों के परिणाम उत्साहवर्धक रहे। हवन वाले दिन तथा उसके बाद वाले दिनों को कंट्रोल वाले दिन की कीटाणुओं की संख्या से तुलना करने पर यह पाया गया कि समस्त कीटाणुओं की संख्या हवन के बाद कंट्रोल की तुलना में काफी कम हो गयी थी। हवन के पश्चात् यह कमी तीनों प्रकार के कीटाणुओं अर्थात बैक्टीरिया, फंगस तथा पैथोजेन्स में भारी मात्रा में आंकी गयी थी। यह कमी विशेष रूप से बीमारी पैदा करने वाले पैथोजेंस में आयी थी। देखा गया कि चारों प्रयोगों में हवन के तीन दिन बाद, पैथोजेंस में ६७%, ८७%, ९३% तथा १००% कमी आ गयी थी।

हवन के बाद तीसरे दिन बैक्टीरिया में ४०%, ६३%, ७२% तथा ९२% की कमी तथा फंगस में ३३%, ८३%, ८४% एवं १००% की कमी अलग-अलग चारों प्रयोगों में नोट की गयी अर्थात यह पाया गया कि हवन का कीटाणुनाशक प्रभाव समय के साथ भी बढ़ता रहता है। इसका प्रभाव कितने दिनों तक बना रहता है, यह देखने के लिये एक प्रयोग में हवन के बाद सात दिनों तक सैंपलिंग की गयी व सातवें दिन के विभिन्न कीटाणुओं को कंट्रोल से तुलना करके देखा गया।

इसके परिणाम भी आश्चर्यजनक थे। पाया गया कि जहाँ हवन वाले दिन कंट्रोल की तुलना में बैक्टीरिया में ५९%, फंगस में ६९% तथा पैथोजेंस में ७१% की कमी आयी थी। हवन के सात दिन बाद यह कमी बढ़कर ९२%, ८२% तथा ७९% हो गयी थी। इससे यह सिद्ध होता है कि हवन का प्रभाव दीर्घकालीन कीटाणुनाशक होता है। सप्ताह में एक दिन हवन करने से उसका प्रभाव कम से कम सात दिनों तक तो बना ही रहता है।

२. यज्ञ का बाहर के कीटाणुओं पर प्रभाव

मई, सन् २००३ में दिल्ली के करावल नगर में एक विशाल १०८ कुण्डीय यज्ञ हुआ था, जिसमें लगभग १०-१५ हजार लोगों ने प्रतिदिन भाग लिया था। इसमें यज्ञ से पूर्व के दिन की सैंपलिंग करके कंट्रोल के कीटाणुओं की संख्या नोट की गई तथा यज्ञ के दौरान एवं दो दिन बाद तक उनकी सैंपलिंग की गई। इसमें पाया गया कि खुले वातावरण में भी, जहाँ पर हजारों

लोग आते थे, यज्ञ का सकारात्मक प्रभाव था। यज्ञ के बाद भी दो दिन तक कंट्रोल की तुलना में, इनमें काफी कमी आयी। दूसरे दिन बैक्टीरिया में ३८% तक की कमी थी एवं पेथोजेंस में दोनों दिन ७९% की कमी आंकी गयी थी अर्थात खुले में भी यज्ञ का प्रभाव कीटाणुरोधक रहा।

३. यज्ञ के धुएँ एवं साधारण धुएँ का कीटाणुओं पर प्रभाव

सामान्यत: लोगों की यह धारणा है कि किसी भी प्रकार का धुआँ करने से वायु में व्याप्त कीटाणु-विषाणु नष्ट हो जाते हैं। इसी तथ्य को परखने के लिये एक प्रयोग में एक स्थान पर पूरे विधि-विधान के साथ यज्ञ किया गया और दूसरे स्थान पर सिर्फ लकड़ी जला कर धुआँ किया गया। इन दोनों जगहों पर सैंपलिंग करके कंट्रोल ग्रुप के कीटाणु नोट किये गये तथा यज्ञ के दौरान एवं उसके बाद दो दिन तक वायु की सैंपलिंग की गयी। इस प्रयोग के नतीजे तो और भी उत्साहवर्धक थे। एक तरफ तो देखा गया कि यज्ञ के दो दिन बाद जहां बैक्टीरिया में ७९%, फंगस में ६८% एवं पैथोजेंस में ३८% की कमी आयी थी, वहीं पर साधारण धुएँ वाले वातावरण में बैक्टीरिया में १११%, फंगस में २३७ % तथा पैथोजेंस में १२९% की बढ़ोत्तरी हुई थी। इन परिणामों को प्रामाणिक रूप से सत्यापित करने के लिये एक वर्ष पश्चात् यही प्रयोग दोबारा से दोहराया गया और देखा गया कि इस बार भी परिणाम वही रहा। इससे यहाँ पुष्टि हो गयी कि यज्ञ के द्वारा ही वातावरण में व्याप्त कीटाणुओं-विषाणुओं का नाश होता है , इसके विपरीत कोई भी अन्य धुआँ उन्हें खत्म करने में सक्षम नहीं होता है।

४. यज्ञ का गैसीय प्रदूषण पर प्रभाव

यज्ञ का प्रभाव गैसीय प्रदूषण पर देखने के लिये दो प्रयोग खुले वातावरण में किये गये। उसमें यज्ञ का प्रभाव $SO2$ एवं $NO2$ पर देखा गया। यह दोनों प्रयोग इंडिया गेट के पास कस्तूरबा गांधी मार्ग पर एक साल के अंतराल पर किये गये। इन दोनों प्रयोगों में एक दिन पहले सैंपलिंग करके बैकग्राउंड की गैस $SO2$ एवं $NO2$ के सांद्रण को मापा गया। फिर यज्ञ वाले दिन तथा उसके बाद भी दो दिन तक इन गैसों की सैपलिंग की गयी।

परिणाम

पहला प्रयोग सन् २००४ के जनवरी-फरवरी माह में खुले वातावरण में किया गया।

इस प्रयोग के नतीजे निम्नोक्त सारणी-१ में दिये गये हैं-

सारिणी १.

दिनांक	NO2	% में परिवर्तन	SO2	% में परिवर्तन
31.1.04 बैकग्राउंड	56		11.0	
1.02.04	29.5	-47.3	1.5	-86.4
2.02.04	22.5	-59.8	0.0 (BDL)	-100.0

इन परिणामों का ग्राफीय चित्रण निम्न प्रकार से किया गया है-

सन् २००४ में यज्ञ का गैसों पर प्रभाव
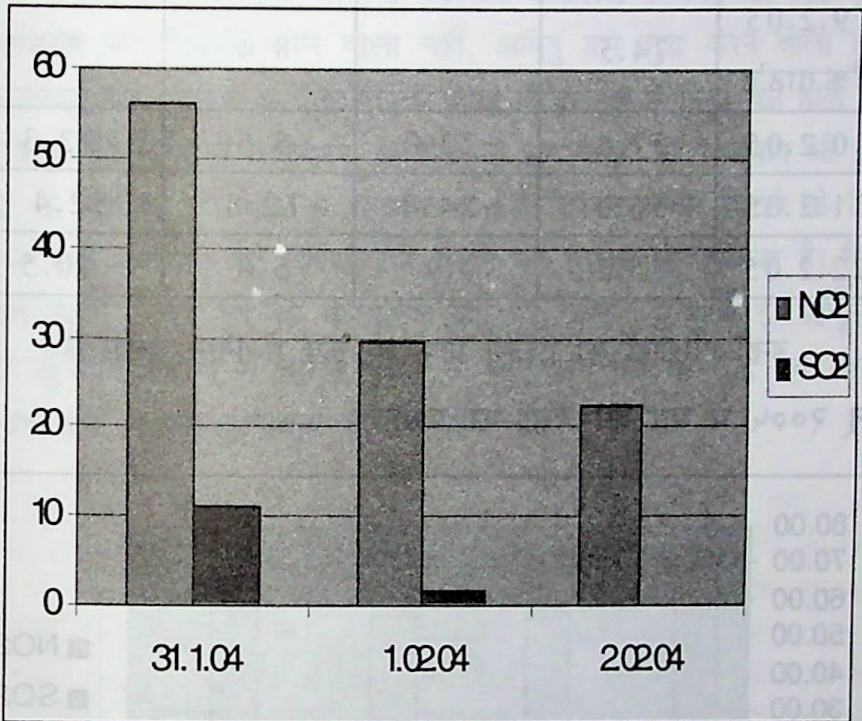
इस विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकला कि जहाँ NO2 में बैकग्राउंड की तुलना में हवन के एक दिन बाद लगभग ६०% की कमी आयी, वहीं SO2 लगभग पूर्णतया समाप्त हो गयी।

इसी प्रकार का एक दूसरा प्रयोग फरवरी, २००५ में किया गया था। उसके परिणाम भी निम्नोक्त सारिणी-२ में दिये गये हैं।

सारिणी २.

(microgram /m³)

दिनांक	NO2	% में परिवर्तन	SO2	% में परिवर्तन
19.2.05 बैकग्राउंड	74.5		8.4	
20.2.05	57.4	-23.0	5.6	-33.3
21.2.05	56.0	-24.8	12.8	52.4
22.2.05	75.2	0.9	5.0	-40.5

इन्हीं परिणामों का चित्रण ग्राफ के रूप में निम्न प्रकार है-

सन् २००५ में यज्ञ का गैसों पर प्रभाव
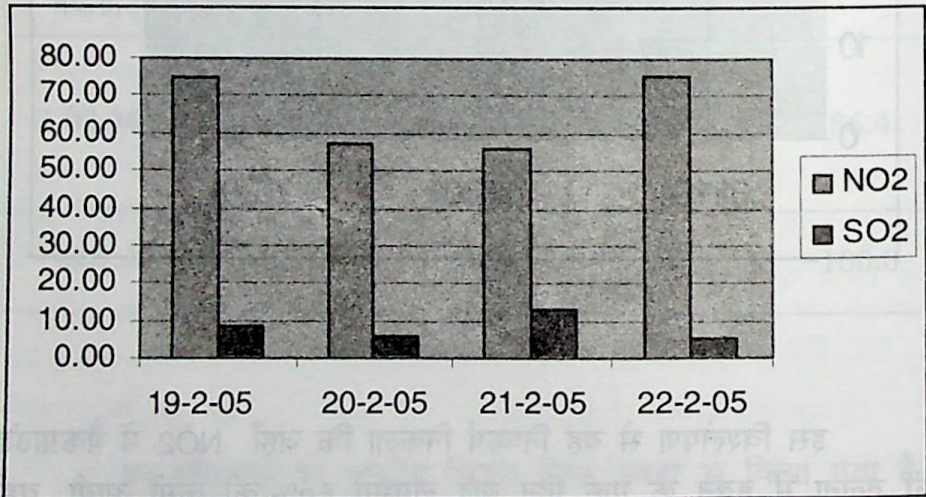
इस प्रयोग में भी NO2 में बैकग्राउंड की तुलना में हवन के एक दिन बाद लगभग २५% की कमी हुई तथा हवन के बाद दूसरे दिन वह बैकग्राउंड के बराबर हो गयी। SO2 में पहले दिन ३३% की कमी आने के बाद दूसरे दिन ५२% बढ़ोत्तरी हो गयी। इसका कारण यह था कि उस दिन

लगभग डेढ़ घंटे तक बिजली के गुल रहने से समीप में एक जेनरेटर चलता रहा, जिसका कि धुआँ सैम्पलर में आ गया और SO2 की मात्रा बढ़ गयी। यज्ञ के बाद दूसरे दिन पुन: SO2 में लगभग ४१% की कमी आँकी गयी।

उपरोक्त परिणामों से यह निष्कर्ष निकलता है कि यज्ञ का धुआँ वातावरण को प्रदूषित करने वाला नहीं, अपितु उसे शुद्ध करने वाला होता है। शायद यही कारण था कि वैदिक काल में घर-घर में नित्य यज्ञ होता था। आज के विश्वव्यापी वातावरण प्रदूषण की समस्याओं का समाधान भी इसी यज्ञ में सन्निहित है। यज्ञ के माध्यम से इस विषाक्तता को मिटाने के लिए आज यज्ञ आंदोलन को विश्वव्यापी बनाने की विशेष आवश्यकता है। नित्य हवन करके अपने घर के वातावरण को शुद्ध बनाने के साथ ही सामूहिक यज्ञ खुले वातावरण में करके बाहर के वातावरण को भी शुद्ध एवं स्वच्छ बनाना हम सबका अनिवार्य कर्त्तव्य होना चाहिए ।

परिशिष्ट-३

ब- बृहत् आश्वमेधिक यज्ञों का वातावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का वैज्ञानिक अध्ययन-अनुसंधान

★★★★★★★★★

(1)

कार्यालय उपसंचालक कृषि, जिला-गुना (म.प्र.)
क्रमांक/तक-2/योजना/94-95/6544/21.7.94 गुना, दिनांक
प्रति,

मुख्य ट्रस्टी,
गायत्री परिवार ट्रस्ट शाखा
गुना (म.प्र.)

विषय:- अश्वमेध यज्ञों की उपलब्धियों संबंधी विवरणात्मक जानकारी.

सन्दर्भ:- आपका पत्र क्रमांक/4163 दिनांक 27.6.1994.

....

अश्वमेध यज्ञानुष्ठान से उपलब्धियाँ-

....

विश्व विराट अश्वमेध महायज्ञों की श्रृंखला में गुना नगर में भी अश्वमेध यज्ञ चैत्र शुक्ल पक्ष त्रयोदशी सम्वत् 2050 से प्रारंभ होकर चैत्र शुक्ल पूर्णिमा तदनुसार 4,5,6 अप्रैल सन् 1993 को सम्पन्न हुआ।

यज्ञ द्वारा प्रकृति में पहुँची हुई गैसें और श्रवणातीत ध्वनि से अपने अयन मंडल में तथा ब्रह्माण्डीय शक्तियों के भीतर भारी हलचल उत्पन्न होती है। इस हलचल के परिणामस्वरूप पृथ्वी पर नये तत्वों का आकर्षण होता है। वर्षा आदि की अनुकूल परिस्थितियाँ बनती हैं। मौसम की अनुकूलता और वातावरण में शक्ति वर्धक प्राण की बहुलता होती है।

अश्वमेध यज्ञ से गुना जिले में मौसम, वर्षा एवं कृषि फसलोत्पादन में उल्लेखनीय प्रगति हुई है, जिसका विवरण निम्नानुसार है-

गुना जिला की आधारभूत जानकारी

1. कुल भौगोलिक क्षेत्रफल - 1098160 हेक्टेयर
2. कृषि निराफशल क्षेत्र - 627842 हेक्टेयर
3. खरीफ फसल क्षेत्र - 299981 हेक्टेयर
4. रबी फसल क्षेत्र - 395195 हेक्टेयर

वर्षा:- गत वर्ष से इस वर्ष वर्षा समय पर प्रारंभ हुई। वर्षा का वितरण समान रहा, जो फसलों को बहुत लाभकारी रहा। कुल वर्षा 93-94 में 1294.4 मि. मी. हुई, जो गत वर्ष की तुलना में लगभग 513.00 मि.मी. अधिक रही।

फसल क्षेत्राच्छादन एवं उत्पादकता

क्रमांक	फसल का नाम	क्षेत्र हेक्टेयर में	उत्पादकता किलो प्रति हेक्टेयर
(अ)	**खरीफ फसलें**		
1.	ज्वार	106500	1000
2.	बाजरा	100	1200
3.	मक्का	25300	1500
4.	दलहन फसलें	17400	616
5.	तिलहन एवं सोयाबीन	83400	1000
6.	अन्य फसलें	67281	–
योग	उपरोक्त	299981	है.
(ब)	**रबी फसलें**		
1.	गेहूँ	209700	1060
2.	जौ	200	1500
3.	दलहन फसलें	151700	592
4.	तिलहन फसलें	12300	770
5.	अन्य फसलें	21295	
योग रबी		395195	–
कुल योग		695176	–

उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि यज्ञानुष्ठान से फसल क्षेत्राच्छादन एवं उत्पादकता में आशातीत वृद्धि हुई ।

उपसंचालक कृषि
जिला-गुना

अशोक 94720

(2)

Rec. No. 123 G- 805-1991

Phone (0551) 339627
Fax. (0551) 330828

ENVIRONMENTAL AND TECHNICAL CONSULTANTS

Dr. MANOJ GARG
DIRECTOR

DATE 12.09.1995

AMBIENT AIR QUALITY SURVEY DATA

(In Respect of The Ashwamedha Yagna- Gorkhpur)

Location - Near Yagna Shala.
Distance from the Yagna Shala- 20 meters
Direction from the Yagna shala- East
Average 24 hourly concentration in microg/m3
Method used- By High volume sampler Envirotech APM-451

DATE OF SAMPLING	TOTAL SUSPNDED SOLIDS.	SO 2	NO2
24/2/95 to 25 /2/95 Before yagna	1186	3.36	1.16
25/2/95 to 28/2/95 Between the Yagna	2840	2.82	1.14
28/2/95 to 1/3/95 Aftef Yagna	842	0.80	1.02

देवमंच व कलश यात्रा-महाकुंभ जैसा दृश्य अश्वमेध महायज्ञ-बड़ोदरा

चित्र संख्या-10

चित्र संख्या-11

चित्र संख्या-12

चित्र संख्या-13

विदेशों में अश्वमेध यज्ञ के कुछ दृश्य

गायत्रीतीर्थ-शांतिकुंज की प्रमुख यज्ञशाला में हवन का एक दृश्य

चित्र संख्या-14
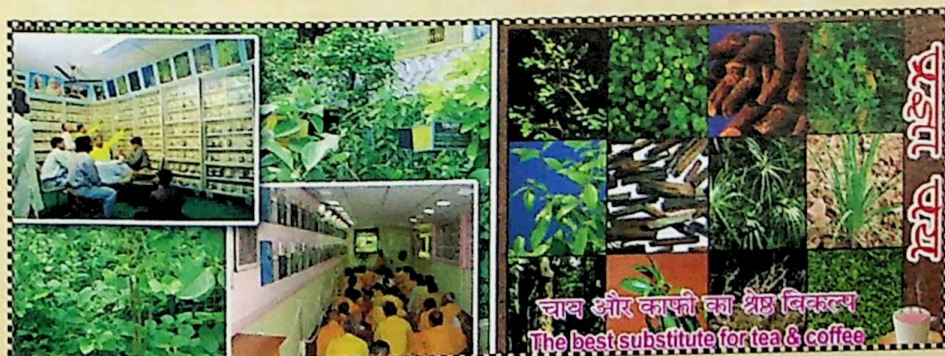
देव संस्कृति विश्वविद्यालय में जड़ी-बूटियों पर चल रहे अनुसंधान की एक झलक-झाँकी

चित्र संख्या-15

देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्रीकुंज-शांतिकुंज

चित्र संख्या-16

देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्रीकुंज-शांतिकुंज में यज्ञ चिकित्सा का लाभ लेते विदेशी

चित्र संख्या-17

BACTERIOLOGICAL ASPECT

(In Respect of the Ashwamedha Yagna - Gorakhpur)

Location- Near Yagnashala
Distance from the Yagnashala - 20 mtrs.
Various bacteriological samples were taken in Ambient air by exposure
method and result found as under-

BEFORE YAGNA - Total 4500 bacteria found in 100 ml of water.

BETWEEN YAGNA - Total 2470 bacteria found in 100 ml of water.
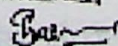
AFTER YAGNA - Total 1250 bacteria found in 100 ml of water.

Chemical Test Report of "ASH" Collected from Yagnashala on 29/02/95 in respect of Ashwamedha Yagna-Gorakhpur.

Three samples of "**ASH**" were collected from different "KUND" of Yagnashala and tested in our laboratory. Result found as under-

(1) PHOSPHOROUS	-	4076	mg/kg of ASH
(2) POTASSIUM	-	3407	mg/kg
(3) CALCIUM	-	7822	mg/kg
(4) MAGNESIUM	-	6424	mg/kg
(5) NITROGEN	-	32	mg/kg
(6) MOISTURE	-	2%	w/w
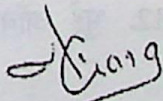
(DR. MANOJ GARG)

Attested
(RAKESH SHARMA)
Design Engineer
C. E. D. T.
M.M.M. Engg. College Campus
Gorakhpur - 273 010

परिशिष्ट-४

रोगानुसार विशिष्ट हवन सामग्रियों का संक्षिप्त परिचय

★★★★★★★★★

कॉमन हवन सामग्री-नंबर-१

अ. 1. अगर 2. तगर 3. देवदार 4. चंदन 5. लाल चंदन 6. जायफल 7. लौंग 8. गूगल 9. चिरायता 10. अश्वगंधा 11. गिलोय।

ब. 1. जौ 2. तिल 3. चावल 4. गो घृत 5. खाँडसारी गुड़ या शक्कर

रोगानुसार विशिष्ट हवन सामग्री-नंबर-२

१. लीवर एंव तिल्ली तथा उससे संबंधित रोगों की विशिष्ट हवन सामग्री

1. शरपुंखा 2. कालमेघ 3. पिप्पलीमूल 4. पुनर्नवा 5. मकोय 6. सेमर (शाल्मली) फूल 7. जामुन छाल 8. अपामार्ग 9. भृंगराज 10.राई 11. कुटकी 12. भुई आँवला।

२. अपच अर्थात् भोजन न पचना एवं संबंधित रोगों की विशेष हवन सामग्री

1. तालीसपत्र 2. तेजपत्र 3. पोदीना 4. हरड़ 5. अमलतास 6. नागकेसर 7. कालाजीरा 8. सफेद जीरा।

३. वमन अर्थात् उल्टी तथा संबंधित रोगों की विशेष हवन सामग्री

1. बायविडंग 2. पीपल 3. छोटी पिप्पली
4. ढाक या पलाश के बीज या सूखे फल 5. गिलोय
6. नीबू की जड़ या सूखे फल 7. आम की गुठली
8. निशोथ 9. प्रियंगु 10. धाय के बीज।

४. उदर रोग की विशेष हवन सामग्री

1. चव्य 2. चित्रक 3. तालीसपत्र 4. दालचीनी
5. आलूबुखारा 6. छोटी पिप्पली।

५. दस्त, डॉयरिया एवं संबंधित रोगों की विशेष हवन सामग्री

1. सफेद जीरा 2. दालचीनी 3. अजमोद 4. चित्रक
5. बेलगिरी 6. अतीस 7. सोंठ 8. चव्य
9. ईसबगोल 10. मौलश्री की छाल
11. तालमखाना 12. छुआरा।

६. हैजा की विशेष हवन सामग्री

1. धनिया 2. कासनी 3. सौंफ 4. कपूर
5. चित्रक।

७. आँव-पेचिस आदि के लिए विशेष हवन सामग्री

1. मरोड़फली 2. अनारदाना 3. पोदीना
4. आम की गुठली 5. कतीरा।

८. पाइल्स-बवासीर एवं तत्संबंधित रोगों की विशिष्ट हवन सामग्री

अ. 1. नागकेशर 2. हाऊबेर 3. धमासा 4. दारुहलदी
5. नीम की गुठली (निबौली) 6. मूली के बीज 7. जावित्री
8. कमल केशर 9.गूलर के फूल 10. सर्जरस।

ब. 1. अश्वगंधा 2. निर्गुंडी 3. बड़ी कटेरी (कंटकारी) एवं 4. पिप्पली।

इनका चूर्ण बनाकर अग्नि में जलाकर धूप देने से भी बवासीर-अर्श की पीड़ा शांत होती है।

९. विष निवारण की विशिष्ट हवन सामग्री

1. बनतुलसी के बीज 2. अपामार्ग 3. इंद्रायण की जड़
4. करंज की गिरी 5. दारुहलदी 6. चौलाई के पत्ते
7. बिनौला गिरी 8. लाल चंदन।

१०. साधरण बुखार (सिंपिल फीवर) की विशेष हवन सामग्री

1. चिरायता 2. तुलसी की लकड़ी 3. तुलसी के बीज
4. पटोलपत्र 5. करंज की गिरी 6. नागरमोथा
7. लाल चंदन 8. लाल कनेर के पुष्प 9. नीम छाल
10. गिलोय 11. कुटकी 12. मुलहठी।

११. शीतज्वर 'कॉमन कोल्ड' (मलेरिया) की विशेष हवन सामग्री

1. चिरायता 2. नीम-छाल या नीम-बीज की गिरी 3. पटोलपत्र
4. गिलोय 5. कालमेघ 6. कुटज छाल (कुड़ा)
7. नागरमोथा 8. करंज की गिरी 9. नीम पुष्प या पत्र
10. कुटकी 11. तुलसी पत्र 12. लाल चंदन
13. चित्रक।

१२. जाड़े का बुखार, तिजारी व चौथिया, मलेरिया ज्वर की विशेष हवन सामग्री

1. अडूसा 2. पटोलपत्र 3. तेजपत्र 4. अमलतास
5. दारुहलदी 6. चिरायता 7. कालामेघ 8. बच
9. गिलोय 10. लाल चंदन 11. शालिपर्णी 12.पृश्निपर्णी
13. देवदार 14. खस 15. करंज गिरी 16.तुलसी पत्र।

१३. डेंगू एवं वायरल फीवर की विशिष्ट हवन सामग्री

1. चिरायता 2. कालमेघ 3. आर्टीमीसिया एनुआ
4. कपूर तुलसी 5. शरपुंखा 6. सप्तपर्णी 7. मुलहठी
8. गिलोय 9. सारिवा 10. विजया 11. कुटकी
12. करंजगिरी 13. पटोलपत्र 14. निबौली या नीम छाल।

१४. दंडकज्वर की विशेष हवन सामग्री-सभी संक्रामक रोगों पर.

1. पटोलपत्र 2. कालमेघ 3. आर्टीमीसिया एनुआ
4. चिरायता 5. कुटकी 6. नीम गिरी (निबौली)
7. गिलोय 8. करंज गिरी 9. कपूर तुलसी।

१५. विषमज्वर की विशेष हवन सामग्री

1. चिरायता 2. कालमेघ 3. आर्टीमीसिया एनुआ
4. करंज गिरी 5. नीम छाल 6. नीम गिरी (निबौली)
7. सहदेवी 8. गिलोय 9. पाढ़ की जड़ (पाढ़ल)
10. नागरमोथा 11. तुलसी पत्र 12. कपूर तुलसी
13. कुटकी 14. पटोलपत्र।

१६. उष्णाज्वर की विशिष्ट हवन सामग्री-टायफायड, पैराटायफायड एवं संबंधित रोगों पर.

1. इंद्रजौ 2. पटोलपत्र 3. नीम की गिरी (निबौली)
4. त्रायमाण 5. काला जीरा 6. नेत्रबाला (सुगंधबाला)
7. मुलहठी 8. बड़ी इलायची 9. चौलाई की जड़
10. वासा 11. गिलोय 12. नागरमोथा।

१७. जीर्णज्वर की विशिष्ट हवन सामग्री

1. गिलोय 2. चिरायता 3. आर्टीमीसिया एनुआ
4. कालमेघ 5. नागरमोथा 6. कुटकी
7. अश्वगंधा 8. त्रायमाण 9. नेत्रबाला
10. खिरैंटी(बला) 11. सुगंधबाला 12. मुलहठी
13. मुनक्का 14. तुलसी पत्र 15. पटोलपत्र
16. नीम छाल 17. जवासा 18. इंद्रजौ।

१८. सरदी, जुकाम, बुखार की विशेष हवन सामग्री

1. दूब 2. पोस्त 3. कासनी 4. चिरायता
5. कालमेघ 6. शरपुंखा 7. सप्तपर्णी 8. भुईआँवला
9. पटोलपत्र 10. नीमछाल 11. कटु 12. कुटकी
13. आर्टीमीसिया एनुआ 14. तुलसी पत्र 15. वासा
16. भारंगी 17. कंटकारी 18. मुलहठी।

१९. जुकाम-खाँसी, ठंड लगना, हाथ-पैर में टूटन आदि की विशेष हवन सामग्री

1. दूर्वा घास(दूब) 2. कासनी 3. सौंफ 4. उन्नाव
5. बहेड़ा 6. धनिया 7. तुलसी पत्र 8. अंजीर
9. गुलाब के फूल 10. बनफ्शा 11.तुलसी की मंजरी 12. चिरायता।

२०. खाँसी की विशेष हवन सामग्री सरदी, जुकाम एवं संबंधित ज्वरों पर

1. मुलहठी 2. पान की जड़ (कुरदान) 3. हलदी
4. अनार 5. कंटकारी 6. वासा
7. बहेड़ा 8. उन्नाव 9. अंजीर की छाल
10. काकड़ासिंगी 11. बड़ी इलायची 12. कुलंजन
13. गिलोय 14. दालचीनी 15. तुलसी की मंजरी
16. लौंग 17. मुनक्का 18. पिप्पली।

२१. खाँसी, अस्थमा, क्रॉनिक ब्रौंकाइटिस आदि की विशिष्ट हवन सामग्री

1. धाय के फूल 2. पोस्त के डोंड़े 3. बबूल की छाल
4. मालकांगनी 5. बड़ी इलायची 6. तुलसी-पंचांग
7. वासा-अडूसा के पत्ते 8. आक के पीले पत्ते 9. नागरमोथा
10. कंटकारी 11. काकड़ासिंगी 12. लौंग
13. बहेड़े का छिलका 14. भाँग 15. चिरायता
16. अपामार्ग के बीज 17. धनिया 18. अजवायन

19. चंदन 20. हलदी 21. इंद्रजौ
22. सोंठ 23. छोटी पीपल 24. अतीस।

२२. उष्णता-शरीर में गरमी की अधिकता एवं संबंधित रोगों की विशिष्ट हवन सामग्री

1. धनिया 2. कासनी 3. बन गुलाब के फूल
4. आँवला 5. खस 6. खसखस (पोस्तबीज)
7. सौंफ 8. बनफ्शा।

२३. रक्तविकार की विशेष हवन सामग्री

1. धमासा 2. सारिवा 3. कुटज छाल (कुड़ा)
4. अडूसा (वासा) 5. शरपुंखा 6. मंजीष्ठ 7. कुटकी
8. रास्ना 9. खदिर (खैर) 10. शीतलचीनी 11. चोपचीनी
12. नीम के फूल या पत्ते 13. दारुहलदी 14. कपूर
15. चकौंड़ के बीज(चक्रमर्द-बीज) 16. चमेली के पत्ते
17. बाकुची 18. जवासा 19. कालमेघ।

२४. चर्म रोग-दाद, खाज, खुजली, एलर्जी आदि की विशिष्ट हवन सामग्री

1. शीतलचीनी 2. चोपचीनी 3. नीम के फूल या पत्ते
4. चमेली के पत्ते 5. दारुहलदी 6. कपूर
7. मेथी के बीज 8. पद्माख 9. मेंहदी के पत्ते
10. चक्रमर्द (चकौंड़) के बीज।

२५. ल्यूकोडर्मा-सफेद दाग या श्वित्र की विशिष्ट हवन सामग्री

1. अपराजिता मूल 2. अंजीर के पत्ते 3. ईश्वरमूल
4. काला उड़द 5. काला तिल 6. काली मिर्च
7. केले के पत्ते 8. खैर की लकड़ी 9. गिलोय
10. गूलर या कठगूलर 11. गुड़ 12. गोरोचन
13. चक्रमर्द 14. चमेली के पत्ते 15. चोपचीनी
16. तुलसीपत्र 17. दारुहल्दी 18. पद्माख

19. नीम पत्र, फल या निबौली 20. पिप्पली
21. फूलप्रियंगु 22. बकायन 23. बाकुची
24. बायविडंग 25. मुलहठी 26. रसौत या रसांजन
27. लाक्षा या लाख 28. लहसुन
29. विजयसार या बिजासार 30. सौंफ
31. शीतलचीनी या कबाबचीनी 32. हलदी
33. त्रिफला (आंवला, हरड़, बहेड़ा-समभाग में)।

२६. खसरा एवं चेचक की विशेष हवन सामग्री

1. मेंहदी की जड़ 2. नीम की छाल 3. हलदी
4. पटोलपत्र 5. श्योनाक 6. टीक अर्थात सागौन के फल
7. कलौंजी 8. जावित्री 9. बाँस की छाल
10. खैर की छाल 11. धमासा 12. धनिया
13. चौलाई की जड़ 14. गिलोय 15. तुलसी पत्र
16. बच 17. ब्राह्मी 18. हुलहुल
19. नागरमोथा 20. सारिवा 21. पाढ़ल
22. कुटकी 23. खिरैंटी 24. खस
25. वासा (अडूसा) 26. चिरायता 27. पित्तपापड़ा
28. चंदन 29. जायफल 30. दाख।

२७. प्लेग की विशिष्ट हवन सामग्री

1. कुटकी -100 ग्राम 2. अश्वगंधा -200 ग्राम
3. चिरायता -100 ग्राम 4. गिलोय -100 ग्राम
5. कालमेघ -100 ग्राम 6. अपराजिता -200 ग्राम
7. नीमपत्र या नीम की छाल -100 ग्राम
8. बच -200 ग्राम 9. नागरमोथा -200 ग्राम
10. गुग्गुल -200 ग्राम 11. लाल चंदन -100 ग्राम
12. इन्द्रायण की जड़-200 ग्राम।

२८. क्षय रोग की विशेष हवन सामग्री

1. रुदंती 2. रुद्रवंती 3. शरपुंखा
4. जावित्री 5. बिल्व की छाल 6. छोटी कंटकारी
7. बड़ी कंटकारी 8. तेजपत्र 9. पाढ़ल
10. वासा 11. गंभारी 12. श्योनाक
13. पृश्निपर्णी 14. शालिपर्णी 15. शतावर
16. अश्वगंधा 17. जायफल 18. नागकेशर
19. शंखाहुली (शंखपुष्पी) 20. नीलकमल
21. लौंग 22. जीवंती 23. कमलगट्टा की गिरी
24. मुनक्का 25. मकोय 26. केशर-यथाशक्ति।

२९. कैंसर (कर्कटार्बुद) की विशिष्ट हवन सामग्री

1. सदाबहार-बारहमासी या नयनतारा 2. कूठ 3. हलदी
4. दारुहलदी 5. मुलहठी 6. शरपुंखा
7. तालीस पत्र या थुनेर की छाल (आधी मात्रा में) 8. भारंगी
9. सीताफल या शरीफा के पत्ते या फल 10. प्रियंगु
11. छोटी कंटकारी 12. अमलतास के पत्ते
13. कचनार की छाल 14. गुग्गुल 15. खदिर या खैर
16.तेजफल या तुंबरू(नेपाली धनिया) 17. लहसुन 18. चीड़
19. सलई-गोंद 20. देवदार 21. दालचीनी
22. गोरखमुंडी 23. अशोक 24. धमासा
25. चक्रमर्द या चकौंड़ 26.छोटा गोक्षुरू 27. चित्रक
28. अदरक 29. अपराजिता 30. श्वेत निशोथ
31. लाल चंदन 32. एलुआ या ग्वारपाठा
33. रेवंदचीनी (आरचू) 34. पद्माख 35. लोध्र
36. नीम-छाल एवं पत्ते 37. बरुण 38. पाठा
39. हरीतकी या हरड़ 40. मकोय (काकमाची)
41. स्वर्णक्षीरी 42. सहिजना या शिग्रु-छाल, बीज
43. पीलो ओगियो या पीलो जोगिड़ों (भुज-कच्छ) 44. श्यामातुलसी
45. पापरी या निर्विषी 46. बनगोभी या मयूर शिखा

47. भल्लातक या भिलावा (शोधित आधी मात्रा में) 48. बनफ्शा
49. हरचूर या बांदा 50. पतरंगा 51. चूका
52. अरण्य सूरण या बनकांदा 53. ताजे पादशाह (पुर्तुक या नाखूना)
54. जोगी पादशाह 55. पतंग 56. शाल
57. सप्तपर्ण या सतौना 58. बट (बरगद) की छाल
59. पीपल की छाल 60. पाकर की छाल
61. अमृता या गिलोय 62. जल पिप्पली
63. पुष्करमूल 64. अश्वगंधा 65. पुनर्नवा
66. शिवनिम्ब या नील 67. रुद्रवंती 68. पैपावर एस.
69. साइट्रस लिमोना (जमीरी नीबू) 70. बनोकरा-जैन्थियम एस.

३०.स्वाइन फ्लू की विशिष्ट हवन सामग्री

1 रार या शाल की गोंद 2 गिलोय 3 बाकुची
4 कड़वी बच या घुड़बच 5 नागरमोथा 6 शरपुंखा
7 सारिवा 8 भारंगी 9 अपामार्ग
10 आक-पंचांग 11 वासा 12 अगर
13 तगर 14 देवदार 15 चंदन
16 लालचंदन 17 अश्वगंधा 18 जायफल
19 लौंग 20 गूगल 21 चिरायता
22 कालमेघ 23 हाऊबेर
24 अनसफल-बादियान खताई 25. गोघृत

३१.हृदयरोग की विशिष्ट हवन सामग्री-सभीतरह के हृदय रोगों के लिए.

1. अर्जुन छाल 2. अपामार्ग 3. पुष्करमूल 4. ब्राह्मी
5. अगर 6. तगर 7. जटामांसी 8. शालपर्णी
9. दारुहलदी 10. हरड़ 11. द्राक्ष(दाख)12. सोंठ
13. तिलपुष्पी (डिजिटेलिस)के पत्ते 14. कुटकी 15. मुंडी
16. कूठ 17. पुनर्नवा 18. चित्रक 19. मीठी बच
20. नागबला(गंगेरन) 21. रास्ना 22. बला (खिरैंटी) की जड़
23. कहरुबा (अंबर)।

३२. मोटापानाशक विशिष्ट हवन सामग्री

1. गिलोय 2. बायविडंग 3. नागरमोथा 4. चव्य
5. चित्रक 6. अरणी (अग्निमंथ) 7. त्रिफला 8. त्रिकटु
9. विजयसार 10. कालीजीरी 11. लोध्र 12. अगर
13. नीम की पत्ती 14. आम की छाल 15. अनार की छाल
16. पुनर्नवा 17. बाकुची के बीज 18. गुग्गुल 19. लोबान
20. मोचरस 21. जामुन के पत्ते व बीज 22. कूठ
23. अर्जुन के फल व छाल 24. प्रियंगु 25. चंदन
26. नागकेसर 27. दोनों तरह की तुलसी (रामा व श्यामा)
28. एरंड मूल 29. अपामार्ग (चिरचिटा या ओंगा) 30. तेजपत्र
31. मालकांगनी (ज्योतिष्मती) के बीज 32. सर्पगंधा 33. जटामांसी
34. ब्राह्मी 35. मुलहठी 36. बच 37. शंखपुष्पी
38. पिप्पलामूल 39. पटोलपत्र 40. देवदार 41. निर्गुंडी
42. जौ 43. सुगंधबाला 44. कपूर 45. बिल्व
46. दालचीनी।

३३. हाइपोथाइरॉयडिज्म की विशिष्ट हवन सामग्री

1. काँचनार छाल –200 ग्राम 2. शरपुंखा –100 ग्राम
3. गिलोय –100 ग्राम 4. पुनर्नवा –100 ग्राम
5. भारंगी –100 ग्राम 6. सारिवा –100 ग्राम
7. शतावर –100 ग्राम 8. अश्वगंधा –100 ग्राम
9. कायफल –100 ग्राम 10. बरुण –100 ग्राम
11. अर्जुन –100 ग्राम 12. अशोक –100 ग्राम।

३४. प्रमेह रोग की विशेष हवन सामग्री

1. तालमखाना 2. मूसली-सफेद 3. मूसली-काली
4. गोक्षुरू-बड़ा 5. कौंचबीज 6. सुपारी
7. बबूल के बीज या फूल 8. शतावर
9. छोटी इलायची 10. इमली के बीज 11. अश्वगंधा
12. बला के बीज अर्थात् बीजबंद (खिरैंटी के बीज)
13. सालममिश्री 14. गोरखमुंडी 15. दारुहलदी
16. देवदार 17. आँवला 18. हरड़

19. बहेड़ा 20. नागरमोथा 21. बड़-बरगद की छाल
22. हलदी 23. जामुन के बीज की मींगी
24. खदिर 25. अग्निमंथ 26. भुईआमला।

३५. डायबिटीज की विशिष्ट हवन सामग्री

1. हलदी 2. निर्मली बीज 3. कालमेघ 4. सप्तरंगी
5. गिलोय 6. खस 7. लाजवंती (छुईमुई) के बीज
8. पुनर्नवा 9. शिलाजीत 10. कूठ-कड़वी 12. कुटज
13. मेथीदाना 14. अतीस-कड़वी 15. आम के गुठली की मींगी
16. दारुहलदी 17. रसौत 18. हरड़ 19. कुटकी
20.कैथ का गूदा 21. विजया (भाँग) 22. खुरासानी अजवायन
23. जामुन की गुठली 24. बिजयसार (बीजा)
25. गुड़मार 26. करेला का फल एवें पत्र 27. मेढ़ासिंगी
28. उलटकंबल 29. गूलर के फल 30. गूमा या द्रोणपुष्पी
31. कुन्दरू।

३६. साइटिका की विशिष्ट हवन सामग्री

1. ग्वारपाठे की जड़ 2. सलई की गोंद 3. सलई की छाल
4. निर्गुंडी 5. पुनर्नवा 6. अश्वगंधा
7. चित्रक 8. नागरमोथा 9. मुलहठी
10. हारसिंगार (पारिजात) के पत्ते 11. रास्ना
12. दशमूल अर्थात् सरिवन, पिठवन, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोक्षुरू, बेल, सोनापाठा, अग्निमंथ, गंभारी और पाढ़ल की छाल
13. बालछड़(जटामांसी) 14. मेथी के बीज
14. सहजन (मुनगा) की छाल 16. तेजपत्रक
17. धमासा 18. गुग्गुल 19. विदारीकंद
20. अखरोट की छाल, फल (मींगी) 21. केवाकंद
22. सोंठ 23. देवदार 24. एरंड की जड़
25. सुरंजान-मीठी 26. विधारा 27. काली हलदी
28. अमलतास-फल का गूदा 29. खिरैंटी

30. बकायन की आंतरिक छाल 31. मेढ़ासिंगी
32. ऊँटकटारा की जड़ 33. गिलोय 34. पोहकरमूल
35. पिप्पलामूल 36. तगर 37. कायफल।

३७. आमवात की विशेष हवन सामग्री

1. रास्ना 2. गिलोय 3. देवदार 4. गोक्षुरू
5. अमलतास की पत्ती एवं फल का गूदा 6. एरंड की जड़
7. पुनर्नवा (सांठी) 8. सोंठ 9. बिल्वगिरी 10. गंभारी छाल
11. पाढ़ल छाल 12. अरणी छाल 13. अरलू 14. पृश्निपर्णी
15. शालिपर्णी-पंचांग 16. छोटी एवं बड़ी कटेरी (दोनों)
17. कचूर 18. बड़ी हरड़ 19. बच 20. अतीस
21. वासा 22. गुग्गुल 23. पीपर 24. पिप्पलामूल
25. शतावर 26. अश्वगंधा 27. विधारा 28. प्रसारिणी
29. पुष्करमूल 30. अजवायन 31. अजमोद 32. बायविडंग
33. चव्य 34. चित्रक 35. जीवंती 36. कूठ
37. इंद्रायण की जड़ व फलों का बीज 38. जायफल
39. कालीमिरच 40. सफेद जीरा 41. गोरखमुंडी 42. कुटकी
43. निशोथ 44. तेजपात 45. दालचीनी 46. कटसरैया
47. मेथी 48. मकोय 49. इंद्रजौ 50. बला।

३८. गठियावात या जोड़ों के दरद की विशिष्ट हवन सामग्री

1. महारास्नादि क्वाथ (26 औषधियाँ) 2. दशमूल (दस औषधियाँ)
3. निर्गुंडी 4. नागरमोथा 5. पाढ़ा 6. भारंगी
7. मूर्वा 8. एरंड मूल 9. गिलोय 10. हरड़
11. बायविडंग 12. कुटकी 13. गुग्गुल 14. सर्पगंधा
15. पिप्पलामूल 16. मुलहठी 17. अश्वगंधा 18. त्रिकटु
19. हींग 20. अजमोद 21. बच 22. चित्रक
23. इंद्रायण 24. अकरकरा 25. सलई गोंद 26. वासा
27. ज्योतिष्मती (मालकंगनी) के बीज।

३९. गाउटी आर्थ्राइटिस की विशिष्ट हवन सामग्री

1. मंजीष्ठ	2. हरड़	3. बहेड़ा	4. गिलोय
5. कुटकी	6. बच	7. दारुहलदी	8. नीम छाल
9. नागरमोथा	10. धनिया	11. सोंठ	12. भारंगी
13. कटेरी पंचांग	14. मूर्वा	15. बायविडंग	16. बिजासार
17. चित्रक की छाल	18. शतावर	19. त्रायमाण	20. वासा पत्र
21. छोटी पिप्पली	22. भांगरा	23. देवदार	24. लाल चंदन
25. बरुण छाल	26. निशोथ	27. बावची	28. करंज
29. इंद्रायण की जड़	30. अतीस	31. सारिवा	32. पित्तपापड़ा
33. कचनार-छाल	34. शरपुंखा	35. गुग्गुल	36. एरंड मूल
37. बबूल की छाल	38. गोक्षुरू	39. गोरखमुंडी	40. निर्गुंडी
41.सहजन की छाल	42. रास्ना	43. चोपचीनी	44. अरणी
45. शीशम की छाल।			

४०. पक्षाघात की विशिष्ट हवन सामग्री

1. एरंड मूल	2. कौंच बीज	3. खिरैंटी (बला) मूल	
4. उड़द	5. सोंठ	6. सुगंधितृण (आज्ञाघास)	
7. रास्ना	8. अश्वगंधा	9. शतावर	10. पिप्पली
11. पिप्पलामूल	12. चित्रक	13. सौंफ	14. बिल्व छाल
15. ज्योतिष्मती (मालकांगनी) के बीज			16. नागबला
17. मीठी बच (कड़वी बच)		18. धमासा	
19. देवदार	20. कचूर	21. अडूसा (वासा)	
22. हरड़	23. चव्य	24. नागरमोथा	
25. पुनर्नवा	26. गिलोय	27. विधारा	
28. गोक्षुरू	29. चोपचीनी	30. गोरखमुंडी	
31. अमलतास का गूदा		32. कटसरैया	33. धनिया
34. छोटी कटेरी	35. बड़ी कटेरी	36. ब्राह्मी	37.अतीस

1 से 36 तक की सभी चीजें बराबर मात्रा में अर्थात् 100-100 ग्राम लें एवं 37.अतीस को 5 ग्राम लें।

४१. ल्यूकोरिया अर्थात श्वेत प्रदर की विशेष हवन सामग्री

1. धाय फूल 2. मोथा 3. शतावर 4. अश्वगंधा
5. गिलोय 6. एरंडमूल 7. चिकनी सुपारी 8. चिरायता
9. कुश (डाभ) 10. पाढ़ल 11. अंजीर 12. कठूमर
13. गूलर की छाल या फल 14. शिवलिंगी के बीज
15. जटामांसी 16. अशोक की छाल 17. उलटकंबल
18. बिल्वगिरी 19. श्वेत कमल 20. कमलकेशर
21. लोध्र 22. आँवला 23. हरड़ 24. नागकेशर
25. श्वेत चंदन 26. करंज बीज की गिरी 27. राल
28. कुड़ा छाल (कुटज) 29. शीतलचीनी
30. साल की छाल 31. कड़वी तूंबी या लौकी के पत्ते
32. जियापोता 33. कपास की जड़ व गोंद (कतीरा)
34. तालमखाना या तुख्ममलंगा 35. बबूल की फली
36. पटसन के फूल 37. सागवन की छाल
38. रक्तरोहेड़ा 39. देवदार 40. पुनर्नवा
41. मुलहठी (मधुयष्ठी) 42. सोंठ 43. दारुहलदी
44. ढाक की छाल एवं गोंद (कमरकस) 45. अपामार्ग
46. काँटा चौलाई की जड़ 47. कचनार 48. सौंफ
49. खीरा एवं ककड़ी के बीज 50. भिंडीकी जड़ 51. माजूफल
52. सुगंधबाला 53. पीपल की छाल
54. काकजंघा एवं 55. अनार के सूखे फूल।

४२. मेट्रोरेजिया अर्थात रक्त प्रदर की विशेष हवन सामग्री

1. शिवलिंगी के बीज 2. उलटकंबल 3. धाय फूल
4. अर्जुन छाल 5. लाल चंदन 6. श्योनाक 7. उषवा
8. अडूसा (वासा) 9. चिरायता 10. आम की गुठली
11. जामुन की गिरी 12. कमलकेशर 13. दूर्बा 14. नागकेशर
15. बहुफली 16. खस 17. मंजीष्ठ 18. शरपुंखा
19. छोटी इलायची 20. मीठा कूठ 21. हलदी 22. दारुहलदी
23. सेमर के फूल व गोंद(मोचरस) 24. माजूफल 25. लाख
26. पद्माख 27. बला मूल 28. कुश की जड़ 29. आँवला

30. हरड़ 31. सुगंधबाला 32. देवदार 33. सोंठ
34. नीम छाल 35. गुलाब के फूल 36. लोध 37. शतावर
38.अतिबला की जड़ 39. अश्वगंधा 40. गिलोय 41. एरंड मूल
42. चिकनी सुपारी 43. अशोक छाल 44. बिल्वगिरी
45. मुलहठी 46. ढाक की छाल व गोंद (कमरकस)
47. अपमार्ग 48. काँटा चौलाई की जड़ 49. कठूमर
50. जटामांसी 51. पाकर 52. पुनर्नवा 53. बादाम
54.साल की छाल 55. गुंजा मूल 56. छुआरे की गुठली।

४३. बंध्यापन दूर करने की विशेष हवन सामग्री

1. सफेद फूलों वाली छोटी कंटकारी (लक्ष्मणा-पंचांग)
2. जियापोता (पुत्रजीवा) के फल या मूल
3. श्वेत बरियारा (बला या खिरैंटी) की जड़
4. शिवलिंगी के बीज
5. ब्रह्मदंडी-पंचांग 6. शरपुंखा की जड़
7. अपराजिता (विष्णुकांता) पंचांग 8. उलटकंबल
9. अशोक छाल 10. लोध्र 11. देवदार 12. अश्वगंधा
13. जीवक 14. बरगद के अंकुर (कोपल) 15. चंदन
16. खस 17. पद्माख 18. बच
19. दोनों सारिवा 20. चमेली के फूल 21. बालछड़
22. कुमुदिनी 23. नागबला (गंगेरन) की छाल या पत्ता
24. नागकेशर 25. जटामांसी 26. नागरमोथा
27. पीपल के पके फल के बीज 28. गूलर के पके फल
29. पारस पीपल की जड़ या बीज
30. कौंच (केवांच) की जड़ या बीज।

४४. गर्भपुष्टि की विशेष हवन सामग्री

1. सौंफ 2. कासनी 3. धनिया 4. खस
5. खसखस (पोस्त बीज) 6. इंद्रजौ-मीठा 7. पलाश गोंद
8. गुलाब के फूल 9. मुनक्का 10. ब्रह्मदंडी।

४५. बच्चों की अस्वस्थता निवारण की विशेष हवन सामग्री

1. अतीस 2. काकड़ासिंगी 3. नागरमोथा 4. धनिया
5. छोटी पिप्पली 6. धाय के फूल 7. मुलहठी 8. वासा
9. कंटकारी (कटैली फूल) 10. नीम पत्र।

४६. क्लैव्यतानाशक विशिष्ट हवन सामग्री

1. गोक्षुरू 2. तालमखाना 3. अकरकरा 4. अश्वगंधा
5. शतावर 6. लौंग 7. जायफल 8. कपूर
9. श्वेत मूसली 10. कौंच बीज 11. काली मूसली
12. मुलहठी 13. बला(खिरैंटी) 14. बन उड़द
15. कदंब की गोंद 16. कायफल 17. भिलावा गिरी (शोधित)।

४७. गोनोरिया - सोजाक हेतु विशेष हवन सामग्री

1. अनंतमूल 2. अपराजिता-पंचांग 3. चोपचीनी
4. कालीमिर्च 5. अतिबला (कंघी) पंचांग 6. अपामार्ग
7. विलायती बबूल के पत्ते (अरिमेद) 8. गोक्षुरू
9.आमवृक्ष की छाल 10. पीपल की छाल 11. आंवला
12. इमली के वृक्ष की छाल 13. छोटी इलायची
14. कबावचीनी (शीतलचीनी) 15. कतीरा
16. कमरकस (समुद्रसोख) 17. गंधबिरोजा
18. कांटा चौलाई की जड़ 19. दारुहलदी
20. खिरैंटी (बला) के बीज 21. रसौत
22. गावजबान 23. इंद्रजौ 24. बिधारा
25. मकोय-पंचांग 26. साल वृक्ष की छाल 27. मंजीष्ठ
28. शीशम 29. शरपुंखा 30. सुरंजान
31. मोचरस (सेमर का गोंद) 32. सौंफ
33. स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी) मूल 34. मुलहठी
35. रेवंदचीनी 36. चंदन-सफेद 27. नीम छाल
38. माजूफल 39. जवासा 40. हरड़
41. तृणपंचमूल (कुश, कांस, खस, ईख एवं शरकंडे की जड़)

42. दुग्धिका (दूधी-लाल) 43. शतावर
44. कत्था या खैर की छाल 45. मेंहदी के पत्ते।

४८. सिफलिस-उपदंश रोग की विशेष हवन सामग्री

1. पाठा 2. दारुहलदी 3. रसौत 4. चोपचीनी
5. नीम छाल 6. आक-मूल 7. चित्रक 8. स्वर्णक्षीरी-मूल
9. गुलब्बास (फोर'ओ क्लॉक) के पत्ते 10. शरपुंखा
11. श्वेत अपराजिता-पंचांग 12. सुपारी 13. चमेली के पत्ते
14. कत्था या खैर की छाल 15. काले धतूरे की जड़
16. श्वेत गुड़हल की जड़ 17. मकोय-पत्ते या पंचांग
18. शीतलचीनी (कबावचीनी) 19. अरणी (अग्निमंथ)
20. अनंतमूल 21. कनेर-मूल 22. काँटा चौलाई 23. दूर्बामूल
24. मंजीष्ठ 25. चिरायता 26. गिलोय 27. कटसरैया
28.विलायती बबूल (अरिमेद-पत्ते)29. कड़ुई तोरई के बीज
30. कसौंदी के पत्ते 31.शीशम की छाल 32. लौंग
33. त्रिफला (आँवला, हरड़, बहेड़ा-समभाग) 34. दालचीनी
35. लाल एवं श्वेत चंदन 36. सुरंजान-मीठा 37. अजमोद
38. खुरासानी अजवायन 39. गुग्गुल 40. जायफल
41. बरगद की जड़ एवं पत्ते 42. विजयसार 43. जावित्री
44. अपामार्ग 45. गावजबान (गोजिह्वा) 46. भृंगराज
47. छिरेंटा (जलजमनी) की जड़ 48. इंद्रायण-मूल
49. पर्णबीज-ब्रायोफिलम की जड़ 50. अकरकरा
51. तालमखाना 52. सौंफ 53. सनाय 54. मुनक्का
55. सारिवा 56. नागरमोथा 57. तुलसी 58. काली मिरच
59. कतीरा (ढाक की गोंद) 60. बबूल के फूल।

४९. एड्स या ओजक्षय की विशिष्ट हवन सामग्री

1. यष्ठीमधु (मुलहठी) 2. अश्वगंधा 3. शतावर
4. बिदारीकंद (शोधित) 5. बच 6. श्यामातुलसी
7. सप्तपर्णी 8. पिप्पली 9. सोंठ

10. चित्रक छाल　11. कालीमिर्च　12. आँवला
13. हरड़ (हरीतकी)　14. बहेड़ा　15. गिलोय
16. नीमछाल　17. हरिद्रा　18. दारुहरिद्रा
19. पुनर्नवा　20. दूर्वा (दूब)　21. गोरखमुंडी
22. जटामांसी　23. ब्राह्मी　24. जलनीम
25. सफेद मूसली　26. काली मूसली　27. मखाना
28. उटंगन　29. कालमेघ　30. कूठ
31. पटोलपत्र (परवर)के पत्ते　32. इंद्रायण मूल　33. अकरकरा
34. त्रायमाण　35. कुटकी　36. अतिबला
37. भुईआँवला　38. मंडूकपर्णी　39. अमलतास
40. मूँज (भुंजातक)　41. तालमखाना　42. वासा
43. कौंचबीज　44. कायफल　45. चिरायता
46. खदिर छाल　47. विडंग　48. मोथा
49. मंजीष्ठ　50. देवदारु　51. मूर्वा
52. कड़वी अतीस(चौथाई भाग)　53. मकोय　54. इंद्रजौ
55. पद्माख　56. तुवरक बीज　57. गुग्गुल
58. शाल की छाल　59. मेषशृंगी　60. गोक्षुरू
61. अर्जुन　62. पलाश　63. पित्तपापड़ा
64. चिरौंजी　65. शंखपुष्पी　66. रास्ना
67. पाढ़ल　68. जीवक　69. जीवंती
70. छोटी व बड़ी कंटकारी　71. अरणी　72. सोनपाठा
73. भारंगी　74. बिल्व।

५०. मुख-रोगों की विशिष्ट हवन सामग्री

1. कचूर कपूरकचरी　2. शीतलचीनी　3. अकरकरा
4. खदिर (खैर) की छाल　5. बबूल की छाल　6. नीमछाल
7. अरिमेद (दुर्गंध खैर)की छाल　7.सिरीष की छाल　9. मौलश्री
10. पतंग　11. मंजीष्ठ　12. करील
13. चमेली की जड़　14. इलायची　15. रतनजोत
16. सुगंधबाला　17. सारिवा　18. अगर

19. दारुहलदी 20. पद्माख 21. लौंग
22. चंदन 23. तगर 24. जवासा
25. त्रिफला (आँवला, हरड़, बहेड़ा-समभाग) 26. धाय पुष्प
27. नागरमोथा 28. मुलहठी 29.दालचीनी
30. खस 31. जटामांसी 32.आकमूल
33. लोध्र 34. पिप्पली 35. रसौत
36. पीली कटसरैया के पत्ते 38. हलदी 39. अजमोद
40. अजवायन 41. अपामार्ग 42. असन
43. बड़ की छाल 44. कायफल 45. कटेरी
46. मेंहदी के पत्ते 47. माजूफल 48. सुपारी
49. काली मिरच 50. जावित्री 51.बायविडंग
52. पुनर्नवा 53. बच 54. सोंठ
55. सर्ज।

५१. नेत्ररोगों की विशिष्ट हवन सामग्री

1. कपूर 2. लौंग 3. लाल चंदन 4. दारुहलदी
5. रसौत 6. हलदी 7. लोध्र 8. मुलेठी
9. देवदार 10. वच 11. नीम पत्र 12. धमासा
13. बबूल के पत्ते 14. गोरखमुंडी 15. कचूर 16. कमल।

५२. व्रण या घाव की विशिष्ट हवन सामग्री

1. चमेली के पत्ते 2. पद्माख 3. दूर्वा मूल
4. बरगद की जटा 5. तुलसी की जड़ 6. तिल
7. नीम की गुठली 8. नीम के पत्ते 9.आमाहलदी
10. हलदी 11. दारुहलदी 12. चंदन
13. प्रियंगु 14. गुग्गुल 15.गंधबिरोजा
16. अगर 17. राल चूर्ण 18. सारिवा
19. देवदार 20. सर्ज 21. गोघृत।

५३. ओ.सी.डी. एवं शाइजोफ्रेनिया की विशिष्ट हवन सामग्री

1. ब्राह्मी -100 ग्राम 2. शंखपुष्पी -100 ग्राम
3. मीठी बच -100 ग्राम 4. मुलहठी(मधुयष्ठी)-100 ग्राम
5. गिलोय -100 ग्राम 6. शतावर -100 ग्राम
7. मंडूकपर्णी -100 ग्राम 8. जटामांसी -100 ग्राम
9. मीठा कूठ -100 ग्राम 10. भोजपत्र -100 ग्राम
11.मालकांगनी के बीज-100 ग्राम 12. अश्वगंधा -100 ग्राम
13.खुरासानी अजवायन-100 ग्राम 14. तगर -100 ग्राम
15. सर्पगंधा - 50 ग्राम 16. जौ -100 ग्राम
17. काला तिल -100 ग्राम 18. गोघृत -500 ग्राम
19. खाँडसारी गुड़ या शक्कर-750 ग्राम।

५४. मिरगी रोग की विशिष्ट हवन सामग्री

1. अश्वगंधा -100 ग्राम 2. अपामार्ग के बीज-100 ग्राम
3. अतीस -50 ग्राम 4. अंबर -100 ग्राम
5. अर्कमूल -50 ग्राम 6. छोटी इलायची -100 ग्राम
7. उस्तखुद्दूस -100 ग्राम 8. कर्पूर -100 ग्राम
9. कमलगट्टा -100 ग्राम 10.कपूरकचरी या कचूर-100 ग्राम
11. काली मिरच -100 ग्राम 12. कनेर के फूल -100 ग्राम
13. कुलंजन -100 ग्राम 14. कूठ-कड़वा -100 ग्राम
15. कौवाठोड़ी -100 ग्राम 16. गिलोय -100 ग्राम
17. गोक्षुरू -100 ग्राम 18. गुलाब पुष्प -100 ग्राम
19. गुग्गुल -100 ग्राम 20. गोरोचन -10 ग्राम
21. गोरखमुंडी -100 ग्राम 22. चंदन-लाल -100 ग्राम
23. चावल -100 ग्राम 24. छाड़-छरीला -100 ग्राम
25. जटामांसी -100 ग्राम 26. जायफल -100 ग्राम
27. जीरा -100 ग्राम 28. तुलसी -100 ग्राम
29. तगर -100 ग्राम 30. दारुहलदी -100 ग्राम
31. दूर्वा -100 ग्राम 32. धूप -100 ग्राम

33. नागरमोथा या मोथा	-100 ग्राम	34. पिप्पली	-100 ग्राम
35. पुष्करमूल	-100 ग्राम	36. कुष्मांड (पेठा)	-100 ग्राम
37. ब्राह्मी	-100 ग्राम	38. मीठी बच	-100 ग्राम
39. बाँदा	-100 ग्राम	40. बिच्छू घास	-100 ग्राम
41. भोजपत्र	-100 ग्राम	42. भिलावा	-50 ग्राम
43. भूतकेशी	-100 ग्राम	44. मूर्वा	-100 ग्राम
45. मुलहठी	-100 ग्राम	46. रास्ना	-100 ग्राम
47. राल	-100 ग्राम	48. राई	-100 ग्राम
49. शतावर	-100 ग्राम	50. शंखपुष्पी	-100 ग्राम
51. सर्पगंधा	-50 ग्राम	52. सहजने के बीज	-100 ग्राम
53.श्वेत या पीली सरसों	-100ग्राम	54. हिंगुपत्री	-100 ग्राम
55. हींग	-20 ग्राम	56. हरड़	-100 ग्राम
57. गोघृत	-500 ग्राम	58. शर्करा	-500 ग्राम ।

५५. उन्माद रोग की विशिष्ट हवन सामाग्री

1. आक-मूल	2. अपामार्ग	3. अजवायन	4. अजमोद
5. अश्वगंधा	6. अतिबला	7. अपराजिता	8. इलायची
9. काली अनंतमूल	10. इंद्रजौ	11. इंद्रायण	12. कायफल
13. कूठ	14. कुचला	15. केसर	16. कुटकी
17.कपास के बीज	18.काली मिरच	19. कुलंजन	20. केपूर
21. काला जीरा	22. सफेद जीरा	23. कुश	24. लाल गुंजा
25. खस की जड़	26. काकड़ासिंगी	27. गोरखमुंडी	28. गजपीपल
29.करंज के बीज	30. गिलोय	31. गुग्गुल	32. चंदन
33.चीड़ का बुरादा	34. चित्रक	35. जटामांसी	36. तिल
36. ज्योतिष्मती के बीज	37. जलकुंभी (पिस्टिया)		39. तगर
40. तालीसपत्र	41. तुलसी	42. दालचीनी	43. दूर्वा
44. देवदार	45. धूप सरल	46. निशोथ	47. नागकेसर
48. नागरमोथा	49. नीमपत्र	50.पेठे के बीज	51. प्रियंगु
52. पिप्पलामूल	53. पिप्पली	54. पाठा	55. मीठी बच
56. बहेड़ा	57. बला	58. भिलावा	59. मुलहठी

60. मंजीष्ठ 61. मैनफल 62. मेढ़ासिंगी 63. मंडूकपर्णी
64. राल 65. रेवंदचीनी 66. लोध्र 67. लाख
68. लौंग 69. शंखपुष्पी 70. शतावर 71. सर्पगंधा
72.सिरस के बीज 73. सरसों 74. सोंठ 75. सौंफ
76.सहिजन के बीज 77. सुगंधकोकिला 78. सोमलता
79. हींग 80. हिंगुपत्री 81. हलदी 82. दारुहलदी
83.कहरुबा(अंबर) 84. हरड़ 85. त्रायमाण 86. आँवला।

५६. स्ट्रेस या तनाव एवं हाइपरटेंशन की विशेष हवन सामग्री

1. ब्राह्मी -100 ग्राम 2. शंखपुष्पी -100 ग्राम
3. शतावर -100 ग्राम 4. सर्पगंधा -100 ग्राम
5. गोरखमुंडी -100 ग्राम 6. मालकांगनी -100 ग्राम
7. मौलश्री-छाल -100 ग्राम 8. गिलोय -100 ग्राम
9. सुगंधकोकिला -100 ग्राम 10. नागरमोथा -200 ग्राम
11. घुड़बच -50 ग्राम 12. मीठी बच -50 ग्राम
13. जलकुंभी-पिस्टिया-100 ग्राम 14. तिल -100 ग्राम
15. जौ -100 ग्राम 16. चावल -100 ग्राम
17. घी -100 ग्राम 18. खाँडसारी गुड़ -50 ग्राम

५७. डिप्रेशन अर्थात दबाव-अवसाद आदि मानसिक रोगों की विशेष हवन सामग्री

1. अकरकरा 2. माालकांगनी (ज्योतिष्मती) 3. तीमरू
4. मीठी बच 5. घुड़बच 6. जटामांसी 7. नागरमोथा
8. गिलोय 9. तेजपत्र 10. जौ 11. तिल
12. सुगंधकोकिला 13. चावल 14. घी
15. खाँडसारी गुड़ या शक्कर।

५८. अनिद्रा रोग की विशेष हवन सामग्री

1. काकजंघा 2. पिप्पलामूल 3. भारंगी 4. जटामांसी
5. जलकुंभी (पिस्टिया) 6. ब्राह्मी 7. शंखपुष्पी
8. सर्पगंधा 9. सुगंधकोकिला 10. ज्योतिष्मती।

५९. सामान्य मस्तिष्क रोगों की विशेष हवन सामग्री

1. देशी बेर का गूदा (पल्प)
2. मौलश्री की छाल
3. पीपल वृक्ष की कोपलें
4. इमली के बीजों की गिरी
5. काकजंघा
6. बरगद के फल
7. खिरैंटी के बीज (बीजबंद)
8. गिलोय
9. गोरखमुंडी
10. शंखपुष्पी
11. मालकांगनी (ज्योतिष्मती)
12. ब्राह्मी
13. मीठी बच
14. शतावर
15. जटामांसी
16. सर्पगंधा।

६०. मंदबुद्धि मिटाने की विशेष हवन सामग्री

1. शतावर
2. ब्राह्मी
3. ब्रह्मदंडी
4. गोरखमुंडी
5. मालकांगनी के बीज
6. शंखपुष्पी
7. मंडूकपर्णी
8. मीठी बच।

६१. सरस्वती पंचक की विशिष्ट हवन सामग्री

1. ब्राह्मी
2. शंखपुष्पी
3. शतावर
4. गोरखमुंडी
5. मीठी बच
6. तिल
7. चावल
8. जौ
9. खाँडसारी गुड़ या शक्कर
10. घी।

६२. विद्या प्राप्ति हेतु सिद्ध हयग्रीव मंत्र के साथ विशिष्ट हवन सामग्री का प्रयोग

1. गिलोय
2. अपामार्ग
3. शंखपुष्पी
4. ब्राह्मी
5. मीठी बच
6. सोंठ
7. शतावर।

६३. पर्यावरण परिशोधन की विशिष्ट हवन सामग्री

1. अगर
2. अनंतमूल
3. अपामार्ग
4. आम के सूखे पत्ते
5. आँवला
6. इंद्रजौ
7. बड़ी इलायची
8. बड़ी कटेरी
9. कपूर
10. किशमिश
11. कूठ
12. केशर

13. गिलोय	14. गुग्गुलु	15. गंधक
16. चमेली या चंपा पुष्प	17. चौलाई की जड़	18. गंधतृण
19. चंदन का बुरादा	20. छुआरा	21. जटामांसी
22. जायफल	23. जौ	24. तगर
25. तज	26. तालीसपत्र	27. तुलसी
28. तेजपत्र	29. दवना	30. दालचीनी
31. देवदार का बुरादा	32. दूर्वा	33. नागरमोथा
34. निर्गुंडी	35. निशोथ	36. नागकेसर
37. नीम की सूखी पत्ती या छाल		38. प्रियंगु
39. नेर या गुलपिटा की पत्ती		40. बच
41. फरहद या परिभद्र	42. बला	43. बाकुची
44. बिल्वगिरी	45. ममीरी	46. मरुआ तुलसी
47. मौलश्री	48. मंजीष्ठ	49. राल
50. लाख	51. लोबान	52. लोध्र
53. लौंग	54. सिरस छाल	55. सरसों
56. साल गोंद	57. सुगंधबाला	58. सर्ज
59. सुपारी	60. हलदी	61. हरीतकी
62. गोघृत	63. खाँडसारी गुड़ या शक्कर अथवा शहद।	

६४. शिशिर ऋतु की विशिष्ट हवन सामग्री

1. शतावर	-100 ग्राम	2. दारुहलदी	-100 ग्राम
3. चिरायता	-100 ग्राम	4. मुलहठी	-100 गाम
5. बड़ी इलायची	-100 ग्राम	6. कपूरकचरी	-100 ग्राम
7. बायविडंग	-100 ग्राम	8. मोचरस	-100 ग्राम
9. गिलोय	-100 ग्राम	10. चिरौंजी	-100 ग्राम
11. गोरखमुंडी	-100 ग्राम	12. काकड़ासिंगी	-100 ग्राम
13. पद्माख	-100 ग्राम	14. सुपारी	-100 ग्राम
15. जटामांसी	-50 ग्राम	16. भोजपत्र	-50 ग्राम
17. रेणुका(संभालू के बीज)	-50 ग्राम	18. कौंच बीज	-50 ग्राम
19. शंखपुष्पी	-50 ग्राम	20. गुग्गुल	-150 ग्राम

21. छुआरा -200 ग्राम 22. काला तिल -50 ग्राम
23. अखरोट -200 ग्राम 24.तुलसी के बीज-200 ग्राम
25. चंदन चूरा बुरादा. -200 ग्राम 26. तुंबरू -250 ग्राम
27. राल -250 ग्राम 28. मुनक्का -250 ग्राम।

६५. वसंत ऋतु की विशिष्ट हवन सामग्री

1. अगर -100 ग्राम 2. तगर -100 ग्राम
3. इंद्रजौ -100 ग्राम 4. तालीसपत्र -100 ग्राम
5. भूरिछरीला (दगड़फूल) -100 ग्राम 6. तेजपत्र -100 ग्राम
7. शीतलचीनी (कबावचीनी)-100ग्राम 8. श्वेत चंदन -100 ग्राम
9. लाल चंदन -100 ग्राम 10. जायफल -100 ग्राम
11.कमलगट्टा (मखाना) -100 ग्राम 12. बनकचूर -100 ग्राम
13.कड्डुई बच(घोड़बच) -100 ग्राम 14. दालचीनी -100 ग्राम
15. तेजबल की जड़ और छाल-100 ग्राम 16. खस -100 ग्राम
17. गोक्षुरू -100 ग्राम 18. चिरायता -100 ग्राम
19. वासा -100 ग्राम 20. कंटकारी -100 ग्राम
21. लाजवंती -50 ग्राम 22. कुलिंजन -50 ग्राम
23. शंखपुष्पी -50 ग्राम 24. मंजीष्ठ -150 ग्राम
25. तुलसीपत्र(श्यामा) -100 ग्राम 25. यष्ठीमधु -100 ग्राम
27. सुगंधबाला -50 ग्राम 28. हाऊबेर -100 ग्राम
29. पटोलपत्र -100 ग्राम 30. नीमपत्र -100 ग्राम
31. सँभालू के पत्ते -100 ग्राम 32. कपूर -100 ग्राम
33. कपूरकचरी -125 ग्राम 34. द्राक्ष(मुनक्का)-250ग्राम
35. देवदार -250 ग्राम 36. गिलोय -250 ग्राम
37. गुग्गुल -250 ग्राम 38. धूप -250 ग्राम
39. पुष्करमूल -250 ग्राम 40. नागकेसर -100 ग्राम
41. गूलर की छाल -250 ग्राम 42. केसर -10 ग्राम
43. जावित्री -15 ग्राम 44. गोघृत -500 ग्राम
45. शक्कर या खाँडसारी गुड़-750 ग्राम।

६६. ग्रीष्म ऋतु की विशिष्ट हवन सामग्री

1. नागरमोथा	-100 ग्राम	2. बच	-100 ग्राम
3. लाल चंदन	-100 ग्राम	4. बायविडंग	-100 ग्राम
5. तगर	-100 ग्राम	6. गिलोय	-100 ग्राम
7. तेजबल की जड़ एवं छाल	-100 ग्राम	8. भोजपत्र	-100 ग्राम
9. दालचीनी	-100 ग्राम	10. कुश की जड़	-100 ग्राम
11. खस	-100 ग्राम	12. दगड़फूल-छरीला	-100 ग्राम
13. शतावर	-100 ग्राम	14. मंजीष्ठ	-100 ग्राम
15. सुगंधबाला	-100 ग्राम	16. जटामांसी	-100 ग्राम
17. नेत्रबाला	-100 ग्राम	18. तालीसपत्र	-100 ग्राम
19. पद्माख	-100 ग्राम	20. दारुहलदी	-100 ग्राम
21. बड़ी इलायची-एला	-100 ग्राम	22. उन्नाव	-100 ग्राम
23. आँवला	-100 ग्राम	24. निर्मली फल	-100 ग्राम
25. लौंग	-100 ग्राम	26. धूप	-100 ग्राम
27. कपूर	-100 ग्राम	28. गुग्गुल	-100 ग्राम
29. तुलसी	-100 ग्राम	30. शाल	-100 ग्राम
31. देवदार	-100 ग्राम	32. गंधबिरोजा	-100 ग्राम
33. लाख	-100 ग्राम	34. अंबर	-50 ग्राम
35. कपूरकचरी	-150 ग्राम	36. शिलारस	-150 ग्राम
37. सफेद चंदन	-200 ग्राम	38. चिरौंजी	-250 ग्राम
39. गुलाब पुष्प	-300 ग्राम	40. तुंबरू	-250 ग्राम
41. सुपारी	-250 ग्राम	42. केशर	-10 ग्राम
43. खाँडसारी गुड़ या शक्कर	-750 ग्राम	44. गोघृत	-500 ग्राम।

६७. वर्षा ऋतु की विशिष्ट हवन सामग्री

1. छोटी इलायची	-50 ग्राम	2. शंखपुष्पी	-50 ग्राम
3. आम की सूखी पत्ती	-100 ग्राम	4. काला अगर	-100 ग्राम
5. तगर	-100 ग्राम	6. इंद्रजौ	-100 ग्राम
7. कचूर	-100 ग्राम	8. काकमाची	-100 ग्राम

9. कुटज -100 ग्राम 10. कुश -100 ग्राम
11. कूठ -100 ग्राम 12. गिलोय -100 ग्राम
13. गोरखमुंडी -100 ग्राम 14. गंधतृण -100 ग्राम
15. चिरायता -100 ग्राम 16. चीड़ -100 ग्राम
17. जायफल -100 ग्राम 18. तेजपत्र -100 ग्राम
19. धूप -100 ग्राम 20. नागकेसर -100 ग्राम
21. निर्मली बीज -100 ग्राम 22. बायविडंग -100 ग्राम
23. बिल्वमज्जा या बेलपत्र-100 ग्राम 24. ब्राह्मी -100 ग्राम
25. विष्णुकांता -100 ग्राम 26. मोचरस -100 ग्राम
27. तुलसी के बीज -150 ग्राम 28. पीली सरसों-100 ग्राम
29. मखाना -150 ग्राम 30. कपूर -250 ग्राम
31. श्वेत चंदन-चूरा -250 ग्राम 32. गुग्गुल -250 ग्राम
33. छुआरा -250 ग्राम 34. जटामांसी -250 ग्राम
35. देवदार -250 ग्राम 36. नारियल गिरी-250 ग्राम
37. नीम के सूखे पत्ते -250 ग्राम 38. बच -250 ग्राम
39. राल -250 ग्राम 40. गोघृत -500 ग्राम
41. खाँडसारी गुड़ या शक्कर-750 ग्राम।

६८. शरद ऋतु की विशिष्ट हवन सामग्री

1. सहदेवी -50 ग्राम 2. अश्वगंधा -100 ग्राम
3. इंद्रजौ -100 ग्राम 4. बड़ी इलायची-100 ग्राम
5. खस -100 ग्राम 6. गिलोय -100 ग्राम
7. चिरायता -100 ग्राम 8. पीला चंदन -100 ग्राम
9. लाल चंदन -100 ग्राम 10. जायफल -100 ग्राम
11. तालमखाना -100 ग्राम 12. दालचीनी -100 ग्राम
13. धान की खील-लावा -100 ग्राम 14. नागकेसर -100 ग्राम
15. नागरमोथा -100 ग्राम 16. परवर के पत्ते-100 ग्राम
17. पत्रज-तेजपत्र. -100 ग्राम 18. पित्तपापड़ा -100 ग्राम
19. काला तिल -100 ग्राम 20. आम की पत्ती-100 ग्राम
21. श्वेत दूर्वा -100 ग्राम 22. नीम की पत्ती-100 ग्राम

23. ब्राह्मी	-100 ग्राम	24. बिदारीकंद	-100 ग्राम
25. भारंगी	-100 ग्राम	26. दाख-मुनक्का	-100 ग्राम
27. मोचरस	-100 ग्राम	28. शीतलचीनी	-100 ग्राम
29. अपराजिता	-100 ग्राम	30. अगर	-150 ग्राम
31. कचूर	-150 ग्राम	32. कपूरकचरी	-250 ग्राम
33. कपूर	-250 ग्राम	34. गुग्गुल	-250 ग्राम
35. गूलर की छाल	-250 ग्राम	36. श्वेत चंदन	-250 ग्राम
37. चिरौंजी	-250 ग्राम	38. जटामांसी	-250 ग्राम
39. सेमल के फूल	-250 ग्राम	40. किसमिस	-300 ग्राम
41. केसर	-10 ग्राम	42. घृत	-500 ग्राम

43. खाँडसारी गुड़ या शक्कर-750 ग्राम।

६९. हेमंत ऋतु की विशिष्ट हवन सामग्री

1. असन	-50 ग्राम,
2. कायफल	-50 ग्राम
3. तगर	-50 ग्राम
4. कौंच बीज	-50 ग्राम
5. रास्ना	-50 ग्राम
6. अगर	-100 ग्राम
7. कपूर	-100 ग्राम
8. कूठ	-100 ग्राम
9. गिलोय	-100 ग्राम
10. गोक्षुरू	-100 ग्राम
11. घुड़बच	-100 ग्राम
12. चंद्रसूर	-100 ग्राम
13. लाल चंदन	-100 ग्राम
14. जावित्री	-100 ग्राम
15. तालीसपत्र	-100 ग्राम
16. दालचीनी	-100 ग्राम
17. नागकेसर	-100 ग्राम

18. नकछिकनी -100 ग्राम
19. पटोलपत्र -100 ग्राम
20. पित्तपापड़ा -100 ग्राम
21. पुष्करमूल -100 ग्राम
22. बादाम -100 ग्राम
23. भारंगी -100 ग्राम
24. मुलहठी - 100 ग्राम
25. मूसली-काली -100 ग्राम
26. बला -100 ग्राम
27. अखरोट की गिरी -200 ग्राम
28. सौंफ -100 ग्राम
29. कपूरकचरी -200 ग्राम
30. मुनक्का -200 ग्राम
31. काला तिल -250 ग्राम,
32. गुग्गुल -250 ग्राम
33. नारियल गिरी -250 ग्राम
34. छुआरा -250 ग्राम
35. तुंबरू -250 ग्राम
36. केसर -10 ग्राम
37. गोघृत -500 ग्राम
38. खाँडसारी गुड़ -750 ग्राम।

परिशिष्ट-५

यज्ञ चिकित्सा में प्रयुक्त वनौषधियों के अकारादि क्रम से नाम

Vernacular & Botanical Names of Medicinal plants used in Yajna Chikitsa

★★★★★★★★★

Hindi	English	Botanical Names
अकरकरा	Pellitory Root	Anacyclus pyrethrum - DC.
अखरोट	Walnut	Juglans regia -Linn.
अगर-काला	Eagle-wood	Aquilaria agrollocha -Roxb.
अग्निमंथ (अरणी)	Agnimantha	Clerodendron phlomidis-Linn.
अजमोद	Celeri fruit	Apium graveolens-Linn.
अजवायन	Ajova seed	Carum copticum-Benth. Hook.
अर्जुन	Arjuna-Myrobalan	Terminalia arjuna-Bedd.
अतिबला (कंघी)	Indian Mallow	Abutilon indicum-G. Don.
अतीस	Indian Atees root	Aconitum heterophyllum-wall
अदरक	Green Gingiver	Zingiber officinale-Roosce.
अनार	Pomegranate	Punica granatum-Linn.
अनन्नास	Pineapple	Ananas comosus-Merr.
अपामार्ग	Prickly chaff Flower	Achyranthes aspera-Linn.
अपराजिता	Clitoria	Clitoria ternatea-Linn.
अफीम	Opium	Papaver somniferum-Linn.
अमरबेल-अमरलता	Cuscuta	Cuscuta reflexa-Roxb.

अमलतास	Pudding stick	Cassia fistula-Linn.
अमृता (गिलोय)	Gilade	Tinospora cordifolia -Meirs.
अमरूद	Guava	Psidium guyava- Linn.
अरण्यसूरण-बनकांदा	Vanya	Synantherias sylvatica-Schott.
अरलू (श्योनाक)	Trumpet flower	Oroxylum indicum-Vent DC.
अरिमेद	SpongeTree	Acacia farnesiana-Willd.
अरहर	Red Gram	Cajanas cajan- Linn.
अशोक	AshokaTree	Saraca indica- Linn.
अश्वगंधा	Winter Cherry	Withania somnifera-Dunal.
असन	Gum Resin of KinoTree	Pterocarpus marsupium-Roxb.
ऋषभक	Rishabhak	Microstylis wallichi- Rt.T.
अंगूर	Grape	Vitis vinifera- Linn.
अंजीर	Fig	Ficus carica- Linn.
अनंतमूल	Indian Sarsaparila	Hemidesmus indicus-R.Br.
अंबर	Ambergris	Fossil Resin of Pinus succinifera.
आक (अर्क)	Gigantic Swallowort	Calotropis gigantica-Linn.
आम	Mango	Mangifera indica-Linn.
आमला	Embelic-Myrobalan	Embelica officinalis- Gaertn.
आमाहलदी	Mango Ginger	Curcuma amada-Roxb.
आर्टीमीसिया एनुआ	Artemisia	Artemisia annua-Linn.
आलू	Potato	Solanum tuberosum-Linn.
आलू बूखारा	Plum Tree	Prunus communis-H.Fl.
आज्ञाघास	Geranium grass	Cymbopogon schoenanthus-Spreng.
इंद्रजौ	Pala Indigo-plant	Wrightia antidysentrica-Wall
इंद्रायण-बड़ी	Bitter apple	Cytrullus colocynthis-Schard.
इंद्रायण-लाल	Bitter apple	Trichosanthes palmata-Schard.
इमली	Tamarind Tree	Tamarindus indica-Linn.
इलायची-छोटी	Lesser-Cardamom	Elettaria cardamomum-Maton.
इलायची-बड़ी	Greater-Cardamom	Amomum subulatum-Roxb.
ईख (गन्ना)	Sugarcane	Saccharum officinarum-Linn.
ईसबगोल	Spogel seeds	Plantago ovata-Forsk.

उटंगन	Uttangan	Blepharis equlis-Pers.
उड़द (माष)	Black gram	Phaseolas radiatus-Linn.
उदुम्बर (गूलर)	Cluster Fig	Ficus racemosa - Linn.
उन्नाव	Jujube	Zizyphus sativa-Gaertn.
उलटकंबल	Devil 's cotton	Abroma augusta-Linn.
उषवा	Sarsaparilla	Smilex ornata- Hook.
उस्तखुद्दूस	French-Lavander	Lavandula stoechas-Linn.
ऊँटकटारा	Thistle	Echinops echinatus-Roxb.
एरंड	Castor oil plant	Ricinis communis-Linn.
एला-बड़ी इलायची	Greater-cardamom	Amomum subulatum-Roxb.
एलुआ (ग्वारपाठा)	Aloe vera	Aloe baradensis-Mill.
ककड़ी	Snake cucumber	Cucumis utilissimus-Roxb.
कचूर	Zedoary	Curcuma zedoaria-Berg.
कटसरैया-पीली	Barleria	Barleria prionitis- Linn.
कटसरैया-श्वेत	Barleria	Barleria cristata -Linn.
कटु (कुटकी)	Black Halledoro	Picrorhiza kurroa -R.B.
कंटकारी-छोटी	Wild egg plant	Solanum xanthocarpum-Schard.
कटेरी-बड़ी	Poison-Berry	Solanum indicum- Linn.
कठूमर	Kathgularia	Ficus hispida -Linn.
कत्था (खदिर)	Black catechu	Acacia catechu-Wild.
कतीरा	Gum resinof white silk cotton	Cochlospermum gossypium- D.C.
कद्दू (कुष्मांड)	WhiteGourd	Benincasa hispida-Thumb.
कदंब	Kadamba	Anthocephalus cadamba-Miq.
कनेर-पीली	Yellow Oleander	Thevetia neriifolia- Juss.
कनेर-श्वेत	White Oleander	Nerium odorum-Soland.
कपास	Cottonplant	Gossypium herbaceum-Linn.
कपूर	Camphor	Cinamomum camphora-Presl.
कपूरकचरी	Spiked Ginger	Hedychium spicatum-Buch. H.
कपूर तुलसी	Camphor Besil	Ocimum kilimandschar-icum-Gue.
कबाबचीनी-शीतलचीनी	Cubebs	Piper cubeba- L.f.
कमल-नीला	Sacred Lotus	Nelumbium speciosom-Willd.
कमल केसर	Carpels of Lotus	Nelumbium speciosom-Willd.
कमलककड़ी-कमलगट्टा	Seeds of Lotus	Nelumbium speciosom-Willd.

कमरकस (समुद्रसोख)	Gum resin of Salvia	Salvia plebeia- Roxb.
करंज	Fever Nut	Caesalpinia bonduc. Linn.
करील	Caper Plant	Caparis decidua-Edgew.
करेला	Bittrer gourd	Momordica charantia-Linn.
करौंदा	Carissa	Carissa carandas- Linn.
कलमी शोरा	Saltpetre	Potassii Nitras.
कलिहारी	Malabar Glory	Gloricosa superba-Linn.
कलौंजी	Black Cumin	Nigella sativa -Linn.
कसौंदी	Stiking weed	Cassia occidentalis-Linn..
कहरुबा (तृणकांतमणि)	Amber	Fossil Resin of Pinus-succinifera.
काकजंघा	Kakjangha	Leea aeqata-Linn.
काकड़ासिंगी	Kakra	Pistacia integerrima-S.ex. Br.
काकोली	Kakoli	Roscoea longifolia-Baker.
कांचनार	Kachnar	Bauhinia variegata-Roxb.
कायफल	Bay Berry	Myrica nagi-Thunb.
कालीअंतमूल (सारिवा)	Shyamalta	Ichnocarpus fruitescens-Roxb.
काला जीरा	Black Caraway seeds	Carum carvi -Linn.
काला तिल	Gingelli	Sesamum indicum-Linn.
कॉटा चौलाई	Prickly-Amaranth	Amaranthus spinosus-Linn.
काला धातूरा	Devil'sapple	Datura metel-Linn.
श्वेत धतूरा	Thorn apple	Datura stramonium-Linn.
काला नामक	Black Salt	Unaqua Sodium chloride.
काली मिरच	Black Pepper	Piper nigrum-Linn.
कालमेघ	Green chiretta	Andrographis paniculata-wall.
कांस.घास	Thactch grass	Saccharum spontaneum-Linn.
कासनी	Chicory	Cichoriun intybus-Linn.
काली हलदी (नरकचूर)	Zedoary	Curcuma caesia- Roxb.
किसमिस	Grapes	Vitis vinifera- Linn.
कीकर (बबूल)	Acacia tree	Acacia arabia-Willd.
कीटमार (कीड़ामारी)	Worm killer	Aristolochia bracteolata-Linn.
कुचला	Poison nut Tree	Strychnos nuxvomica-Linn.

कुटकी	Picrorhiza	Picrorhiza kurroa-R.ex.Ben.
कुटज	Tellicherry Bark	Holarrhena antidysenterica-Wall.
कुमुदिनी	Water Lily	Nymphaea alba-Linn.
कुलंजन-कुलिंजन	Greater galangal	Alpinia galanga- Willd.
कुश	Kush grass	Desmostachya bipinnata-Stapf.
कूठ-मीठा	SweetCostus root	Saussurea lappa- C.B.C.
कूठ-कड़वा	Bitter Costus root	Saussurea lappa-C.B.C.
केवड़ा	Screw Pine	Pandanus odoratissimus-Roxb.
केवाकंद (केमुआ)	Costus	Costus speciosus- Koen.
केला	Banana	Musa sapientum- Linn.
केसर (केशर)	Saffron	Crocus sativus-Linn.
कैथ (कपित्थ)	Wood apple	Feronia elephantum-Corr.
कोकम	Kokam-butter tree	Garcinia indica-Chois.
कोदौं	Kodava	Paspalum scrobiculatum-Linn.
कौंच (केवांच)	Cowhage	Mucuna pruriens- Bek.
कौवाठोड़ी	Kaknasa	Pentatropis cynanchoides-Roxb.
कंटकारी-श्वेत (लक्ष्मणा)	White Kateli	Solanum xanthocarpum-S.W.
खजूर	Arabian-Datepalm	Phoenix dactylifera-Linn.
खड़िया मिट्टी	Kharia	Carbonate of calcium
खदिर-खैर	Black catechu	Accaia catechu -Willd.
खरबूज	Melon	Cucumis melo -Linn.
खस	Cuscus Grass	Andropogan muricatus-Retz.
खसखस (पोस्त)	Poppy seeds	Papaveris capsulac.
खिरैंटी (बला)	Sida	Sida cordifolia-Linn.
खीरा	Cucumber	Cucumis sativus-Linn.
खुबानी	Apricot	Prunus armeniaca-Linn.
खुरासानी अजवायन	Henbane	Hyoscyamus niger-Linn.
खूनखराबा	Dragon's blood	Daemonorops draco-Blume.
गजपीपल	Gajpiper	Scindapsus officinlalis-Schott.
गन्ना (ईख)	Sugarcane	Saccharum officinarum-Linn.
गनियार (बृहद अग्निमंथ)	Arni	Premna integrifolia-Linn.
गाजर	Carrot	Daucus carota -Linn.
ग्वारपाठा (घृतकुमारी)	Aloe vera	Aloe barbadensis-Mill.

गावजबान (गोजिह्वा)	Prickly elephant's foot	Elephantopus scaber-Linn.
गिलोय (अमृता)	Tinospora	Tinospora cordifolia-Miers.
गुग्गुल (गूगल)	Mukul	Commiphora mukul -Engl.
गुड़	Sugar	Saccharum officinarum-Linn.
गुड़मार	Small Indian Ipecacuanha	Gymnema sylvestre - R.Br.
गुड़हल	Shoe Flower	Hibiscus rosa sinensis-Linn.
गुलब्बास	Four o' clock	Mirabilis jalapa -Linn.
गुलबनफ्सा	Sweet Violet	Viola odorata- Linn.
गुलाब	Rose	Rosa centifolia -Linn.
गुंजा	Jequirity	Abrus precatorius -Linn.
गूमा	Guma	Leucas cephalotes-Spreng.
गूलर	Cluster Fig	Ficus glomerata -Roxb.
गेहूँ	Wheat	Triticum sativum- Lam.
गेरू	Oxide of Iron	Silicate of Alumina
गोघृत	Butter	Butyrum depuratum
गोभी	Cabbage	Brassica oleracea- Linn.
गोरखमुंडी	Mundi	Sphaeranthus indicus-Linn.
गोरोचन	Gall stone	Bezoar
गोक्षुरू-छोटा	SmallCaltrops	Tribulus terestris- Linn.
गोक्षुरू-बड़ा	LandCaltrops	Pedalium murex-Linn.
गंधक	Brimstone	Sulpher
गंधतृण	Lemon grass	Cymbopogan citratus- DC.
गंधबिरोजा-चीड़गोंद	Oleo resin of Pine	Oleoresina of Pinus-longifolia-Roxb.
गंभारी	Malay bush beech	Gmelina arborea -Linn.
घुड़बच	Sweet flag	Acorus calamus- Linn.
चकौंड़ (चक्रमर्द)	Sickle senna	Cassia tora-Linn.
चना	Gram	Cicer arietinum- Linn.
चंदन-श्वेत	SandalWood	Santalum album -Linn.
चंदन-लाल	Red Sandal Wood	Pterocarpus santalinus-Linn.
चंद्रसूर (हालो)	Common Cress	Lepidium sativum-Linn.
चंपा	Champac	Michelia champaca-Linn.
चमेली	Spanish-Jasmine	Jasminum grandiflorum-Linn.

चव्य	PiperChaba	Piper officinarum-C.D.Hunter.
चावल	Rice	Oryza sativa- Linn.
चिचिंडा	SankeGourd	Trichosanthes anguina-Linn.
चिरायता	Chireta	Swertia chirata- Buch.Ham.
चिरौंजी	Cuddapah Almond	Buchanania latifolia-Roxb.
चित्रक	White Lead wort	Plumbago zylanica -Linn.
चीड़	Pine	Pinus longifolia-Roxb.
चुकन्दर	Beet root	Beta vulgaris-Linn.
चूका	Bladder Doc	Rumex vesicarius-Linn.
चोपचीनी	China root	Smilex china-Linn.
चौलाई	Amaranth	Amaranthus blitum-Linn.
छाड़-छरीला	Stoneflowers	Parmelia perlata- Ach.
छिरेंटा-जलजमनी	Broomcreeper	Cocculus hirsutus- Diels.
छुआरा	Date palm	Phoenix dactylifera-Linn.
छोटी पिप्पली	Dried Catkins	Piper longum-Linn.
जटामांसी	Spikenard root	Nardostachys jatamansi-DC.
जवासा	Arabian Manna plant	Alhagi camelorum- Fisch.
जलनीम	Bacopa	Bacopa monnieri- Pennel.
जलकुंभी(पिस्टिया)	Water Lettuce	Pistia stratiotes- Linn.
जलपिप्पली	Purple Lippia	Lippia nodiflora-Mich.
जंगली धान	Wild Paddy	Oryza sativa-Linn.
जामुन	Jambul tree	Syzygium cumini-Skeels.
जायफल	Nutmeg	Myristica fragrans-Houtt.
जावित्री	Mace	Myristica fragrans-Houtt.
जिमीकंद	Ealephant-foot yam	Amorphophallus-campanulatus-Blume.
जियापोता-पुत्रजीवा	Child life tree	Putranjiva roxburghii-Wall.
जीरा-सफेद	Cumin seed	Cuminum cyminum-Linn.
जीवक	Jivak	Malaxis acuminata-D .Don
जीवंती	Jivanti	Dendrobium macraei-Lindl.
जैन्थियम-(बनोकरा)	Cocklebur	Xanthium strumarium-Linn.
जोगीपादशाह	Yogiraj plant	Sassurea sacra-Edg.

ज्योतिष्मती (मालकांगनी)	Staff Tree	Celastrus paniculatus-Willd.
जौ	Barley	Hordeum vulgare- Linn.
टमाटर	Tomato	Solanum lycopersicum-Linn.
टारटरिक एसिड	Tartaric acid	Tartaric Acid.
टिंडा	Round gourd	Citrulus fistulosus-Stocks.
टीक (सागौन-के फल)	Fruits of Teak-tree	Tectona grandis- Linn.
ढाक (पलाश)	The Forest-flame	Butea frondosa-K.R.
तगर (सुगंधबाला)	Indian Valerian	Valeriana wallichii-D.C. Rhizome
तज	Cassia-Cinnamon	Cinnamomum cassia-Blume
तंबाकू	Tobacco	Nicotiana tabacum-Linn.
तरबूज	Water melon	Citrullus vulgaris-Schard.
ताजेपादशाह (नाखूना)	Tonkin bean	Melilotus officinalis-Linn.
तारपीन तैल	Terpentine oil	Oil of Oleoresina of Pinus
तालमखाना	Talmakhana	Asteracantha auriculata-Nees.
तालीसपत्र	Himalayan Yew	Taxus baccata-Linn.
तीमरू (तेजबल, तुंबरू)	Toothache tree	Zanthoxylum alatum-Roxb
तिलपुष्पी	Foxglone	Digitalis purpurea -Linn.
तिल	Gingelli	Sesamum indicum -Linn.
तुख्ममलंगा	Tukhmmalanga	Lallemantia royleana-Benth.
तुम्बी-कड़वी	Bitter Gourd	Lagenaria vulgaris- ser.
तुलसी	Holy Basil	Ocimum sanctum-Linn.
तुवरक	Chaulmoogra	Hydnocarpus wightiana-Blume.
तेजपत्र (तेजपात)	Indian Cassia	Cinamomum tamala-Nees.
तोरई-कड़वी	Bitter Angled-Loofah	Luffa acutangula-Roxb.
त्रायमाण	Indian Gentiana	Gentiana kurroo-Royle.
थूहर	Milk hedge	Euforbia nerifolia -Linn.
दगड़फूल-छरीला	Yellow Lichen	Parmelia perlata -Ach.
दवना	Mug wort	Artemisia siversiana-E.W.

द्राक्ष (मुनक्का)	Grape	Vitis vinifera- Linn.
दारुहलदी (दारुहरिद्रा)	Indian Berberry	Berberis aristata-D.C.
दालचीनी	Cinnamon	Cinnamomum zeylanicum-Blume.
द्राक्ष (मुनक्का)	Grape	Vitis vinifera- Linn.
दारुहलदी (दारुहरिद्रा)	Indian Berberry	Berberis aristata-D.C.
दालचीनी	Cinnamon	Cinnamomum zeylanicum-Blume.
दुग्धिका (लाल दूधी)	Australian	Euphorbia hirta-Linn.Asthma Herb
दूर्वा (दूब)	Creeping	Cynodon dactylon-Pers. Cynodon
दूध	Milk	Milk
देवदार	Himalayan Cedar	Cedrus deodara-Linn
धतूरा-काला	Black Thorn Apple	Datura metel- Linn.
धतूरा-श्वेत	WhiteDatura	Datura stramonimum - Linn.
धनिया	Coriender fruit	Coriandrum sativum - Linn.
धमासा	Dhamasa	Fagonia arabica -Linn.
धान	Paddy-Rice	Oryza sativa-Linn.
धाय (धबई)	Fire flame-bush	Woodfordia fruticosa-Kurz.
धूप सरल (चीड़)	Long leaved Pine	Pinus longifolia-Roxb.
नकछिकनी	Sneeze weed	Centipeda orbicularis-Lour.
नागकेशर	Cobra's- Saffron	Mesua ferra-Linn.
नागबला (गंगेरन)	Sidda	Sida spinosa-Linn.
नागरमोथा	Nut Grass	Cyperus scariosus-Roxb.
नागफनी	Cactus-prickly	Opuntia dillenii-Haw.pear
नारंगी	Orange	Citrus reticulata-Blanco.
नारियल	Coconut	Cocos nucifera-Linn.
नाशपाती	Pear	Pyrus Communis-Linn.
निर्गुंडी-बकायन	IndianPrivet	Vitex nigundo-Linn.
निर्मली	Clearing Nut tree	Strychnos potatorum-Linn.
निशोथ	IndianJalap	Operculina turpethum-S.M.
नीबू	Lemon	Citrus aurantifolia-Swingle.
नीम	Margosatree	Melia azadirachta-Linn.
नीलकमल	Sacred Lotus	Nelumbium speciosum Wild.

नीलगिरी	Eucalyptus	Eucalyptus globulus-Labill & others
नीला थोथा	Copper Sulphate	Cuprum sulphas
नीवार (कोदों)	Punctured Paspalum	Paspalum scrobiculatum-Linn.
नेपाली धनिया	Toothache Tree	Zanthoxylum alatum-Roxb.
नेर (गुलपिटा)	Ner-Nair	Skimmia laureola-Sieb.& others.
नेत्रबाला (सुगंधवाला)	Sugandha-bala	Pavonia odorata-Willd.
पटसन	Crotalaria	Crotalaria verrucosa-Linn.
पटोल (परवर)	Ponited Gourd	Trichosanthes diocia-Roxb.
पंडरी	Orange-Jessamine	Murraya paniculata-Jack.
पर्णबीज (पथरचूर)	Bryophyllum	Kalanchoe pinnata-Lamk.
पतंग	Sappanwood	Caesalpinia sappan-Linn.
पतरंगा	Logwood	Haematoxylon campechianum-Linn.
पत्रज (तेजपत्र)	Indian Cassia	Cinnamomum tamala-Nees.
पद्माख	Himalayan-Cherry	Prunus puddum-Roxb.ex.
पपीता	Papaya	Carica papaya-Linn.
प्याज	Onion	Allium cepa-Linn.
परबल	Pointed Gourd	Tarichosanthes diocia-Roxb.
पलाश	The Forest-flame	Butea frondosa-Roxb.
प्रसारिणी	Paederia	Paederia foetida-Linn.
पाकर	Pakar	Ficus lacor-Buch.Ham.
पाठा	Velvet Leaf	Cissampelos pareira-Linn.
पाढ़ल	Padaria	Stereospermum suaveo-lens-D.C
पान	Betel	Piper betel-Linn.
पानड़ी	Ixora	Ixora paniculata-Linn.
पापरी (निर्विषी)	May Apple	Podophyllum emodi-W.H.
पालक	Spinach	Spinacia oleracea-Linn.
पाषाण भेद	Bergenia	Saxifraga lingulata-Wall.
पिठवन-पृश्निपर्णी	Uraria	Uraria picta-Desv.
पित्तपापड़ा	Fumeria	Fumeria indica-Pugsley.
पिपरमेंट	Pippermint	Mentha piperata-Linn.
पिप्पली-छोटीपीपर	Dried Catkins	Piper longum-Linn.
पिप्पली-बड़ी	Long Peper	Piper longum-Linn.

पिप्पलामूल	Piper root	Piper longum-Linn.
प्रियंगु	Priyangu	Aglaia roxburghiana-Miq.
पीपल (अश्वत्थ)	Peepal tree	Ficus religiosa-Linn.
पीली कटसरैया (पियाबाँसा)	Barleria	Barleria prionitis-Linn.
पीला चंदन	Sandal wood	Santalum album-Linn.
पीली सरसों	Yellow Mustard	Brassica comprestris-Linn.
पीलो जोगिड़ो	Yellow Broom-Rape	Cistanche tubulosa-Wight.
पुनर्नवा	Spreding-Hogweed	Boerhaavia diffusa-Linn.
पुष्करमूल	Orris root	Iris germanica-Linn.
पेठा (कुम्हड़ा)	White Pumpkin	Benincasa hispida-Cogn.
पैपावर एस.(पोस्त)	Opium	Papaver somniferum-Linn.
पोई	Indian Spinach	Basella alba-Linn.
पोदीना	Mentha	Mentha sativa-Linn.
पोस्त दाना	Poppy Seeds	Papaver somniferum-Linn.
फरहद (परिभद्र)	Coral tree	Erythriana indica-Lam.
फालसा	Asiatic Grewia	Grewia asiatica-Linn.
फिटकिरी	Alum	Argilla vitriolutum.
फूलप्रियंगु	Phoolpriyungu	Callicarpa macrophylla-Vahl.
बकायन	Bead tree	Melia azedarch-Linn.
बच	Sweet flag	Acorus calamus-Linn.
बज्रदंती	Barleria	Barleria prionitis-Linn.
बट (बरगद)	Banyan Tree	Ficus bengalensis-Linn.
बथुआ	Lambs Qarters	Chenopodium album-Linn.
बंदगोभी	Cabbage	Brassica oleracea-Linn.
बनउड़द-माषपर्णी	Wild kidney-Bean	Teramnus lobialis-Spreng.
बनकचूर	Zedoary	Curcuma zedoaria-Rosc.
बनगुलाब	Wild Rose	Rosa microphylla-Lindl.
बनगोभी-मयूरशिखा	Mayurashikha	Celosia cristata-Linn.
बनतुलसी (ममरी)	Sweet Basil	Ocimum basilicum-Linn.
बनफ्सा	Appel Leaf	Viola odorata-Linn.
बबूल	Acacia tree	Acacia arabica-willd.
बरियारा	Sida	Sida cordifolia-Linn.
बरुण	Three leaved-Caper	Crataeva nurvala-Buch.Ham.
बहमन-श्वेत	White Behen	Centaurea behen-Linn.

बहमन लाल	Red Behmen	Salvia haemotodes-Linn.
ब्रह्मदंडी	Brahmadandi	Tricholepis glaberrima-D.C
बहुफली	Bahufali	Corchorus depressus-Linn.
बहेड़ा (विभीतकी)	Belleric Myrobalan	Terminalia bellirica-Roxb.
बाकुची (बाबची)	Psoralea Seed	Psoralea corylifolia- Linn.
बादाम	Almond	Prunus amygdalus-Batsch.
बाँदा	Banda	Viscum album-Linn.
बादियान खताई	Star anise of china	Illicium verum-Hook.
बायविडंग	Babreng	Embelia ribes-Burm.f.
बालछड़-जटामांसी	Spikenard	Nardostachys jatamansi-D.C.
बांस	Bamboo	Bambusa arundinacea-Willd.
ब्राह्मी	Indian Penny-wort	Hydrocotyl asiatica-Linn.
बिच्छू बूटी	The Roman-Nettle	Urtica diocia- Linn.
बिदारीकंद	Indian Kudzu	Pueraria tuberosa-D.C.
बिनौला	Seeds of - Cotton	Gossypium herbaceum-Linn.
बिल्व (बेल)	Bengal Quince	Aegle marmelos-Corr.
बिजासार-विजयसार	Indian Kino-tree	Pterocarpus marsupium-Roxb.
बीजबंद-खिरैंटी	Seeds of Country	Sida Cordifolia-Linn.
बीज	Mallow	
बुरांश	Buransh	Rhododendron arboretum-Sm.
बेर	Jujube	Zizyphus jujuba-Lam.
बैंगन	Brinjal	Solanum melongena-Linn.
भल्लातक-भिलावा	Marking Nut	Semecarpus anacardium-Lf.
भांगरा-भृंगराज	Trailing Eclipta	Eclipta prostrata-Linn.
भारंगी	Tube Flower	Clerodendrum indicum-O.Kuntz.
भिंडी	Lady's finger	Hibiscus esculentus-Linn.
भुईआंवला	Bhuiamla	Phyllanthus niruri-Linn.
भूतकेशी	Bhutkeshi	Elaeodendron glaucm-Pers.
भूरिछरीला-	Stoneflower	Permelia perlata -Ach.
भोजपत्र	Himalayan- Silver Birch	Betula utilis-D.Don.
मक्का	Maize	Zea mays -Linn.
मकोय-काकमाची	Garden Nightshade	Solanum nigrum-Linn.
मंजीष्ठ	Madder root	Rubia cardifolia- Linn.
मटर	Garden Pea	Pisum sativun -Linn.

मंडूकपर्णी	Indian Penny-wart	Centella asiatica-Linn.
ममीरा	Golden thread	Coptis teeta -Wall.
मरिच-कालीमरिच	Black Peper	Piper nigrum -Linn.
मरुआ तुलसी	Sweet Marjoram	Origanum majorana-Linn.
मरोड़फली	East Indian - ScrewTree	Helicteres isora -Linn.
मसूर	Lentil	Ervum lens-Linn.
महामेदा	Himalayan Peony	Paeonia emodi- Wall.
महुआ	Madhuka	Madhuka indica- Gmel.
माजूफल	Galls	Quercurs infectoria-Olivier.
मिर्च-लाल	Red Chilli	Capsicum frutescens-Linn.
मिथाइलसेलिसिलेट	Methyl Salicylate	Methyl Salicylate
मिश्री	Sugar	Saccharum officinarum-Linn.
मीठा नीम	Mitha Neem	Murraya koenigii-Spreng.
मुक्ता शुक्ति	Oyster Shell	Pincta vulgaris-Shum.
मुनक्का	Grapes	Vitis vinifera-Linn.
मुलहठी (मधुयष्ठी)	Liquorice root	Glycyrrhiza glabra-Linn.
मूंग	Green Gram	Phaseolous mungo-Linn.
मूंगफली	Ground nut	Arachis hypogaea-Linn.
मूँज	Munja	Saccharum munja-Roxb.
मूर्वा	Murva	Sensevieria zeylanica-Willd.
मूली	Radish	Raphanus sativus-Linn.
मूसली-काली	Black Musale	Curculigo orchioides-Gaertn.
मूसली-श्वेत	White Musale	Asparagus adscendens-Roxb.
मेंढ़ासिंगी-मेषशृंगी	Periploca of-the Woods	Gymnema sylvestre-Roxb.
मेथी	Fenu Greek	Trigonella foenumgra-ecum-Linn.
मेदा (गजपिप्पली)	Common Grey Mango Laurel	Litsea polyantha- Jass.
मैंदालकड़ी	Common Tallow-Laurel	Litsea chinensis-Lam.
मैनफल	Emetic Nut	Randia dumetorum-Lam.
मोचरस (सेमर-की गोंद)	Gum resin of-red Cotton tree	Bombax ceiba-Linn.
मोथा	Nut grass	Cyperus rotundus-Linn.

मोम	Wax of Honey Comb	Cera alba.
मोरपंख	Peacock's Tail	Peacock's Tail.
मौलश्री (बकुल)	SpanishCherry	Mimusops elengi-Linn.
मौसमी	Sweet Orange	Citrus sinensis-Linn.
यवक्षार	Impure Carbo-nate of Potash	Potasii carbonas.
रतनजोत	Onosma	Onosma echioides-Linn.
रक्तरोहिड़ा	Inadin Buck-Thorn	Rhamnus wightii- W.&A.
रसौत	Extract of-Indian Berberis	Extractum berberis.
राजमाष (लोबिया)	Chinese Beans	Vigna cylindrica-Skeels.
रामा तुलसी	Shrubby Basil	Ocimum gratissimum-Roxb.
राई	Indian Mustard	Brassica juncea-Czern &Coss.
राल	Resin of Sal-Tree	Resina of Shorea-robusta-Gaertn.f.
रास्ना	Rasna (Vanda)	Vanda roxburghii-R.Br.
रुदन्ती-संजीवनी	Cressa	Cressa cretica-Linn.
रुद्रवंती	Rudravanti	Capparis moonii-Wright.
रूमीमस्तगी	Gum resin of Pistacia	Pistacia lentiscus - Linn.
रेणुका-सँभालू बीज	Seeds of-Indian Privet	Vitex nigundo-Linn
रेवंदचीनी (आरचू)	Indian Rhubarb	Rheum emodi-Wall.
रोहेड़ा-लाल	Rohituka Tree	Aphanamixis polystachya-Parker.
लक्ष्मणा (श्वेतकंटकारी)	White berried-night Shade	Solanum xantho-carpum-S.&W.
लहसुन	Garlic	Allium sativum-Linn.
लाख (लाक्षा)	Lac	Laccifer lacca-Kerr.
लाजवंती (छुईमुई)	Sensitive plant	Mimosa pudica-Linn.
लोबान	Benzoin	GumResin of Styr-ax benzoin-Dryand.
लोध्र	Lodh	Symplocos race-mosa-Roxb.

लोबिया	Cow peas	Vigna cylindrica-Skeels.
लौकी	White Gourd	Lagenaria vugaris-Ser.
लौंग	Cloves	Caryophyllus aro-maticus-Linn.
वत्सनाभ	Aconite	Aconitum ferox-Wall.
वंशलोचन	Bamboo Manna	Bambusa arundinacia-Willd.
वाराहीकंद-रतालू	Potatoyam	Dioscorea bulbifera-Linn.
वासा (अडूसा)	Malabar nut	Adhatoda vasica-Nees.
विजया (भांग)	Indian Hemp	Canabis sativa-Linn.
विदारीकंद	Bidarikand	Pueraria tuberosa-D.C.
विधारा	Elephant - Creeper	Ipomoea petaloidea-Chois.
विडंग	Basal Clarke.	Embelia robusta-C.B.
विष्णुकांता (अपराजिता)	Clitoria	Clitoria ternatea-Linn.
शर्करा	Sugar	Saccharum officinarum-Linn.
शंखिया	Oxide of Arsenic	Arsenicum album.
शंखपुष्पी	Sankhpuspi	Evolvulus alsinoides-Linn.
शतावर	Asparagus	Asparagus racemosus-Willd.
शमी	Shami	Prosopis spicigera-Linn.
शमीर-छोटी शमी	Small Shami	Prosopis stephaniana-Kunth.
शरपुंखा	Purple Tephrosia	Tephrosia purpurea-Linn.
शलजम	Turnip	Brassica rapa-Linn.
शहद	Honey	Honey
श्यामा तुलसी	Sacred Basil	Ocimum sanctum-Linn.
शाल	The Sal Tree	Shorea robusta-G.F.
शालि चावल	Oryza	Oryza sativa-Linn.
शालिपर्णी-सरिवन	Salpani	Desmodium gangeti-cum-D.C
शिवनिम्ब	Wiry Indigo	Indigofera aspalatho-ides-Vahl ex DC.
शिवलिंगी	Brayoni	Bryonopsis laciniosa-Linn.
शिलाजीत	Asphalt	Asphaltum puniabinum.
शिलारस	Storax (Styrax)	Altingia excelsa-Noronha.
शीतलचीनी (कबाबचीनी)	Cubebs	Piper cubeba-Linn.

शीशम	Sisso	Dalbergia sissoo-Roxb.
श्योनाक (अरलू)	Indian Trumpet flower	Oroxylum indicum-Vent.
श्वेत दूर्वा	White Creeping cynodon	Cynodon dactylon-Pers.
सज्जीखार	Barilla (Alkali)	Soda Bicarb.
संतरा	Mandarin	Citrus reticulata-Blanco.
सप्तपर्ण (सतौना)	Devil's Tree	Alstonia scholaris-Roxb.
सप्तरंगी (सप्तचक्र)	Modhuphal	Salacia chinensis-Linn.
सदाबहार-नयनतारा	Red Periwinkle	Vinca rosea-Linn.
सनाय	Indian Senna	Cassia angustifolia-Vahl.
सफेद जीरा	Cumin Seed	Cuminum cyminum-Linn.
सँभालू (निर्गुंडी)	Five Leaved-ChasteTree	Vitex nigundo-Linn.
समुद्रखार	Salt	Sodii muras.
सर्जरस, सर्ज-(सफेद डामर)	Sandrach	Vateria indica-Linn.
सर्पगंधा	Serpentine- root	Rauwolfia serpentina-B.ex K.
सरसों-पीली	Indian Colza	Brassica campestris-Linn.
सलई	Indian Frankin carse	Boswellia serrata-Roxb.
स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी)	Mexican Prickly Poppy	Argemone mexicana-Linn.
सहजन (शिग्रु)	Horse Radish Tree	Moringa pterygosperma-Gaertn.
सहदेई-छोटी	Fleabane	Vernonia cinerea-Less.
सहदेई-बड़ी	Dindle	Sonchus arvensis-Linn.
साइट्रस लिमोना-(जमीरी नीबू)	Lemon	Citrus limon-Linn
सागबन (सागौन)	Teak Tree	Tectona grandis-Linn.
सोंचर नमक	Black salt	Unaqua sodium Chloride.
साठी चावल	Rice	Oryza sativa-Linn.
सांभर नमक	Common Salt	Sodium chloride.
सारिवा.श्वेत (अनंतमूल)	Indian Sarsa-parilla	Hemidesmus indicus-R.Br.

सालम मिश्री (सालम पंजा)	Salep	Orchis latifolia-Linn.
सिंघाड़ा	Inadian Water Chest nut	Trapa bispinosa-Roxb.
सिरस (शिरीष)	Siris Tree-Kokko	Albizzia lebbeck-Linn.
सीताफल (शरीफा)	Custard Apple	Anona squamosa-Linn.
सुगंधकोकिला	Luvunga	Luvunga scandens-B.Ham.
सुगंधवाला	Sugandhabala	Pavonia odorata-Willd.
सुपारी	Betel Nut	Areca catechu-Linn.
सुरंजान-मीठा	Sweet Hermodactyl	Merendera persica-D.
सुरंजान-कड़वी	Bitter Hermodactyl	Colchicum luteum-Baker.
सेंधा नमक	Rock salt	Sodii chloridum.
सेव	Apple	Malus sylvestris-Mill.-(Pyrus malus- Linn.)
सेमल की गोंद-(मोचरस)	Gum of Silk - cotton Tree	Salmalia malabaricum-Schott.
सेमल	Silk cotton-Tree	Salmalia malabaricum-Schott.
सोंठ	Dried Ginger	Zingiber officinale-Rosce.
सोना गेरू	Oxide of Iron	Silicate of alumina.
सोनापाठा (श्योनाक)	Indian Trumpet Flower	Oroxylum indicum-Vent.
सोमलता (सोम)	Moon Creeper	Sarcostemma brevis-tigma-Wight.
सोमवल्ली (सुखदर्शन)	Crinum	Crinum latifolium-Linn.
सोया	Dil	Anethum sowa-Kurz.
सोयाबीन	Soy beans	Glycine max-Linn.
सौंफ	Fennel seeds	Foeniculum vulgare-Mill.
हरचूर-नेपाली बांदा	Vanda	Viscum album-Linn.
हरीतकी (हरड़)	Myrobalans	Terminalia chebula-Retz.
हलदी (हरिद्रा)	Termeric	Curcuma domestica-Vahl.
हाऊबेर	Juniper berry	Juniperus communis-Linn.

हारसिंगार-पारिजात	Night Jasmine	Nyctanthes arbortristis-Linn.
हिंगुपत्री-डिकामाली	Gummy-Gardenia	Gardenia gummifera-Linn.
हींग	Asafoetida	Ferula narthex-Boiss.
हुलहुल	Sticky Cleome	Gynandropsis penta-phylla-DC.
क्षीरकाकोली	Kshirkakoli	Lilium polyphyllum-D.Don.

पाचक चूर्ण -

सौंठ -	समभाग
जीरा	
अजमोद	
हांडीवाला नौसादर	
टार्टरिक एसिड	
काला नमक	
सेंधा नमक	
शक्कर	दोगुनी
हींग	

मधुमेह नाशक चूर्ण

हल्दी पाउडर	समभाग
त्रिफला पाउडर	
मेथी पाउडर	

मात्रा - 1-1 च. सुबह शाम जल के साथ

1 च. पाउडर में 1/2 रत्ती यशद भस्म मिलाकर लेने से यह योग और भी लाभकारी सिद्ध होता है।
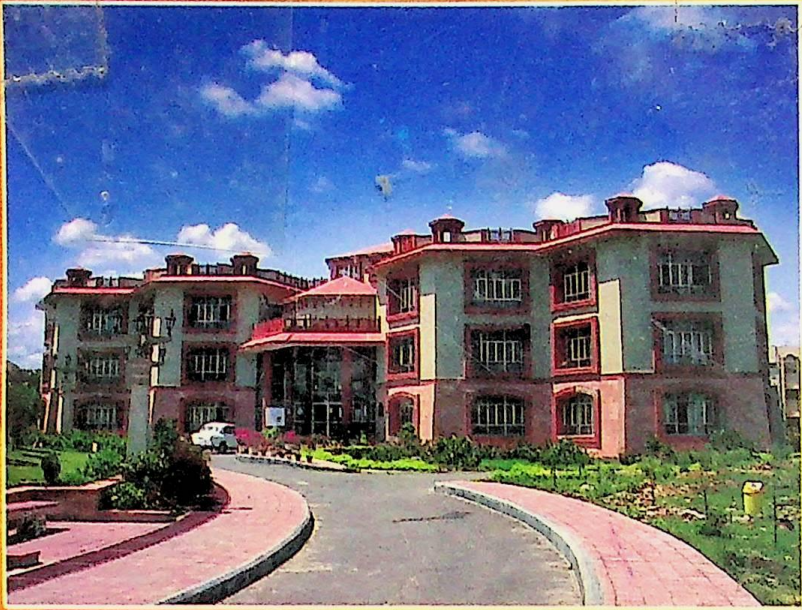
देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

जीवन विद्या का आलोक केन्द्र। यहाँ के स्नातक मात्र जीविकोपार्जन हेतु नहीं, अपितु नैतिक दायित्व स्वीकारते हुए समाज एवं राष्ट्रोत्थान के लिए संकल्पित व प्रयत्नशील होते हैं। विद्यार्थी योग, मनोविज्ञान एवं धर्मविज्ञान जैसे प्रमुख सत्रों में भाग लेकर न केवल अपने स्वास्थ्य, व्यक्तित्व एवं साधना को प्रखर बनाते हैं, अपितु अज्ञान, अशिक्षा, अभावजन्य विषमताओं से लड़ते हुए जनसामान्य को भी लाभान्वित करते हैं। इस संस्थान की शाखा-प्रशाखाएँ सम्पूर्ण राष्ट्र में स्थापित करने की योजना है।

विचार क्रान्ति अभियान, शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार

Code No. SA27